।। कोबातीर्थमंडन श्री महावीरस्वामिने नमः ।।

।। अनंतलब्धिनिधान श्री गौतमस्वामिने नमः ।। ।। गणधर भगवंत श्री सुधर्मास्वामिने नमः ।।

।। योगनिष्ठ आचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ।। ।। चारित्रचूडामणि आचार्य श्रीमद् कैलाससागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ।।

आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर

पुनितप्रेरणा व आशीर्वाद

राष्ट्रसंत श्रुतोद्धारक आचार्यदेव श्रीमत् पद्मसागरसूरीश्वरजी म. सा.

जैन मुद्रित ग्रंथ स्केनिंग प्रकल्प

ग्रंथांक : १

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-३८२००७ (गुजरात)
(079) 23276252, 23276204
फेक्स : 23276249
Websiet : www.kobatirth.org
Email : Kendra@kobatirth.org

शहर शाखा

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
शहर शाखा
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
त्रण बंगला, टोलकनगर
परिवार डाइनिंग हॉल की गली में
पालडी, अहमदाबाद – ३८०००७
(079) 26582355

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

Copy right Registered under Sections 18 and 19 Act XXV of 1867.

अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

नवमो भागः ॥

सौवरः ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यामष्टमो भागः ।

पठनपाठनव्यवस्थायामेकादशं पुस्तकम् ।

यज्ञदत्त शर्म्मशास्त्रिणः प्रबन्धेन

वैदिक यन्त्रालय अजमेरनगरे मुद्रितः ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं ।
क्योंकि
इस को रजिस्टरी कराई गई है ॥

संवत् १९४८ माघ शुक्ला ७ ।

दूसरी बार २००० पुस्तक छपे] [मूल्य ≤)॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथ भूमिका ॥

इस सौवर ग्रन्थ के बनाने का मुख्यप्रयोजन यही है कि जिस से सब मनुष्ये उदात्तादि स्वरों की व्यवस्था का बोध यथार्थ हो जावे । जब तक उदात्तादि को ठीक २ नहीं जानते तब तक लौकिक वैदिक वाक्यों वा छन्दों का स्पष्ट उच्चारण मान और ठीक २ अर्थ भी नहीं जान सकते । और उच्चारण आ यथार्थ होने के बिना लौकिक वैदिक शब्दों से यथार्थ सुखलाभ भी किस नहीं होता । देखो इस विषय में प्रमाण ॥

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थम स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥ १

जो शब्द अकारादि वर्णों के स्थान प्रयत्न पूर्वक उच्चारण नियम और उ त्तादि स्वरों के नियम से विरुद्ध बोला जाता है उस को मिथ्याप्रयुक्त कहते हैं कि जिस अर्थ को जताने के लिये उसका प्रयोग किया जाता है उस अर्थ को शब्द नहीं कहता किन्तु उस से विरुद्ध अर्थान्तर को कहता है । इसलिये उच्चा किया हुआ वह शब्द अभीष्ट अभिप्राय को नष्ट करनेसे वज्र के तुल्य वाणीरूप कर यजमान अर्थात् शब्दार्थसम्बन्ध की सङ्गति करने वाले पुरुष ही को दुःख देता है । अर्थात् प्रयोक्ता के अभिप्राय को बिगाड़ देनाही उस को दुःख दे है । जैसे (इन्द्रशत्रुः) शब्द स्वर के विरोध सेही विरुद्धार्थ हो जाता है । इन्द्र शत्रु तत्पुरुष समास में तो अन्तोदात्त होता है इन्द्र अर्थात् सूर्य का शत्रु मेघ ब कर विजयी हो ।(इन्द्रशत्रुः) यहां बहुव्रीहि समासमें पूर्वपद प्रकृतिस्वरसे आद्युदा स्वर होता है । और शत्रु शब्द का अर्थ यही है कि शान्त करने वा काटनेवाला प्रमाण निरुक्त का—इन्द्रोस्य शमयिता वा शातयिता वा ।सो तत्पुरुष समास में इन्द्र नाम सूर्यका शत्रु शान्त करने वाला मेघ आया और बहुव्रीहि समासमें स जिसका शत्रु शान्त करने वा काटने वाला है ऐसा अन्य पदार्थ मेघ आया । पुरुष सूर्य्य का शान्त करने वाला मेघ है इस अभिप्राय से इन्द्रशत्रु शब्द उच्चारण किया चाहता है तो उसको अन्तोदात्त उच्चारण करना चाहिये परन्तु ज. वह आद्युदात्त उच्चारण कर देवे उसका अभिप्राय नष्टहो जावे क्योंकि आद्युदात्त उच्चारण से बहुव्रीहि समास में मेघ का शान्त करने वा काटने वाला सूर्य ठहरे

For Private And Personal Use Only

भूमिका ॥

:सलिये जैसा अपना इष्ट अर्थ हो वैसे स्वर और वर्ण का नियमपूर्वक हो था करना चाहिये । जब मनुष्य को उदात्तादि स्वरों का ठीक २ बोध हो है तब स्वर लगे हुए लौकिक शब्दों के नियत अर्थों को शीघ्र जान लेता है कसी एक शब्द को आद्युदात्तस्वरयुक्त देखा तो जान लेगा कि अमुक अर्थ युक जित् वा नित् प्रत्यय हुआ है इसलिये इस का यही अर्थ होना चाहिये विरुद्ध अर्थ नहीं हो सकता ऐसा निश्चय स्वरज्ञ पुरुष को हो जाता है । स कर्त्ता । स कर्त्ता । इन दो वाक्यों में दो प्रकारके स्वर होनेसे दोही प्रकार । होते हैं पहिले वाक्य में लुट् लकार की क्रिया है । अर्थ-वह अगले दिन ा। और दूसरे में कृदन्त तृच् प्रत्ययान्त शब्द है । अर्थ-वह करने वाला पुरुष :सी प्रकार इत्यादि एक प्रकार के शब्दों का अर्थभेद स्वरव्यवस्था के जान· ही निकलता है । जो स्वरव्यवस्था का बोध न हो तो अर्थों का लौट पौट वार हो जाने से बड़ा अन्धेर फैल जावे । इसी प्रकार समासों के पृथक् २ त स्वरों को जान के उन २ समासों के नियत अर्थों को शीघ्र जान लेता र्थात् उदात्तादि स्वरज्ञान के विना अर्थ की भ्रान्ति नहीं छूटती । और उदा- दिस्वरबोध के विना वेदमंत्रों का गान और उच्चारण भी यथार्थ नहीं हो ता क्योंकि षड्जादि स्वर गानविद्या में उपयोगी होते हैं वे उदात्तादि के नहीं हो सकते । जैसेः—

:च्चौ निषादगांधारौ नीचावृषभधैवतौ । शेषास्तु स्वरिता ज्ञे- : षड्जमध्यमपंचमाः ॥ १ ॥

यह वचन याज्ञवल्क्यशिक्षा का है षड्जादिकों में निषाद और गांधार तो ात्त के लक्षण से ऋषभ और धैवत अनुदात्त के लक्षण से तथा षड्ज मध्यम र पंचम ये तीनों स्वरितस्वर से गाये जाते हैं । उदात्तादि के विना वेदमंत्रों का ारण भी प्रिय नहीं लगता और जब उदात्तादि के सहित उच्चारण किया ता है तब अतिप्रिय मनोहर उच्चारण होता है । इस ग्रन्थ में स्वरव्याख्या प से की है परन्तु जो मुख्य २ स्वरविषय के पाणिनीय अष्टाध्यायीस्थ सूत्र हैं व इस में लिख दिये हैं और सब अष्टाध्यायी की वृत्ति में लिखे जायंगे ॥

इति भूमिका ॥

स्थान महाराणा जी का उदयपुर
संवत् १९३९ आश्विन० व० १२ } (स्वामी) दयानन्दसरस्वती

अथ सौवरः ।

१–महाभाष्य–स्वयं राजन्त इति स्वराअन्वग्भवतिव्यञ्जनम्॥

स्वर उन को कहते हैं कि जो विना किसी की सहायता से उच्चारित और स्वयं प्रकाशमान, और व्यञ्जन वे कहाते हैं कि जिन का उच्चारण स्वर के आधीन हो ॥ १ ॥

२–उच्चैरुदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । २९ ॥

किसी एक मुख के स्थान में जिस अच् का ऊंचे स्वर से उच्चारण हो वह उदात्त संज्ञक होता है । जैसे । औपगवः । यहां अण् प्रत्यय का अकार उदात्त हुआ है ॥ २ ॥

३–महाभाष्य–आयामो दारुण्यमणुता खस्येत्युच्चैःकराणि शब्दस्य ॥

उदात्त स्वर के उच्चारण में इतनी बातें होनी चाहिये (आयामः) शरीर के सब अवयवों को रोक लेना अर्थात् ढीले न रखना (दारुण्यम्) शब्द के निकलते समय तीखा रूखा स्वर निकले और (अणुता खस्य) कण्ठ को रोक के बोलना चाहिये फैलाना नहीं । ऐसे प्रयत्नों से जो स्वर उच्चारण किया जाता है वह उदात्त कहाता है । यही उदात्त का लक्षण है ॥ ३ ॥

४–नीचैरनुदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३० ॥

जो किसी एक मुखस्थान में नीचे प्रयत्न से उच्चारण किया हुआ स्वर है उस को अनुदात्त कहते हैं । जैसे । औपगवः । यहां जिन के नीचे तिर्छी रेखा है वे तीनों वर्ण अनुदात्त हैं ॥ ४ ॥

५–महाभाष्य–अन्ववसर्गो मार्दवमुरुता खस्येति नीचैःकराणि शब्दस्य ॥

अनुदात्त उच्चारण में (अन्ववसर्गः) शरीर के अवयवों को शिथिल करदेना (मार्दवम्) कोमलता स्निग्ध उच्चारण करना (उरुता खस्य) और कण्ठ को कुछ फैला के बोलना । इस प्रकार के प्रयत्न से उच्चारण किये स्वर को अनुदात्त कहते हैं यही इस का लक्षण है ॥ ५ ॥

६–समाहारः स्वरितः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३१ ॥

उदात्तऔर अनुदात्त गुण का जिस में मेल हो वह अच् स्वरित संज्ञक होता

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है। जो उदात्त स्वर है। उस का कोई चिन्ह नहीं होता किन्तु बहुधा स्वरित वा अनुदात्त से पूर्व ही उदात्त रहता है। अनुदात्त वर्ण के नीचे जैसा (क) यह तिर्छा चिन्ह किया जाता है। और स्वरित के ऊपर (क) ऐसा खड़ा चिन्ह किया जाता है। दो वस्तु को मिला के जो बनता है उस का तीसरा नाम रखते हैं। जैसे श्वेत और काला ये रङ्ग अलग २ होते हैं परन्तु जो इन दोनों को मिलाने से उत्पन्न होता है उस को (कल्माष) खाखी वा आसमानी कहते हैं इसी प्रकार यहां भी उदात्त और अनुदात्तगुण पृथक् २ हैं परन्तु जो इन दोनों को मिलाने से उत्पन्न हो उस को स्वरित कहते हैं ॥ ६ ॥

७–तस्यादित उदात्तमर्द्धह्रस्वम् ॥ अ० ॥ १ । २ । ३२ ॥

जो पूर्व सूत्र में स्वरित विधान किया है उस के तीन भेद होते हैं। ह्रस्वस्वरित, दीर्घस्वरित और प्लुतस्वरित। सो इन स्वरितों की आदि में आधी मात्रा उदात्त होती और सब अनुदात्त रहती हैं जैसे। क। कन्या। शक्तिके ३ शक्तिके। यहां ह्रस्वदीर्घ और प्लुत तीनों क्रम से स्वरित हुए हैं। इस सूत्र में ह्रस्व के कहने से यह सन्देह होता है कि दीर्घस्वरित और प्लुतस्वरित में उदात्त का विभाग न होना चाहिये क्योंकि ह्रस्वसंज्ञा से दीर्घ प्लुतसंज्ञा भिन्नकालिक है। इसीलिये अर्द्धह्रस्वशब्द के आगे प्रमाण अर्थ में मात्रच्प्रत्यय का लोप महाभाष्यकार ने माना है कि ह्रस्व का अर्द्धभाग मात्र अर्थात् आदि की आधी मात्रा ह्रस्व दीर्घ प्लुत किसी में हो उदात्त हो जाती है। इस सूत्र के उपदेश करने में प्रयोजन यह है कि जो मिली हुई चीज होती है उस में नहीं जाना जाता कि कौनसा कितना भाग है। जैसे दूध और जल मिलादें तो यह नहीं विदित होता कि कितना दूध और कितना जल है तथा किधर दूध और किधर जल है इसी प्रकार यहां भी उदात्त और अनुदात्त मिले हुए हैं इसकारण जाना नहीं जाता कि कितना उदात्त और कितना अनुदात्त और किधर उदात्त और किधर अनुदात्त है। इसलिये सब के मित्र हो के पाणिनि महाराज ने इस सूत्र का उपदेश किया है जिस से ज्ञात होजावे कि इतना उदात्त इतना अनुदात्त तथा इधर उदात्त और इधर अनुदात्त है (प्रश्न) जो पाणिनि महाराज सब के ऐसे परम मित्र थे तो इस प्रकार की और बातें क्यों नहीं प्रसिद्ध कीं। जैसे स्थान करण प्रयत्न नादानुप्रदान आदि (उत्तर) जब व्याकरण अष्टाऽध्यायी बनाई गई थी उस से पूर्व ही शिक्षा आदि कई ग्रन्थ बन चुके थे। जिन में स्थान करण आदि का प्रकार लिखा है क्योंकि शब्दके उच्चारण में जितने साधन हैं वे मनुष्य को प्रथम ही जानने चाहिये। और जो बातें उन ग्रन्थों में लिख चुके थे उन को फिर अष्टाऽध्यायी में भी लिखते तो पिष्टपेषणदोषवत् पुनरुक्त दोष समझा

For Private And Personal Use Only

जाता । इसलिये जो बातें वहां नहीं लिखीं वे यहां प्रसिद्ध की हैं । तथा गणना से भी व्याकरण तीसरा वेदाङ्ग है इसलिये पाणिनि जी महाराज ने सब कुछ अच्छा ही किया है । जो इस सूत्र का प्रयोजन और इस पर प्रश्नोत्तर लिखे हैं सो सब महाभाष्य में स्पष्ट कर के इसी सूत्र पर लिखे हैं * ॥ ७ ॥

८—एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ ॥ अ० ॥ १ । २ । ३३ ॥

दूर से अच्छे प्रकार बल से बुलाने अर्थ में उदात्त अनुदात्त और स्वरित इन तीनों स्वरों का एकश्रुति अर्थात् एकतार श्रवण हो पृथक् २ सुनने में न आवें ऐसा उच्चारण करना चाहिये । जैसे । आगच्छ भो माणवक देवदत्त ३ । यहां उदात्तानुदात्तस्वरित का पृथक् २ श्रवण नहीं होता । दूरात् ग्रहण इसलिये है कि । आगच्छ भो भवदेव । यहां उदात्त अनुदात्त और स्वरितों का अलग २ उच्चारण होता है ॥ ८ ॥

९—उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ६६ ॥

सब स्वरप्रकरण में यह सामान्य नियम समझना चाहिये कि जो उदात्त से परे अनुदात्त हो तो उस को स्वरित हो जाता है । जैसे । कृतेन । यहां (ते) उदात्त है उस से परे नकार अनुदात्त को स्वरित हो जाता है । कृतेन । तथा । गार्ग्यः । यहां गा उदात्त है और (र्ग्य) अनुदात्त था उस को (र्ग्य) स्वरित हो जाता है । इसी प्रकार उदात्त से परे जहां २ स्वरित आता है वहां २ सर्वत्र असंख्य शब्दों में इसी सूत्र से अनुदात्त को स्वरित जानना चाहिये । और जहां उदात्त से परे अनेक अनुदात्त हों वहां एक को स्वरित औरों को जो होना चाहिये सो आगे लिखेंगे । उदात्त से परे जो अनुदात्त उस से परे उदात्त वा स्वरित होने में विशेष इतना है कि— ॥ ९ ॥

१०—नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ६७ ॥

उदात्त से परे जिस अनुदात्त को स्वरितविधान किया है यदि उस से परे

* (तस्यादित०) इस सूत्र के व्याख्यान में काशिकाकार जयादित्य और भट्टोजिदीक्षित आदि लोगों ने लिखा है कि इस सूत्र में ह्रस्वग्रहण शास्त्रविरुद्ध है सो यह केवल उन की भूल है क्योंकि जो ह्रस्वग्रहण का कुछ प्रयोजन नहीं होता तो महाभाष्यकार अवश्य प्रसिद्ध कर देते उन्हों ने तो जो इस में सन्देह हो सकता है उस का समाधान किया है कि अर्द्धह्रस्व शब्द के आगे मात्रच् प्रत्यय का लोप जानो जिस से दीर्घ प्लुत स्वरित में भी उदात्त का विभाग हो जावे । ह्रस्वस्यार्द्धमर्द्धह्रस्वम् । एक मात्रा का ह्रस्व है उस की आधी मात्रा जो आदि में है वह उदात्त और शेष इस से परे सब अनुदात्त है यह बात इस (अर्द्धह्रस्व) के ग्रहण ही से जानी गई ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उदात्त वा स्वरित हो तो उस अनुदात्त को स्वरित न हो। परन्तु गार्ग्य,काश्यप, गालव इन ऋषियों के मत को छोड़ के अर्थात् इन तीनों के मत में तो उस अनुदात्त को भी स्वरित हो जावे कि जिस से परे उदात्त वा स्वरित हो। परन्तु यह गार्ग्य आदि ऋषियों का मत वेद में प्रवृत्त नहीं होता क्योंकि वेद सनातन हैं वहां किसी का मत नहीं चलता। लौकिकप्रयोगों में गार्ग्य आदि का मत चल जाता है। वेद में सर्वत्र उदात्त स्वरितोदय हो तो भी अनुदात्त ही बना रहता है। जैसे। कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। यहां। देवस्य नाम। नाम शब्द आद्युदात्त के परे होने से भी 'व' उदात्त से परे 'स्य' अनुदात्त को स्वरित नहीं हुआ। तथा। न त्वं तदुकथ्यम्। यहां तकार उदात्त से परे दु अनुदात्त को आगे "कथ्यं" स्वरित होने से भी स्वरित नहीं होता। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये। लौकिक उदाहरण। गार्ग्य ऋषिः। यहां गार्ग्य और ऋषि दोनों शब्द आद्युदात्त हैं। ऋकार उदात्त के उदय में अनुदात्त 'र्ग्य' को स्वरित नहीं होता। गार्ग्य ऋषिः। और गार्ग्य आदि के मत में। गार्ग्य ऋषिः। ऐसा भी होता है। अब एकश्रुतिस्वरविषय में लिखते हैं॥ १०॥

११-यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु ॥ अ० ॥ १ । २ । ३४ ॥

यज्ञकर्म अर्थात् यज्ञसम्बन्धी कर्म करने में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं वहां उदात्त अनुदात्त और स्वरित को एकश्रुतिस्वर हो उदात्तादि का पृथक् २ श्रवण न हो परन्तु जप करने में तथा न्यूङ्ख किसी प्रकार के वेद के स्तोत्रों का नाम है वहां और सामवेद में उदात्तादि के स्थान में एकश्रुति न हो किन्तु तीनों स्वर पृथक्२ बोले जावें जैसे। समिधाऽग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन॥ १॥ इत्यादि मन्त्र होम करते समय स्वरभेद के विना ही पढ़े जाते हैं। तीनों स्वर के विभाग से वेदमन्त्रों का पाठ होना चाहिये इस कारण यज्ञकर्म में भी पृथक् २ उच्चारण प्राप्त था इसलिये इस सूत्र का आरम्भ है॥ ११॥

१२-उच्चैस्तरां वा वषट्कारः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३५ ॥

जो यज्ञकर्म में वषट्कार शब्द है वह विकल्प कर के उदात्ततर हो और पक्ष में एकश्रुतिस्वर होता है। जैसे। वषट्कारैः सरस्वती। वषट्कारैः सरस्वती। यहां उदात्त और एकश्रुति दोनों का चिन्ह न होने से एक ही प्रकार का स्वर दीख पड़ता है परन्तु उच्चारण में भेद जान पड़ता है॥ १२॥

१३-विभाषा छन्दसि ॥ अ० ॥ १ । २ । ३६ ॥

वेदमन्त्रों के सामान्य उच्चारण करने में उदात्त अनुदात्त और स्वरित को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

एकश्रुति स्वर विकल्प करके होता है। एकश्रुतिपक्ष में उदात्तादि का भिन्न २ उच्चारण नहीं होता। सो ये दो पक्ष तीन वेदों में घटते हैं। सामवेद में तीनों स्वर भिन्न २ उच्चारण किये जाते हैं क्योंकि (११) सूत्र से सामवेद में एकश्रुति होने का निषेध कर चुके हैं ॥ १३ ॥

१४–न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३७ ॥

जो सुब्रह्मण्या ऋचा में यज्ञकर्म में पूर्वसूत्र से एकश्रुतिस्वर प्राप्त है सो न हो किन्तु जो उस में स्वरित वर्ण हों उन के स्थान में उदात्त होजावे। सुब्रह्मण्या एक ऋचा का नाम है। उस का व्याख्यान शतपथ ब्राह्मण में तृतीय काण्ड तृतीय प्रपाठक के प्रथम ब्राह्मण में सत्रहवीं कण्डिका से लेके बीसवीं कण्डिका पर्य्यन्त किया है। उस ऋचा में जितने शब्द हैं उन सब में स्वर का विशेष नियम समझना चाहिये ॥

भा०–सुब्रह्मण्यायामोकार उदात्तो भवति ॥

सुब्रह्मन् शब्दसे साध्वर्थ में यत् प्रत्यय होके स्वरितान्त होता है। उसका टाप् और आकार के साथ एकादेश होके स्वरित हो उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त आदेश हो जाता है और तीन वर्ण अनुदात्त रहते हैं। सुब्रह्मण्योम् ॥

भा०–आकार आख्याते परादिश्च वाक्यादौ च द्वे द्वे ॥

जहां आख्यातक्रिया परे हो वहां उस से पूर्व का आकार और उस क्रिया का आदि वर्ण उदात्त होता है जैसे। इन्द्र आगच्छ। हरिव आगच्छ। यहां ऐसा समझो कि (इन्द्र) और (हरिवः) शब्दआमंत्रित होने से आद्युदात्त हैं उन के दूसरे वर्ण अनुदात्त हैं उन को उदात्त से परे स्वरित हो जाता है। उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त करते हैं। इस प्रकार इन्द्र शब्द सब उदात्त और हरिव शब्दमें भी जो दो उदात्त और वकार अनुदात्त है उस को पूर्व उदात्त के अविद्ध मानने से स्वरित नहीं होता। आगच्छ। में आकार तो प्रथम ही उदात्त है उस से परे दोनों अक्षर अनुदात्त हैं। आकार उदात्त से परे गकार अनुदात्त को स्वरित होके इस सूत्र से स्वरित को उदात्त होजाता है। इस प्रकार। इन्द्र आगच्छ इस वाक्य में एक छकार अनुदात्त और चार वर्ण उदात्त रहते हैं तथा। हरिव आगच्छ इस वाक्य में वकार छकार दो वर्ण अनुदात्त और चारवर्ण उदात्त रहते हैं। सुब्रह्मण्यो ३ मिन्द्र आगच्छ हरिव आगच्छ मेधातिथे र्मेष वृषणश्वस्य मेने गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जार। कौशिक ब्राह्मण गौतमब्रुवाण श्वः सुत्यामागच्छ मघवन् ॥ १ ॥ मेधातिथे र्मेष। यहां आमंत्रित मेष शब्द के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परे पूर्व सुबन्तको पराङ्गवत् आद्युदात्त होके सब अक्षर अनुदात्त होजाते हैं । फिर 'मे' उदात्त से परे 'धा' अनुदात्त को स्वरित होकर उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त हो के आदि में दो उदात्त और चार वर्ण अनुदात्त रहते हैं इसी प्रकार । वृषणश्वस्य मेने । गौरावस्कन्दिन् । अहल्यायै जार । कौशिक ब्राह्मण गौतम ब्रुवाण । इन सब में दो२ आदि में उदात्त और सब वर्ण अनुदात्त रहते हैं । स्वस् और सुत्या शब्द अन्तोदात्त हैं । स्वस् उदात्त शब्दसे परे सु अनुदात्त को स्वरित होके उदात्त हो जाता है इस प्रकार तीनों उदात्त रहते हैं । स्वः सुत्याम् । आगच्छ मघवन् । यहांभी उदात्त आकार से परे गकार अनुदात्त को स्वरित होके उदात्त होजाता है । मघवन् शब्दआमंत्रित के होने से सब अनुदात्त होजाता है । यहां जितने पदों का व्याख्यान किया है वे सब सुब्रह्मण्या ऋचा के ही हैं । अब आगे एक अपूर्व बात लिखते हैं कि जो इस सूत्र से भी सिद्ध नहीं है ॥ १४ ॥

१५—वा०—सुत्यापराणामन्तः ॥

सुत्या शब्द जिन से परे हो उन को अन्तोदात्त हो । द्व्यहे सुत्याम् । त्र्यहे सुत्याम् । यहां द्व्यह, त्र्यह शब्दों को अन्तोदात्त होके उससे परे 'सु' अनुदात्त को स्वरित और स्वरित को उदात्त होजाता है ॥ १५ ॥

१६—वा०—असावित्यन्तः ॥

वाक्य में जो प्रथमान्त पद है वह अन्तोदात्त हो । गार्ग्यो यजते । गार्ग्य शब्दप्रथम आद्युदात्त प्राप्त है उस का बाधक यह अन्तोदात्त होके उस उदात्त से परे यकार को स्वरित और स्वरित को इस से उदात्त हो जाता है और (यजते) क्रिया में अन्त्यके दो वर्ण अनुदात्त होजाते हैं ॥ १६ ॥

१७—वा०—अमुष्येत्यन्तः ॥

अमुष्य यह षष्ठी के एक वचन का संकेत है । जो षष्ठ्येकवचनान्त पद है वह अन्तोदात्त हो जैसे । दाक्षेः पिता यजते । यहां दाक्षी शब्दषष्ठी का एक वचनहै उस इञ् प्रत्ययान्त को आद्युदात्तस्वर प्राप्त है उसको अन्तोदात्त होजाता है और पिता शब्द तृच् प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त ही है । अन्तोदात्त दाक्षिशब्द से परे 'पि' अनुदात्त को स्वरित होके उदात्त और अन्तोदात्त पितृ शब्द से परे अनुदात्त यकार को स्वरित होकर उदात्त होजाता है । इस प्रकार मध्य में चार उदात्त तथा आदि में एक अन्त में दो अनुदात्त रहते हैं । जैसे दाक्षेः पिता यजते ॥ १७ ॥

१८—वा०—स्यान्तस्योपोत्तमं चान्त्यश्च ॥

जहां षष्ठी का एकवचन स्यान्त हो वहां उपोत्तम अर्थात् तृतीय वा चतुर्थवर्ण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उदात्त होता है और उस शब्द को भी अन्तोदात्त होजाता है । गार्ग्यस्य पित यजते । यहां तृतीय वर्ण (स्य) और द्वितीय (र्ग्य) को उदात्त और(पिता यजते यहां पूर्ववत् उदात्त होता है । इसलिये पांचवर्ण मध्य में उदात्त और आदि मे एक अन्त में दो अनुदात्त रहते हैं । जैसे । गार्ग्यस्य पिता यजते । वात्स्यस पिता यजते ॥ १८ ॥

१९-ग्रा०-ग्रा नामधेयस्य ॥

जो किसी के नामवाची स्यान्त षष्ठ्येकवचन में उपोत्तम तृतीय वर्ण आदि हैं वे विकल्प करके उदात्त होते हैं पक्ष में जैसा प्राप्त है वैसा बना रहता है। देवदत्तस्य पिता यजते । यहां दत्तस्य ये तीनों उदात्त और पिता यजते । यहां पूर्ववत् उदात्त होके मध्य में छः वर्ण उदात्त और आदि अन्त में दो २ अनुदात्त हो जाते हैं जैसे । देवदत्तस्य पिता यजते । यज्ञदत्तस्य पिता यजते । और पक्ष में देवदत्त शब्द अन्तोदात्त है सो ज्यों का त्यों ही बना रहता है और । पिता यजते यहां पूर्ववत् स्वरित को उदात्त होजाता है जैसे। देवदत्तस्य पिता यजते॥१९॥

२०-देवब्रह्मणोरनुदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३८ ॥

भा०-देवब्रह्मणोरनुदात्तत्वमेके ॥

पूर्व सूत्र से सुब्रह्मण्या ऋचा में देव और ब्रह्मन् शब्द के स्वरित को उदात्त पाता है सो न हो किन्तु उस स्वरित को अनुदात्त ही होजावे । भाष्यकार का अभिप्राय यह है कि जो देव और ब्रह्मन् शब्द को अनुदात्त कहते हो सो किन्हीं आचार्यों का मत है अर्थात् विकल्प करके होना चाहिये। देव और ब्रह्मन् शब्द आमंत्रित हैं इस से विशेष वचन आमंत्रित ब्रह्मन् शब्द के परे पूर्व आमंत्रित देव शब्द को विकल्प करके अविद्यमानवत् होने से पर आमंत्रित को जहां एक पक्ष में निघात नहीं होता वहां दोनों आमंत्रित को आद्युदात्त होकर उदात्त से परे दूसरा २ वर्ण स्वरित होके उस को फिर इस सूत्र से अनुदात्त होजाता है जैसे । देवा ब्रह्माणः । और दूसरे पक्ष में जहां पूर्व आमंत्रित को विद्यमान मानते हैं वहां पर आमंत्रित को निघात होकर पूर्व आमंत्रित को आद्युदात्त हो जाता है पीछे 'दे' उदात्त से परे 'वा' अनुदात्त को स्वरित होके जिन के मत में अनुदात्त होता है वहां तो । देवा ब्रह्माणः । ऐसा प्रयोग, और जिन के मत में स्वरित को अनुदात्त नहीं होता वहां पूर्व सूत्र से स्वरित को उदात्त होकर । देवा ब्रह्माणः । ऐसा प्रयोग होता है । और जिन आचार्यों का ऐसा मत है कि देव और ब्रह्मन् शब्द समानाधिकरण सामान्यवचन हैं वहां येही दो प्रयोग होते हैं क्योंकि अविद्यमानवत् का निषेध होने से पर आमंत्रित को नित्य ही निघात होजाता है ॥ २० ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२१-स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् ॥ अ० ॥ १।२।३९ ॥

स्वरित से परे संहिता में एक दो और बहुत अनुदात्तों को भी पृथक् २ एकश्रुति स्वर होता है ॥

भा०—एकशेषनिर्देशोऽयम् । अनुदात्तस्य चानुदात्तयोश्चानुदात्तानामिति ॥

भाष्यकार का अभिप्राय यह है कि जो इस सूत्र में बहुवचनान्त अनुदात्त शब्द पढ़ा है उस में एकशेष समझना चाहिये अर्थात् एक दो और बहुत अनुदात्तों को भी पृथक् २ कार्य होता है । जैसे । अग्निमी॑ळे पुरोहितम् । यहां 'मी' स्वरित से परे एक 'ळे' अनुदात्त को एकश्रुतिस्वर हुआ है । एकश्रुति का नियम यही है कि स्वरित से परे उस पर कोई चिन्ह नहीं होता (होतारं रत्नधातमम्) यहां 'ता' स्वरित से परे दो रेफ अनुदात्त वर्णों को एकश्रुतिस्वर हुआ है तथा । इमं मे॑ गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि । यहां मे स्वरित वर्ण है उससे परे द्रि पर्यंत सब अनुदात्त हैं उन सब को एकश्रुतिस्वर इस सूत्र से हुआहै । संहिताग्रहण इसलिये हैकि । इमम् । मे । गङ्गे । यमुने । सरस्वति । शुतुद्रि । यहां पृथक् २ पदों का अवसान होने से एकश्रुतिस्वर न हुआ ॥ २१ ॥

२२-उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ॥ अ० ॥ १ । २ । ४० ॥

उदात्त और स्वरित जिस से परे हों उस अनुदात्त को एकश्रुतिस्वर न हो किन्तु सन्नतर अर्थात् अनुदात्ततर होजावे । पूर्व सूत्र से सामान्य विषय में एकश्रुतिस्वर प्राप्तहै उस का इस सूत्र से विशेष विषय में निषेध किया है जैसे । अग्निः पूर्वे॑भि ऋषि॑भिः । यहां ऋषिशब्द आद्युदात्त के परे भिस् विभक्ति को एकश्रुति स्वर प्राप्त है सो न हुआ । किन्तु उसको अनुदात्ततर होगया । तथा । मरु॑तः क्व॑ सुविता । यहां क्व शब्द स्वरित के परे 'त' अनुदात्त को स्वरित नहीं होता किन्तु अनुदात्ततर होजाता है ॥ २२ ॥

२३-आद्युदात्तश्च ॥ अ० ॥३ । १ । २ ॥

धातुओं वा प्रातिपदिकों से जितने प्रत्यय होते हैं उन सब के लिये यह उत्सर्गसूत्र है कि सब प्रत्यय आद्युदात्त हों । जो एकाक्षर के हो प्रत्यय हैं वे आद्यन्तवद्भाव से उदात्त होजाते हैं जैसे प्रियः । यहां एकाक्षर क प्रत्यय किया है । आ॒खनि॑कवकः । यहां इकवक प्रत्यय आद्युदात्त हुआ है । इस के अपवाद विषय में अन्य प्रत्ययस्वरविधायकसूत्र बहुत हैं उन में से थोड़े यहां भी आगे लिखे हैं ॥ २३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२४–अनुदात्तौ सुप्पितौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३ ॥

जो सुप् अर्थात् सु आदि इक्कीस और पित् प्रत्यय हैं वे अनुदात्त हों जैसे । सोमसुतौ । सोमसुतः । यहां सुप् में औ तथा जस् अनुदात्त होके उदात्त से परे स्वरित होगये हैं । भवति । पचति । इत्यादि । यहां शप् और तिप् पित् प्रत्यय होने से अनुदात्त हुए हैं ॥ २४ ॥

२५–अनुदात्तं पदमेकवर्जम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १५८ ॥

स्वरप्रकरण में यह परिभाषासूत्र सर्वत्रप्रवृत्त होता है । जो दो वा अनेक कितने ही पदों का समास होताहै वह भी एक पद कहाता है । स्वरप्रकरण में जिस एक पद में उदात्त वा स्वरित जिस वर्ण को विधान करें उससे पृथक् जितने वर्ण हों वे सब अनुदात्त हो जावें । इस बात का स्मरण सब स्वरप्रकरण में रखना चाहिये । इस सूत्र का प्रयोजन महाभाष्यकार दिखलाते हैं ॥

का०–आगमस्य विकारस्य प्रकृतेः प्रत्ययस्य च । पृथक्स्वरनिवृत्त्यर्थमेकवर्जं पदस्वरः ॥

गोकार्थं । आगम, विकार, प्रकृति और प्रत्यय का पृथक् स्वर न होने के लिये इस सूत्र का आरम्भ किया है । आगम जो टित् कित् मित् चिन्ह के साथ अपूर्व उपजन होजाता है । उस का पृथक् स्वर हो जावे । जैसे । चत्वारः । अनड्वाहः । यहां चतुर् और अनडुह् शब्द को आम् आगम हुआ है उसी का पृथक् स्वर रहता और प्रकृतिस्वर की निवृत्ति हो जाती है । अर्थात् प्रकृति और आगम के दोनों स्वर एक पद में एक साथ नहीं रह सकते । विकार जो किसी वर्ण वा शब्द को आदेश हो जाता है । जैसे । अस्थ्ना । दध्ना । अस्थनि । दधनि । यहां अस्थि और दधि शब्द प्रथम आद्युदात्त हैं पश्चात् तृतीयादि अजादि विभक्तियों में इन को अनङ् आदेश हो के प्रकृति और आदेश के दो स्वर प्राप्त हैं सो नहीं होते किन्तु प्रकृति स्वर को बाध के आदेश का उदात्त स्वर हो जाता है । प्रकृति धातु वा प्रातिपदिक जिस से प्रत्यय उत्पन्न होते हैं जैसे । गोपायति । धूपायति । यहां प्रकृतिस्वर गोपाय धूपाय धातु को अन्तोदात्त और प्रत्ययस्वर आय प्रत्यय को आद्युदात्त दो स्वर प्राप्त हैं सो न हों किन्तु प्रत्ययस्वर को बाध के प्रकृतिस्वर हो जावे । प्रत्यय जो धातु वा प्रातिपदिक से परे विधान किया जाताहै जैसे । कर्त्तव्यम् । तैत्तिरीयः । यहां कृधातु और तित्तिरि प्रातिपदिक से तव्य और छ प्रत्यय हुआ है प्रकृति और प्रत्यय के दोनों स्वर प्राप्त हैं सो न हों किन्तु प्रकृतिस्वर को बाध के प्रत्यय का आद्युदात्त स्वर हो जावे ॥२५॥

For Private And Personal Use Only

वा०-२६-सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्वञ्च ॥

भा०-सत्येकस्मिन् स्वरे विशिष्टो द्वितीयः स्वरो बलवान् भवति ॥

सतिशिष्ट वह कहाता है कि एक स्वर के वर्तमान में द्वितीय विशेषविधान किया जावे वही बलवान् रहता है । प्रथम का स्वर निवृत्त हो जाता और पश्चात् विहितस्वर प्रधान रहता है ॥

भा०-तच्चानेकप्रत्ययसमासार्थम् ॥

सतिशिष्ट का प्रयोजन यह है कि अनेक प्रत्यय और अनेक समासों में उत्तरोत्तर स्वर बलवान् होते जावें । जैसे अनेक प्रत्यय । औपगवः। यहां उपगु शब्द से अण् हुआ है उसी का स्वर रहता है। औपगव शब्द से त्व । औपगवत्वम्। यहां स्वर का बाधक त्व प्रत्यय का स्वर । औपगवत्वमेव, औपगवत्वकम् । यहां त्व प्रत्यय के स्वर का बाधक क प्रत्यय का स्वर रहताहै तथा । पुरूणां राजा, पौरवः । यहां अण प्रत्यय का स्वर प्रकृतिस्वर का बाधक । पौरवस्यापत्यम् । इञ् । आद्युदात्त पौरविः । तस्य युवापत्यं फक् । अन्तोदात्त । पौरवायणः । पौरवायणानां समूहः वुञ् । आद्युदात्त । पौरवायणकम् । पौरवायणकानां छात्राः । पौरवायणकीयाः । यहां छ प्रत्यय आद्युदात्त । पौरवायणकीयैः प्रोक्तमधीयते तेपि, पौरवायणकीयाः । अण् का स्वर अन्त में रहता है । इसी प्रकार बहुत कुछ प्रत्ययमाला बन सकती है । अनेक समास । वीरश्चासौ राजा, वीरराजः । टच्-अन्तोदात्त । वीरराजस्य पुरुषो वीरराजपुरुषः । वीरराजपुरुषस्य पुत्रः, वीरराजपुरुषपुत्रः । वीरराजपुरुषपुत्रः प्रधानो येषां ते, वीरराजपुरुषपुत्रप्रधानाः । यहां पूर्वपदप्रकृतिस्वर होता है । इसी प्रकार के इन से बहुत बड़े २ समास हो सकते हैं । और उनके स्वर भी तदनुकूल हो जावें गे ॥ २६ ॥

वा०-२७-विभक्तिस्वरान्नञ्स्वरो बलीयान् ॥

विभक्तिस्वर से नञ्स्वर बलवान् होता है जैसे । न तिस्रः, अतिस्रः, यहां विभक्तिस्वर-जस् विभक्ति को उदात्त प्राप्तहै उसका बाधक नञ्स्वर पूर्वपदप्रकृतिभाव हो जाता है ॥ २७ ॥

वा०-२८-विभक्तिनिमित्तस्वराच्च नञ्स्वरो बलीयानिति वक्तव्यम् ॥

विभक्ति जिस का निमित्त है उस को जो स्वर होता है उस को बाध के नञ्स्वर होना चाहिये । जैसे । अचत्वारः ।अनडुहः । यहां विभक्ति को मानके जो आम् आगम होता है उस का बाधक नञ् प्रकृतिस्वर हो जाताहै ॥ २८ ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२९–ञ्नित्यादिर्नित्यम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १९७ ॥

ञित् नित् प्रत्ययों के परे पूर्व प्रकृति को आद्युदात्तस्वर हो । यह सूत्र (२४) सूत्र का अपवाद है । और इस के अपवाद आगे कुछ लिखेंगे । उदाहरण । ञित्-ष्यञ्–ब्राह्मण्यम् । चातुर्वर्ण्यम् । त्रैलोक्यम् । यञ्–गार्ग्यः । शाकल्यः । माधव्यः । बाभ्रव्यः । इत्यादि । इञ्–दाक्षिः । सौधातकिः । वैयासकिः । फिञ्–तैकायनिः । कैतवायनिः । इत्यादि । नित् । वुन्–वासुदेवकः । अर्जुनकः । ठन्–वणिकः । कन्—द्रव्यकः । इत्यादि शब्द आद्युदात्त हो जाते हैं ॥ २८ ॥

३०–कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः॥ अ० ॥ ६ । १ । १५९ ॥

घञन्त कर्ष धातु और आकारवान् घञन्त शब्दों के अन्त में उदात्तस्वर हो । कर्षधातु के कहने से भ्वादिगण वाले का ग्रहण होता है । गुणनिषेध वाले तुदादि का ग्रहण नहीं होता। जैसे । कर्षः । त्यागः । रागः । दायः । धायः । पाकः । पाठः । इत्यादि । आकारवान् कहने से कर्ष को नहीं प्राप्त था इसलिये पृथक् ग्रहण किया है। आकारवान् ग्रहण इसलिये है कि । मन्थः । योगः । यहां न हो॥ ३० ॥

३१–उञ्छादीनां च॥ अ० ॥ ६ । १ । १६० ॥

उञ्छ आदि गणपठित शब्दों को अन्तोदात्त स्वर हो । जैसे । उञ्छः । म्लेच्छः । जञ्जः । जल्पः । इन चार घञन्त शब्दों में आद्युदात्त प्राप्त था सो न हुआ। जपः । व्यधः । ये दो शब्द अप् प्रत्ययान्त हैं इन को भी आद्युदात्त स्वर प्राप्त था ॥

गणसूत्र–युगः कालविशेषे रथाद्युपकरणे च ॥ १ ॥

युग शब्द कालविशेष अर्थात् कलियुग द्वापरयुग इत्यादि वा पीढ़ी तथा रथ आदि के उपकरण अर्थात् अवयव जुआ आदि अर्थ में अन्तोदात्त होता है अन्यत्र नहीं होता । युगः । घञन्त होने से आद्युदात्त प्राप्त था ॥

सू०—गरो दूष्ये ॥ २ ॥

दूष्य अर्थात् विष अर्थ में गर शब्द अन्तोदात्त हो । जैसे । गरः । अन्यत्र आद्युदात्त रहेगा ॥

सू०–वेगवेदवेष्टबन्धाः करणे ॥ ३ ॥

करणकारक में प्रत्यय किया हो तो घञन्त वेग आदि चार शब्द अन्तोदात्त हों । विजते येन स, वेगः । वेत्ति येन स, वेदः । वेष्टते येन स वेष्टः । बध्नाति येन स बन्धः । और भाव वा अधिकरण में प्रत्यय होगा तो आद्युदात्त ही समझे जावेंगे ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सू०—स्तुयुद्रुवश्छन्दसि ॥ ४ ॥

क्विबन्त स्तु आदि तीन धातुओं को अन्तोदात्तस्वर हो। जैसे। प्रष्टुत्। संयुत्। परिद्रुत्। यहां उपसर्गों को प्रकृतिभाव प्राप्त था॥

सू०—वर्त्तनिः स्तोत्रे ॥ ५ ॥

जो स्तुतिप्रकरण में वर्त्तनि शब्द पढ़ा हो तो अन्तोदात्त स्वर हो जैसे। वर्त्तनिः। अन्यत्र अनि प्रत्यय आद्युदात्त होने से मध्योदात्त स्वर होगा। वर्त्तनिः।

सू०—श्वभ्रे दरः ॥ ६ ॥

श्वभ्र अभिधेय हो तो दर शब्द अन्तोदात्त हो। जैसे। दरः। अन्यत्र आद्युदात्त ही समझा जाता है जैसे। दरः॥

सू०—साम्बतापौ भावगर्हायाम् ॥

भावगर्हा अर्थात् धात्वर्थ की निन्दा में साम्ब और तापशब्द अन्तोदात्त हों। जैसे। साम्बः। तापः। अन्यत्र। आद्युदात्त ही समझे जावें गे॥

सू०—उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र ॥

उत्तम और शश्वत्तम ये दोनों शब्द सामान्य अर्थों में अन्तोदात्त हों जैसे। उत्तमः। शश्वत्तमः। तथा भक्षः। मन्थः। भोगः। देहः। इत्यादि॥३१॥

३२—अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६१ ॥

जिस अनुदात्त के परे उदात्त का लोप हो उस अनुदात्त को उदात्त हो। जैसे। औपगव-ई। यहां ई अनुदात्त के परे अन्तोदात्त औपगव शब्द के अन्त्य वर्ण का लोप होकर ईकार उदात्त हो जाता है। औपगवी। तथा। दाक्षायणी। प्लाक्षायणी। कुमारी। इत्यादि। अस्थन्, दधन् शब्द दोनों अन्तोदात्त हैं तृतीयादि अजादि विभक्तियों में उदधा अकार का लोप हो कर। अस्थ्ना। दध्ना। अस्थ्नि। दध्नि। इत्यादि। इसी प्रकार इस सूत्र का बहुत विषय है जहां कहीं अनुदात्त के परे उदात्त का लोप हो वहां सर्वत्र इसी से उदात्त समझा जावे गा। यत्र ग्रहण इसलिये है कि। भार्गवः। भार्गवौ। भृगवः। यहां जस् विभक्ति के आने से प्रथम ही प्रत्यय का लुक् होजाता है। उदात्तग्रहण इसलिये है कि जहां अनुदात्त के परे अनुदात्त ही का लोप हो वहां उदात्त न हो॥ ३२॥

३३—धातोः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६२ ॥

धातु को अन्तोदात्त स्वर हो। पचति। पठति। चिचीषति। तुष्टूषति। जर्णोति। पापच्यते। जागर्त्ति। गोपायति। इत्यादि इन में जितने अंश को धातु संज्ञा है उसी को अन्तोदात्त हुआ है॥ ३३॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३४-चितः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६३ ॥

चित् अर्थात् चकार इत् हो के लोप जिस में हो उस समुदाय को अन्तोदात्त स्वर हो। प्रत्यय के आद्युदात्त स्वर का अपवाद यह सूत्र है। घुरच्-भङ्गुरः। भासुरः। मेदुरः। कौण्डिन्य को कुण्डिनच् आदेश। कुण्डिनाः। अकच्-सर्वकः। उच्चकैः। नीचकैः। बहुच्-बहुकृतम्। बहुभुक्तम्। बहुपटु। इत्यादि ॥ ३४ ॥

३५-तद्धितस्य च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६४ ॥

जो तद्धित संज्ञक चित् प्रत्यय है वह अन्तोदात्त हो। जैसे। च्फञ्। कौञ्जायनः। भौञ्जायनः। इत्यादि। पूर्वसूत्र में चित् के कहने से यहां भी अन्तोदात्त होजाता फिर इस सूत्र का पृथक् आरम्भ इसलिये किया है कि जहां दो अनुबन्धों से दो स्वर प्राप्त हों वहां भी चित् का स्वर अन्तोदात्त ही हो। जैसे च्फञ् प्रत्ययान्तों को हुआ ॥ ३५ ॥

३६-कितः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६५ ॥

जो तद्धित संज्ञक कित् प्रत्यय है वह अन्तोदात्त हो जैसे। फक्-नाडायनः। चारायणः। दाचायणः। ठक्-रैवतिकः। आचिकः। कौद्दालकः। पारिखिकः ॥ ३६ ॥

३७--सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६८ ॥

जो सु अर्थात् सप्तमी के बहुवचन में एकाच् शब्द हो उस से परे जो तृतीयादि विभक्ति सो अन्तोदात्त हो जैसे। वाचा। वाग्भ्याम्। वाग्भिः, वाचे, वाचः, त्वचे, त्वचः। इत्यादि। सु ग्रहण इसलिये है कि, राज्ञा। राज्ञे। यहां नहो। एकाच् ग्रहण इसलिये है कि। किरिणा। गिरिणा। यहां विभक्ति उदात्त न हो। तृतीयादिग्रहण इसलिये है कि। वाचौ। वाचः। यहां न हो। विभक्तिग्रहण इसलिये है कि। वाक्तरा। यहां न हो। सप्तमी का बहुवचन सु इसलिये लिया है कि। त्वया। यहां भी विभक्ति उदात्त नहो ॥ ३७ ॥

३८-शतुरनुमोनद्यजादी ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७३ ॥

नुम्रहित जो शतृप्रत्ययान्त प्रातिपदिक उस से परे जो नदीसंज्ञक प्रत्यय और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति वह उदात्त हो। नदीसंज्ञक ङीप्। तुदती। नुदती। लुनती। इत्यादि अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति। लुनते। लुनतः। लुनतोः। लुनति। अनुम्ग्रहण इसलिये है कि। तुदन्तौ। नुदन्तौ इत्यादि में नदी उदात्त नहो। नद्यजादि ग्रहण इसलिये है कि तुदद्भ्याम्। तुदद्भिः। यहां विभक्ति उदात्त नहो ॥ ३८ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३९–वा०–नद्यजाद्युदात्तत्वे बृहन्महतोरुपसंख्यानम् ॥

जो बृहत् और महत् शब्द से परे नदी और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति है वह उदात्त हो जैसे। बृहती। महती। बृहता। बृहते। महता। महते। इत्यादि पृषत्। आदि शब्दों को शतृ प्रत्ययान्त के सब काय होते हैं। फिर इस वार्त्तिक के कहने का प्रयोजन यह है कि पृषत् आदि सब शब्दों से परे नदी और अजादि विभक्ति उदात्त न हों किन्तु बृहत् और महत् से ही हो॥ ३९ ॥

४०–उदात्तयणो हल्पूर्वात् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७४ ॥

हल् वर्ण जिसके पूर्व हो ऐसा जो उदात्त के स्थान में यण् उस से परे जो नदी संज्ञक प्रत्यय और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति सो उदात्त हो जैसे नदी–कर्त्री। हर्त्री। प्रकर्त्री। लवित्री। प्रसवित्री। इत्यादि। यहां सर्वत्र तृच् अन्तोदात्त के स्थान में यण् हुआ है। अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति। कर्त्रा। कर्त्रे। कर्त्रोः। लवित्रा। लवित्रे। लवित्रोः। इत्यादि। यहां उदात्तग्रहण इसलिये है कि। कर्त्री। हर्त्री। कर्त्रा। हर्त्रा। यहां तृन्नन्त शब्दों के आद्युदात्त न होने से अनुदात्त के स्थान में यण् हुआ है। यहां हल्पूर्वग्रहण इसलिये है कि। बहुतितवा। बहुतितवे। यहां उदात्त के स्थान में बहुतितउ शब्द के उकार को यण् तो हुआ है परन्तु वह उदात्त केवल अच् था। फिर विभक्ति को उदात्त का निषेध होके आष्टमिक सूत्र से स्वरित होता है॥ ४ ॥

४१–नकारग्रहणं च कर्त्तव्यम् ॥

जो नकारान्त से परे नदी संज्ञक प्रत्यय हो वह उदात्त हो। वाक्पत्नी। चित्पत्नी। यहां उदात्त के स्थान में यण् नहीं है॥ ४१ ॥

४२–ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७६ ॥

जो ह्रस्वान्त अन्तोदात्त प्रातिपदिक और नुट् का आगम इन से परे जो मतुप् प्रत्यय होता वह उदात्त हो। पित् प्रत्ययके अनुदात्त होनेका यह अपवाद है। ह्रस्व। अग्निमान्। वायुमान्। भानुमान्। कर्त्तृमान्। इत्यादि। नुट्। अक्षण्वता। शीर्षण्वतः। मूर्धन्वती॥ ४२ ॥

४३–वा०–मतुबुदात्तत्वे रेग्रहणम् ॥

रे शब्द से परे जो मतुप् होतो वह भी उदात्त हो। आरेवानेतु नो विशः। यहां रेवान् शब्दमें ह्रस्व के नहीं होने से नहीं प्राप्तथा॥ ४३ ॥

४४–वा०–त्रिप्रतिषेधश्च ॥

त्रि शब्दसे परे मतुप् उदात्त नहो। त्रिवतीः। यहां उदात्त नहुआ॥ ४४ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४५—नामन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७७ ॥

मतुप् प्रत्यय के परे जो ह्रस्व अङ्ग उस से परे षष्ठी का बहुवचन नाम् विभक्ति होती वह विकल्प करके उदात्त हो । जैसे । अग्नीनाम् । अग्नीनाम् । वायुनाम् । वायूनाम् । तिसृणाम् । तिसृणाम् । चतसृणाम् । चतसृणाम् । यहां ह्रस्व ग्रहण इस लिये है कि । कुमारीणाम् । किशोरीणाम् । इत्यादि में विभक्ति उदात्त न हो ॥ ४५ ॥

४६—ङ्याश्छन्दसि बहुलम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७८ ॥

जो ङ्यन्त से परे नाम् होतो वह बहुल कर के उदात्त हो अर्थात् कहीं हो और कहीं न हो । देवसेनानामभिभञ्जतीनाम् । यहां होगई तथा । नदीनां पारे जयन्तीनां मरुतः । यहां विभक्ति उदात्त नहीं होती ॥ ४६ ॥

४७—तित्स्वरितम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १८५ ॥

जो तित् प्रत्यय है वह स्वरित हो । यह आद्युदात्तप्रत्ययस्वर का अपवाद है । यत्-चिकीर्ष्यम् । जिहीर्ष्यम् । चिचीष्यम् । तुष्टूष्यम् । ण्यत्-कार्यम् । हार्यम् । इत्यादि ॥ ४७ ॥

४८—तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्त-मह्न्विङोः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १८६ ॥

तास् प्रत्यय, अनुदात्तेत् धातु, ङित् धातु, और अदुपदेश धातु इनसे परे जो सार्वधातुक संज्ञक लकार के स्थान में तिप् आदि प्रत्यय वे अनुदात्त हों परन्तु यह कार्य ह्नुङ् और इङ् धातु को छोड़ के होवे क्योंकि ये दोनों ङित् हैं । जैसे तास्-प्रत्यय—कर्त्ता । कर्त्तारौ । कर्त्तारः । अनुदात्तेत् । आस्ते । आसाते । आसते । ङित् । शेते । सूते । दोधीते । वेवीते । अदुपदेश, पठतः । पठन्ति । पचतः । पचन्ति । तासि आदि से परे ग्रहण इसलिये है कि । सुनुतः । सुन्वन्ति । यहां नहो । लसार्वधातुक ग्रहण इसलिये है कि । सुषुवे । सुषुवाते । यहां न हो और ह्नुङ् तथा इङ् का निषेध इसलिये है कि ह्नुते । अधीते । यहां अनुदात्त नहो ॥ ४८ ॥

४९—लिति ॥ अ० ॥ ६ । १ । १९३ ॥

लकार जिस का इत् गयाहो उस प्रत्यय से पूर्व उदात्त हो जैसे । चिकीर्षकः । जिहीर्षकः । यहां चिकीर्ष जिहीर्ष धातु से ण्वुल् हुआहै । भौरिकिविधम् । यहां तद्धित का विधल् प्रत्यय है । ऐषुकारिभक्तः । और यहां तद्धित का भक्तल् प्रत्यय हुआ है इत्यादि ॥ ४९ ॥

५०—आमंत्रितस्य च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १९८ ॥

जो आमंत्रित अर्थात् सम्बोधन में प्रथमाविभक्त्यन्त शब्द हैं उन को आद्यु-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दात्तस्वर हो जाता है जैसे । अग्ने । वायो । इन्द्र । देवदत्त । देवदत्तौ । देवदत्ताः । धनञ्जय । इत्यादि ॥ ५० ॥

५१—यतोऽनावः ॥ अ० ॥ ६ । १ । २१३ ॥

दो स्वर वाले यत् प्रत्ययान्त शब्दों को आद्युदात्तस्वर हो परन्तु नौ शब्द को छोड़ के । जैसे । देयम् । धेयम् । चेयम् । जेयम् । शरीरावयवाद्यत् । कण्ठ्यम् । ओष्ठ्यम् । जङ्घ्यम् । जिह्व्यम् । इत्यादि (तित्स्वरितम्) इस पूर्व लिखितसूत्र से द्व्यच् प्रातिपदिकों को भी स्वरित पाता सो उस का अपवाद यह सूत्र है । द्व्यच् ग्रहण इसलिये है कि । उरस्यम् । ललाट्यम् । नासिक्यम् । यहां आद्युदात्त न हो । नौ शब्द का निषेध इसलिये है कि । नाव्यम् । यहां भी आद्युदात्त नहो ॥५१॥

५२—समासस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २२३ ॥

समास किये शब्दमात्र को अन्तोदात्तस्वर हो । अब समास के स्वर का थोड़ा-सा विषय लिखा जाता है । समास के स्वर का सामान्यसूत्र यह है । और यह सब समास के स्वर का उत्सर्ग सूत्र है आगे सब प्रकरण इसका अपवाद है । राजपुरुषः । ब्राह्मणकम्बलः । नदीघोषः । पटहशब्दः । वीरपुरुषः । परमेश्वरः । इत्यादि ॥ ५२ ॥

५३—परिभा०—स्वरविधौ व्यंजनमविद्यमानवत् ॥

उदात्तादि स्वरों के विधान में व्यंजनवर्णों को अविद्यमानवत् समझना चाहिये । जैसे । राजदृषत् । ब्राह्मणसमित् । यहां समासान्त हल् वर्ण के होने से उस हल् को उदात्त प्राप्त है उस को अविद्यमानवत् मान के उस से पूर्ववर्ण को उदात्त होजाता है । इसी प्रकार और भी बहुत से प्रयोजन हैं । अब समास-स्वर का विशेष नियम कुछ लिखते हैं ॥ ५३ ॥

५४—बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १ ॥

जो बहुव्रीहि समास में पूर्वपद का स्वर हो वह प्रकृति करके अर्थात् अन्तोदात्त नहो ज्योंका त्यों बना रहे । जैसे । स्थूलपृषती । हिरण्यबाहुः । ब्रह्मचारिपरिस्कन्दः । स्नातकपुत्रः । पण्डितपुत्रः । अध्यापकपुत्रः । इत्यादि ॥५४॥

५५—तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्यय-द्वितीयाकृत्याः ॥ अ० ॥ ६ । २ । २ ॥

तत्पुरुष समास में जो तुल्यार्थ, तृतीयान्त, सप्तम्यन्त, उपमानवाची, अव्यय, द्वितीयान्त और कृत्यप्रत्ययान्त पूर्वपद हो तो उस में प्रकृतिस्वर हो । जैसे ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तुल्यार्थं–तुल्यश्वेतः । तुल्यलोहितः । तुल्यमहान् । सदृकश्वेतः । सदृग्लोहितः । यहां तुल्यार्थ शब्दों के साथ कर्मधारयतत्पुरुष समास हुआहै । तृतीयातत्पुरुष शङ्कुलया खण्डः, शङ्कुलाखण्डः । किरिकाणः । सप्तमीतत्पुरुष–अक्षशौण्डः । पानशौण्डः । उपमानवाची–घनश्यामः । तडिद्गौरी । शस्त्रीश्यामा । कुमुदश्येनी । इत्यादि । अव्ययपर—॥ ५५ ॥

५६–वा०–अव्यये नञ्कुनिपातानाम् ॥

अव्यय के कहने से सामान्य अव्यय का ग्रहण न हो इसलिये इस वार्त्तिक से परिगणन किया है कि अव्ययों में नञ्, कु और निपातों को हो पूर्वपद-प्रकृतिस्वर हो । जैसे । नञ्–अब्राह्मणः । अवृषलः । कु–कुब्राह्मणः । कुवृषलः । निपात–निष्कौशाम्बिः । निर्वाराणसिः ।, परिगणन इसलियेहै कि । स्नात्वाकालकः । पीत्वास्थिरकः । यहां पूर्वपदप्रकृतिस्वर न हो । द्वितीयान्त–मुहूर्त्तसुखम् । मुहूर्त्तरमणीयम् । सर्वरात्रकल्याणी । सर्वरात्रशोभना । यहां, अत्यन्तसंयोग में द्वितीया का समास है । कृत्यान्त–भोज्यञ्च तदुष्णंच भोज्योष्णम् । भोज्यलवणम् । पानीयशीतम् । हरणीयचूर्णम् । इत्यादि ॥ ५६ ॥

५७—गतिरनन्तरः ॥ अ० ॥ ६ । २ । ४९ ॥

जो कर्मवाची क्तान्त उत्तरपद परे और अनन्तर अर्थात् समीप गति हो तो ≐ प्रकृतिस्वर हो जैसे । प्रकृतः । प्रहृतः । इत्यादि । अनन्तरग्रहण इसलिये है कि । अभ्युद्धृतम् । उपसमाहृतम् । इत्यादि में पूर्वपदप्रकृतिस्वर न हो । कर्मवाचं का ग्रहण इसलिये है कि । प्रकृतः कटं देवदत्तः । यहां कर्त्तामें क्त प्रत्ययहै इस॰ लिये नहीं होता यह पूर्वपदप्रकृतिस्वर पूरा हुआ अब पूर्वपद आद्युदात्त आदि प्रकरण कुछ २ लिखेंगे ॥ ५७ ॥

५८—आदिरुदात्तः ॥ अ० ॥ ६ । २ । ६४ ॥

पूर्वपद आद्युदात्त होने के लिये यह अधिकार सूत्रहै ॥ ५८ ॥

५९—णिनि ॥ अ० ॥ ६ । २ । ७९ ॥

णिनि प्रत्ययान्त उत्तरपद परे होतो पूर्वपद आद्युदात्तहो जैसे । उष्णभोजी । शीतभोजी । स्थण्डिलशायी । पण्डितमानी । सोमयाजी । कुमारघाती । शीर्षघाती । फलहारी । पर्णहारी । इत्यादि ॥ ५९ ॥

६०—अन्तः ॥ अ० ॥ ६ । २ । ९२ ॥

पूर्वपद अन्तोदात्तप्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ॥ ६० ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

६१—सर्वं गुणकार्त्स्न्ये ॥ अ० ॥ ६ । २ । ९३ ॥

जो गुणों की संपूर्णता अर्थ में वर्त्तमान पूर्वपद सर्व शब्द हो तो वह अन्तोदात्त हो । जैसे । सर्वश्वेतः । सर्वकृष्णः । सर्वलोहितः । सर्वहरितः । सर्वश्यामः । सर्वसारङ्गः । सर्वकल्माषः । सर्वमहान् । इत्यादि ॥ ६१ ॥

६२—उत्तरपदादिः ॥ अ० ॥ ६ । २ । १११ ॥

उत्तरपदआद्युदात्तप्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ॥ ६२ ॥

६३—अकर्मधारये राज्यम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १३० ॥

कर्मधारय समास से भिन्न तत्पुरुष समास में जो राज्य उत्तरपद होतो वह आद्युदात्त हो जैसे । ब्राह्मणराज्यम् । क्षत्रियराज्यम् । यवनराज्यम् । कुरुराज्यम् । इत्यादि अब उत्तरपद तथा उभयपद प्रकृतिस्वर के विषय में कुछ लिखते हैं ॥ ६३ ॥

६४--गतिकारकोपपदात्कृत् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १३९ ॥

जो तत्पुरुषसमास में गति, कारक और उपपद से परे कृदन्त उत्तरपद हो तो वह प्रकृतिस्वर हो जैसे । गति—प्रकारकः । प्रहारकः । प्रकरणम् । प्रहरणम् । कारक—इध्मप्रव्रश्चनः । पलाशशातनः । श्मश्रुकल्पनः । उपपद—ईषत्करः । दुष्करः । सुकरः । गतिकारकोपपदग्रहण इसलिये है कि । देवदत्तस्य कारको देवदत्तकारकः । यहां न हो ॥ ६४ ॥

६५.—उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४० ॥

वनस्पति आदि समास किये हुये शब्दों में पूर्वपद उत्तरपद दोनों एककाल में प्रकृतिस्वर हों । वनस्पतिः । यहां वन और पति दोनों शब्द आद्युदात्त हैं । पति शब्दको समास में सुट् होजाता है । बृहस्पतिः । यहां भी सुट् हुआ है । शचीपतिः । तनूनपात् । नराशंसः । शुनःशेपः । शण्डामर्कौ । तृष्णावरूत्री । बम्बाविश्ववयसौ । मर्मृत्युः ॥ ६५ ॥

६६--देवताद्वन्द्वे च ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४१ ॥

देवतावाची शब्दों के द्वन्द्वसमास में एककाल में दोनों शब्द प्रकृतिस्वर हों । इन्द्रासोमौ । इन्द्रावरुणौ । इन्द्राबृहस्पती । द्यावापृथिव्यौ । सोमारुद्रौ । इन्द्रापूषणौ । शुक्रामन्थिनौ । इत्यादि ॥ ६६ ॥

६७--अन्तः ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४३ ॥

उत्तरपद अन्तोदात्त प्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ॥ ६७ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

६८--थाथघञ्क्ताजबित्रकाणाम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४४ ॥

गति, कारक और उपपद से परे जो थ, अथ, घञ्, क्त, अच्, अप्, इत्र और क इतने प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद उन को अन्तोदात्तस्वर हो । जैसे । थ-सुनीथः । प्रवभृथः । अथ-आवसथः । उपवसथः । घञ् । प्रभेदः । काष्ठभेदः । रज्जुच्छेदः । क्त—दूरादागतः । विशुष्कः । आतपशुष्कः । अच्-प्रचयः । विनयः । विजयः । आश्रयः । व्यत्ययः । अन्वयः । इत्यादि । अप्-प्रलवः । प्रसवः । इत्र-प्रलवित्रम् । प्रसवित्रम् । क-गोदः । कम्बलदः । ग्रंथः । गृहस्थः । वनस्थः । इत्यादि । अब इस के आगे अनुदात्त का प्रकरण संक्षेप से लिखते हैं ॥ ६८ ॥

६९--पदात् ॥ अ० ॥ ८ । १ । १७ ॥

यह अधिकार सूत्र है यहां से आगे पद से परे कार्य होगा ॥ ६८ ॥

७०--पदस्य ॥ अ० ॥ ८ । १ । १६ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है । यहांसे आगे जो कार्य कहेंगे वह पदके स्थानमें समझा जावेगा ॥ ७० ॥

७१-अनुदात्तं सर्वमपादादौ ॥ अ० ॥ ८ । १ । १८ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है । अपादादि अर्थात् जो पाद को आदि में न हो किन्तु मध्य वा अन्त में हो तो पद से परे सब पद अनुदात्त हो । यह अधिकार चलेगा ॥ ७१ ॥

७२- आमंत्रितस्य च ॥ अ० ॥ ८ । १ । १९ ॥

जो पद से परे अपादादि में वर्त्तमान आमंत्रित पद हो तो वह सब अनुदात्त होवे । जैसे—पठसि देवदत्त । पुष्णोसि देवदत्त । आमंत्रित पद को पूर्वोक्त (५०) सूत्र से आद्युदात्त प्राप्त था इसलिये यह विधान है ॥ ७२ ॥

७३-परिभाषा-आमंत्रितं पूर्वमविद्यमानवत्॥अ० ॥ ८ । १ ।७२॥

पद से परे जिस पद को अनुदात्त आदि विधान करते हैं उस से पूर्व जो आमंत्रित हो तो उस को अविद्यमानवत् समझना चाहिये । अर्थात् पूर्व कुछ नहीं है ऐसा माना जावे जैसे। देवदत्त यज्ञदत्त । यहां यज्ञदत्त शब्द को पद से परे निघात नहीं हुआ । तथा । देवदत्त पचसि । यहां अविद्यमानवत् होने से क्रिया को निघात नहीं होता । तथा । देवदत्तव ग्रामस्वम् । देवदत्त मम ग्रामस्वम् । यहां पद से परे ते, मे, आदेश नहीं होते । इत्यादि ॥ ७३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

७४--नामंत्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम् ॥ अ० ॥ ८ । १ । ७३ ॥

सामान्यवचन समानाधिकरण आमंत्रित पद परे होतो पूर्व जो आमन्त्रित॰ पद है वह अविद्यमानवत् न हो जैसे । अग्ने व्रतपते । अग्ने ऽदृष्टपते । पृथिवि देवयजनि । अर्थात् पद से परे निघात आदि कार्य हो जावें । समानाधिकरण ग्रहण इसलिये है कि पूर्व सूत्र के विषय में यह सूत्र न लगे । सामान्यवचनग्रहण का प्रयोजन यह है कि अघ्न्ये देवि सरस्वति इडे काव्ये विहव्ये । यहां पर्यायवाची शब्दों में न हो ॥ ७४ ॥

७५--विभाषितं विशेषवचने बहुवचनम् ॥ अ० ॥ ८ । १ । ७४ ॥

विशेषवचन सामानाधिकरण आमंत्रित पद परे हो तो पूर्व जो आमंत्रितपद है वह विकल्प करके अविद्यमानवत् हो । जैसे । देवा ब्रह्माणः । देवा ब्रह्माणः । ब्राह्मणा वैयाकरणाः । ब्राह्मणा वैयाकरणाः । यहां अविद्यमानवत् पक्ष में दोनों पद के स्वर और विद्यमानवत् पक्ष में उत्तरपद निघात हो जाता है । इत्यादि। विशेषवचनग्रहण इसलिये है कि । माणवक जटिलक । यहां विकल्प न हो॥७५॥

७६--युष्मदस्मदोःषष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ ॥ अ० ॥ ८ । १ । २० ॥

षष्ठी चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के सह वर्त्तमान अपादादि में पद से परे जो युष्मद् अस्मद् पद उन को क्रम से वाम् और नौ आदेश हों और वे सब अनु॰ दात्त हों । जैसे षष्ठीस्थ—ग्रामो वां स्वम् । जनपदो नौ स्वम् । चतुर्थीस्थ । ग्रामो वां दीयते । जनपदो नौ दीयते । द्वितीयास्थ-माणवको वां पश्यति । माणवको नौ पश्यति । इत्यादि । इस सूत्र में स्थग्रहण इसलिये है कि । दृष्टो मया युष्मत्पुत्रः । यहां षष्ठी का लुक् होजाने से आदेश और अनुदात्त नहीं होता ॥ ७६ ॥

७७—बहुवचनस्य वस्नसौ ॥ अ० ॥ ८ । १ । २१ ॥

षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के सह वर्त्तमान अपादादि में पद से परे बहुवचनान्त जो युष्मद् अस्मद् पद उन को क्रम से वस् और नस् आदेश हों तथा वेसब अनुदात्त हों। जैसे । नमो वः पितरः । नमो वो देवाः । मा नो॰ वधीः । मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । शश्वः इत्यादि ॥ ७७ ॥

७८--तेमयावेकवचनस्य ॥ अ० ॥ ८ । १ । २२ ॥

अपादादि में वर्त्तमान पद से परे जो एकवचनान्त युष्मद् अस्मद् पद उन को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ते, मे, आदेश हों और वे सब अनुदात्त हों जैसे। गुरुस्ते पण्डितः। गुरुर्मे पण्डितः। देहि मे ददामि ते। इत्यादि ॥ ७८ ॥

७९--त्वामौ द्वितीयायाः ॥ अ० ॥ ८ । १ । २३ ॥

पद से परे अपादादि में वर्त्तमान द्वितीयैकवचनान्त जो युष्मद् अस्मद् पद उन को त्वा, मा, आदेश हों और वे सब आद्युदात्त हों। जैसे। कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति। पुनन्तु मा। इत्यादि ॥ ७९ ॥

८०-तिङ्ङतिङः ॥ अ० ॥ ८ । १ । २८ ॥

जो अपादादि में अतिङन्त पद से परे तिङन्त पद होतो वह सब अनुदात्त हो जावे। जैसे। त्वं पचसि। अहं पठामि। स गच्छति। तौ गच्छतः। इत्यादि। यहां तिङ्ग्रहण इसलिये है कि। शुक्लं वस्त्रम्। यहां नहीं होता। अतिङ्ग्रहण इसलिये है कि। पठति। पचति। यहां न हो ॥ ८० ॥

८१-यावद्यथाभ्याम् ॥ अ० ॥ ८ । १ । ३६ ॥

जो यावत् और यथा से युक्त तिङन्त पद हो तो वह अनुदात्त न हो। यावद् भुङ्क्ते। यथा भुङ्क्ते। यावदधीते। यथाऽधीते। देवदत्तः पचति यावत्। देवदत्तः पचति यथा। इत्यादि ॥ ८१ ॥

८२-यद्वृत्तान्नित्यम् ॥ अ० ॥ ८ । १ । ६६ ॥

जो यत् शब्द के प्रयोग से युक्त तिङन्त पद होतो वह अनुदात्त न हो। जैसे यो भुङ्क्ते। यं भोजयति। येन भुङ्क्ते। इत्यादि ॥ ८२ ॥

८३-गतिर्गतौ ॥ अ० ॥ ८ । १ । ७० ॥

जो गति से परे पूर्व गति हो तो वह निघात हो जाती है जैसे। अभ्युद्धरति। समुदानयति। उपसंव्यानयति। उपसंहरति। अभ्यवहरति। इत्यादि ॥ ८३ ॥

८४-उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोनुदात्तस्य ॥ अ० ॥ ८।२।४ ॥

जो उदात्त और स्वरित के स्थान में यण् उस से परे अनुदात्त हो तो उस को स्वरित हो जावे जैसे। सुप्वा। यहां सुपू शब्द अन्तोदात्त और विभक्ति अनुदात्त है उस को स्वरित हो जाता है। नीचे जो ‿ यह वक्र चिन्ह होता है वह भी स्वरित ही का चिन्ह है। इसी प्रकार। पृथिव्यसि। यहां पृथिवी शब्द अन्तोदात्त है। उस सेपरे अकार अनुदात्त को स्वरित हो जाता है। स्वरित यण्-सक्लवि-

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आशा । खलप्वि-आशा । यहां सकलृवि खलप्वि समम्यन्त स्वरितान्त शब्द हैं उन के यण् से परे आकार अनुदात्त को स्वरित हो जाता है जैसे । सकल्व्याशा । खलप्व्याशा । इत्यादि ॥ ८४ ॥

८५—एकादेश उदात्तेनोदात्तः ॥ अ०॥ ८ । २ । ५ ॥

उदात्त के साथ जो अनुदात्त का एकादेश है वह भी उदात्त हो हो जाता है । जैसे । अग्नी । वायू । यहां अग्नि वायु शब्द अन्तोदात्त हैं । उन का अनुदात्त विभक्ति के साथ एकादेश हुआ है । इसी प्रकार । वृक्षैः । प्लक्षैः। इत्यादि॥८५॥

८६—स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६ ॥

जो उदात्त के साथ एकादेश है वह पदादि अनुदात्त के परे विकल्प करके स्वरित हो पक्ष में उदात्त हो । सु-उत्थितः । सूत्थितः । सूत्थितः । वि-ईक्षते- वीक्षते । वीक्षते । इत्यादि ॥८६ ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीनिर्मितः सौवरो ग्रन्थः समाप्तः ॥

संवत् १९३९ भाद्रशुक्ल १३ चन्द्रवार ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

Copy right Registered under Sections 18 and 19 Act XXV of 1867.

अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

दशमो भागः ।

पारिभाषिकः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां नवमो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां द्वादशं पुस्तकम् ।

यज्ञदत्तशर्मा शास्त्री के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय
अजमेर में मुद्रित हुआ ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इस की रजिस्टरी कराई गई है ॥

संवत् १९४८ पौष शुक्ला १०
द्वितीयबार २००० पुस्तक छपे
मूल्य ≡)॥

For Private And Personal Use Only

॥ भूमिका ॥

संज्ञापरिभाषाविधिनिषेधनियमातिदेशाधिकाराख्यानि सप्तविधानि सूत्राणि भवन्ति । सम्यग् जानीयुर्यया सा संज्ञा; यथा (वृद्धिरादैच्) इत्यादि । परितः सर्वतो भाष्यन्ते नियमा याभिस्ताः परिभाषाः; यथा (इको गुणवृद्धी) इत्यादि । यो विधीयते स विधिर्विधानं वा; यथा (सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु) इत्यादि। निषिध्यन्ते निवार्यन्ते कार्याणि यैस्ते निषेधाः; यथा (न धातुलोप आर्द्धधातुके)इत्यादि । नियम्यन्ते निश्चीयन्ते प्रयोगा यैस्ते नियमाः; यथा (अनुदात्तङित आत्मनेपदम्) इत्यादि । अतिदिश्यन्ते तुल्यतया विधीयन्ते कार्याणि यैस्तेऽतिदेशाः; यथा (आद्यन्तवदेकस्मिन्) इत्यादि । अधिक्रियन्ते पदार्था यैस्तेऽधिकाराः; यथा (कारके) इत्यादि । एषां सप्तविधानां सूत्राणां मध्याद्यतोऽयं परिभाषाणां व्याख्यानो ग्रन्थोऽस्ति तस्मात्पारिभाषिको वेदितव्यः ॥

सूत्र सात प्रकार के होते हैं (संज्ञा, परिभाषा, विधि, निषेध, अतिदेश, अधिकार) अच्छे प्रकार जिस से जानें वह संज्ञा कहाती है जैसे (वृद्धिरादैच्) इत्यादि । जिन से सब प्रकार नियमों की स्थिरता की जाय वे परिभाषा सूत्र कहाते हैं जैसे (इको गुणवृद्धी) इत्यादि। जो विधान किया जाय वा जो विधान है वह विधि कहाता है जैसे (सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु) इत्यादि । निषेध उस को कहते हैं कि जिस से कार्यों का निवारण किया जाय जैसे (न धातुलोप आर्द्धधातुके) इत्यादि । नियम उनको कहते हैं कि जिन से प्रयोगों का निश्चय किया जाय जैसे (अनुदात्तङित आत्मनेपदम्) इत्यादि । जिस से किसी की तुल्यता लेकर कार्य करें वह अतिदेश कहाता है जैसे (आद्यन्तवदेकस्मिन्) इत्यादि । और जिन से पदार्थों की विशेष अनुवृत्ति हो उन को अधिकार कहते हैं जैसे (कारके) इत्यादि । इन सात प्रकार के सूत्रों में से जिसलिये यह परिभाषाओं का व्याख्यानरूप ग्रन्थ है इसलिये इस का नाम पारिभाषिक रक्खा है

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

॥ भूमिका ॥

इन परिभाषाओं में से जो अष्टाऽध्यायीस्थ परिभाषासूत्र हैं वे संधिविषय में व्याख्यापूर्वक लिख दिये हैं यहां केवल महाभाष्यस्थ परिभाषासूत्रों का व्याख्यान है। परिभाषाओं का मुख्य तात्पर्य यही है कि दोषों का निवारण करके व्यवस्था कर देना। इसीलिये इस ग्रन्थ को बनाया है कि व्याकरण के सन्धि आदि प्रकरणों में जो २ संदेह पड़ते हैं वे इन परिभाषाओं के पठन पाठन से अवश्य निवृत्त हुआ करेंगे। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं। और इस में मूल परिभाषा के आगे जो संख्या पड़ी है वह अष्टाऽध्यायी के सूत्र की है उस सूत्र की व्याख्या में महाभाष्य में वह परिभाषा लिखी है। और परिभाषा के पहिले जो संख्या है वह इस ग्रन्थ की है॥

इति भूमिका

स्थान महाराणा जी का उदयपुर
आश्विन शुक्ल संवत् १९३९ } दयानन्द सरस्वती

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ओ३म्

अथ पारिभाषिकः॥

परितो व्यापृतां भाषां पारिभाषां प्रचक्षते ।

सब ओर से वैदिक लौकिक और शास्त्रीय व्यवहार के साथ जिस का सम्बन्ध रहे अर्थात् उक्त तीनों प्रकार का व्यवहार जिस से सिद्ध हो उस को परिभाषा कहते हैं। इस पारिभाषिक ग्रन्थ में प्रथम परिभाषा की भूमिका लिख कर आगे लक्ष्य अर्थात् उदाहरण लिख के पुनः मूल परिभाषा लिखेंगे। और उस के आगे उस का स्पष्ट व्याख्यान करेंगे। अब प्रथम पाणिनीय व्याकरण अष्टाऽध्यायी के प्रत्याहारसूत्रों में (अइउण्, लण्) इन दो सूत्रों में लोप होने वाला हल् णकार पढ़ा है इस णकार से (अण्) और (इण्) दो प्रत्याहार बनते हैं। सो जिन सूत्रों में अण् इण् प्रत्याहारों से काम लिया जाता है वहां सन्देह पड़ता है कि किन २ सूत्रों में पूर्व और किन २ में पर णकार से (अण्) तथा (इण्) प्रत्याहार जानें इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है॥

१—व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम् ॥

लण् सूत्र पर॥

जिस सूत्र वा वार्त्तिक आदि में सन्देह हो वहां व्याख्यान से विशेष बात का निश्चय कर लेना चाहिये किन्तु सन्देहमात्र के होने से सूत्र आदि ही को अन्यथा न जान लेवें। जहां पृथक् २ देखे हुए दो पदार्थों के समान अनेक विरुद्ध धर्म एक में दीख पड़ें और उपलब्धि अनुपलब्धि की अव्यवस्था हो अर्थात् जो पदार्थ है और जो नहीं है दोनों की उपलब्धि और दोनों की अनुपलब्धि होती है क्योंकि पदार्थों के साधारण धर्म को लेकर सन्देह होता है उन में से जब विशेष अर्थात् किसी एक का निश्चय हो जाता है तब सन्देह नहीं रहता जिन सूत्र आदि में सन्देह पड़ता है वहां उन में छः प्रकार का व्याख्यान करना चाहिये पदच्छेद, पदार्थ, अन्वय, भावार्थ, पूर्वपक्ष-शङ्का, उत्तरपक्ष-समाधान इन छः प्रकार के व्याख्यानों से संदेहों की निवृत्ति कर लेनी चाहिये (प्रश्न) जैसे प्रथम (ढ्लोपे-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूर्वस्य दीर्घोऽणः) इस सूत्र में (अण्) प्रत्याहार पूर्व णकार से लेना वा पर से यह संदेह है (उत्तर) इस में निस्संदेह पूर्व णकार से लेना चाहिये क्योंकि जो पर णकार से लिया जावे तो इस सूत्र में (अण्) का ग्रहण करना व्यर्थ है क्योंकि (अचश्च) इस सूत्र से ह्रस्व दीर्घ प्लुत अच् ही के स्थान में होते हैं इस से (अच्)की उपस्थिति होही जाती फिर (अण्) ग्रहण का यही प्रयोजन है कि इत्यादि सूत्रोंमें पूर्व णकार ही से लिया जावे (प्रश्न) और (अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः)इस सूत्र में (अण्) प्रत्याहार पूर्व णकार से वा पर णकार से लेना चाहिये (उ०)निस्संदेह परणकार से (अण्)प्रत्याहार का ग्रहण है क्योंकि (उरृत्)इससूत्रमें ऋकार तपर इसीलिये पढ़ा है कि (अचीकृतत्) इत्यादि प्रयोगों में ऋकार को ह्रस्व ऋकार ही आदेश हो अर्थात् सवर्णग्रहण (अणुदित्०) परिभाषा सूत्र से ह्रस्व का सब वर्णों दीर्घन हो जावे। जो पूर्व णकार से अण् ग्रहण होता तो पूर्व अण् में ऋकार के होने से ऋकार को सवर्ण ग्रहण प्राप्त ही नहीं फिर तपर क्यों पढ़ते। इस से स्पष्ट हुआ कि (अणुदित्०) इस सूत्र में पर णकार से और इसी एक सूत्र को छोड़ के अन्यत्र सब सूत्रों में पूर्व णकार से अण् ग्रहण है (प्र०) और (इण्कोः) इत्यादि जिन२सूत्रों में इण् प्रत्याहार पढ़ा है,वहां२ पूर्व वा पर णकार से ग्रहण करना चाहिये (उ०) यहां सर्वत्र निस्सन्देह पर णकार से इण् समझना चाहिये क्योंकि पूर्वसे इण् प्रत्याहार में(इ, उ) दो ही वर्ण आते हैं सो जहां इन दो वर्णों से कार्य लिया है वहां(य्वोः) ऐसा इ उ को विभक्ति के साथ सन्धि करके पढ़ा है यहां इण् पढ़ते तो कुछ गौरव नहीं था किन्तु आधी मात्रा का लाघव ही था फिर इण् प्रत्याहार के न पढ़ने से निश्चय हुआ कि सर्वत्र पर णकार से इण् प्रत्याहार लिया जाता है। अन्यत्र भी जहां कहीं शिष्ट वचन में सन्देह पड़े वहां व्याख्यान से विशेष करके सत्य विषय का निश्चय कर लेना चाहिये किन्तु उस वचन को व्यर्थ जान के नहीं छोड़ देना चाहिये और सन्दिग्ध लौकिक व्यवहारों का भी विशेष व्याख्यान से निर्णय किया जाता है ॥ १ ॥

(सार्वधातुकार्धधातुकयोः) यह गुणकार्य होने का काल है यहां(अलोऽन्त्यस्य, इको गुणवृद्धी) इन दो परिभाषाओं को विधिसूत्र के साथ परिभाषाबुद्धि से एकवाक्यता हो इस लिये कार्य्यकाल परिभाषापक्ष, और जब (हयवरट्,हल्) यहां दो हकारों का उपदेश इत्यादि विषयों में सन्देह पड़े तब उस विषय के साथ सामान्य विषयकबुद्धि से परिभाषारूप व्याख्या की एकवाक्यता होवे। इसलिये यथोद्देश पक्ष है। इस से ये दोनों परिभाषा की गई हैं ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२–कार्यकालं संज्ञापरिभाषम् ॥

३–यथोद्देशं संज्ञापरिभाषम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ११ ॥

(कार्यस्य कालः कार्यकालः कार्यकालः कालोऽस्यतत् कार्यकालम्, संज्ञा च परिभाषा च तत्संज्ञापरिभाषम्, उद्देशमनतिक्रम्य यथोद्देशम्) संज्ञा और परिभाषा का समय वही है जो कार्य करने का काल होता है उसी समय उन की उपस्थिति होती है। जैसे दीपक एक स्थान पर रक्खा हुआ सब घर को प्रकाशित करता है वैसे परिभाषा भी एकदेश में स्थित हो कर सब शास्त्र के विषयों को प्रकाशित करती है इस में प्रमाण (परिभाषा पुनरेकदेशस्था सती कृत्स्नं शास्त्रमभिज्वलयति प्रदीपवत्, यथा प्रदीपः सुप्रज्वलितः सर्वं वेश्माभिज्वलयति) महाभाष्य० २ । १ । १ ॥ और यथोद्देशपक्ष से प्रयोजन यह है कि जिस विषय पर जिस परिभाषा का उच्चारण किया हो वह उस का उल्लंघन न करे अर्थात् उस विषय के अनुकूल उस की प्रवृत्ति होवे। इन दोनों पक्षों में भेद यह है कि कालपक्ष की परिभाषा किसी की दृष्टि में असिद्ध नहीं मानी जाती। और यथोद्देशपक्ष की परिभाषा असिद्ध प्रकरण में नहीं लगती ॥ २ । ३ ॥

(दाधाघ्वदाप्) इस सूत्र में अदाप् कहने से दाप् लवने धातु का निषेध हो सकता है फिर दैप् शोधने धातु की घुसंज्ञा हो जावे तो (अवदातं मुखम्) यहां अनिष्ट दत् आदेश प्राप्त है इसीलिये दैप् धातु की घुसंज्ञा इष्ट नहीं है इत्यादि प्रयोजनों के लिये यह परिभाषा की गई है ॥

४–अनेकान्ता अनुबन्धाः ॥ अ० ॥ १ । १ । २० ॥

प्, ञ्, ङ्, क् इत्यादि अनुबन्ध जिन धातु आदि के साथ युक्त होते हैं उन के एकान्त अर्थात् अवयव नहीं किन्तु वे अनुबन्ध उन धातु आदि से पृथक् हैं। इस से यह सिद्ध हुआ कि "दैप्" धातु को एजन्त मान कर आकारादेश किये पीछे दाप् मानकर इसी घुसंज्ञा का निषेध होता है इसी से (अवदातं मुखम्) यहां दोष नहीं आता ॥ ४ ॥

अब (अनेकाल् शित्सर्वस्य) इस सूत्र से (अनेकाल्) और (शित्) आदेश संपूर्ण के स्थान में होते हैं (इदम इश्, अष्टाभ्य औश्) यहां (इश्) और औश् भी शकार के सहित अनेकाल हैं फिर अनुबन्धों * के एकान्तपक्ष में शित् ग्रहण ज्ञापक है इस से यह परिभाषा निकली ॥

* अनुबन्धों में एकान्त और अनेकान्त दोनों पक्ष माने जाते हैं सो अनेकान्तपक्ष में परिभाषा का प्रयोजन दिखा दिया और एकान्तपक्ष इसलिये मानते हैं कि अनेकान्तपक्ष में क् जिस का इत् गया हो वह कित् नहीं हो सकता क्योंकि कित् शब्द में बहुव्रीहि समास से अन्य पदार्थ प्रत्यय के साथ ककार अनुबन्ध का मुख्य सम्बन्ध नहीं घटता और एकान्तपक्ष में घट जाता है और अनेकान्तपक्ष में शकार अनुबन्ध से शित् अनेकाल् नहीं हो सकता फिर एकान्तपक्ष के लिये ही अगली ५ । ६ । ७ तीनों परिभाषा हैं ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५—नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ५५ ॥

अनुबन्ध के सहित जो अनेकाल् हो उसको अनेकाल् नहीं मानना किन्तु जो अनुबन्धरहित अनेकाल् हो वही अनेकाल् कहाता है इस से यह आया कि (इश्) आदि आदेश शित् होने से अनेकाल नहीं होते तो (शित्) आदेश सार्थक होकर स्वार्थ में इस परिभाषा का चरितार्थ होगया और अन्यत्र फल यह है कि जो अर्वन् शब्द को (अर्वणस्त्रसावनञः) इस सूत्र से (तृ) आदेश कहा है उस को ऋकार अनुबन्ध के सहित अनेकाल् मान लें तो सर्वादेश अनिष्ट प्राप्त हो अन्त्य को इष्ट है अनुबन्धकृत अनेकाल् न होने से सर्वादेश नहीं होता इत्यादि अनेकप्रयोजन हैं ॥ ५ ॥

अब इस पांचवीं परिभाषा के एकान्तपक्ष में होने से दैप् धातु के पकार का लोप प्रथम होगया क्योंकि लोपविधि सब से बलवान् है । लोप किये पीछे आकारादेश करने से (अदाप्) इस से घुसंज्ञा का निषेध नहीं हो सकता । और किसी प्रकार पकार का लोप प्रथम न करें तो अनुबन्धों के एकान्तपक्ष में दैप् धातु एजन्त नहीं पुनः आकारादेश नहीं प्राप्त है तो (अवदातं मुखम्) यहां घुसंज्ञा होनी चाहिये इसलिये ज्ञापकसिद्ध यह परिभाषा है ॥

६—नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १९ ॥

अनुबंध के होने से एजन्तपन की हानि नहीं होती (उदीचां माङो०) इस सूत्र में (मेङ्) धातु का माङ्निर्देश नहीं करते तो व्यतिहारग्रहण भी नहीं करने पड़ता क्योंकि मेङ्धातु का व्यतिहार अर्थ ही है फिर (उदीचां मेङः) इतने छोटे सूत्र से सब काम निकल जाता तो बड़ा सूत्र करने से यह आया कि अनुबन्ध के बने रहते ही आकारादेश हो जाता है कि जैसे मेङ् का माङ् बन गया अर्थात् अनुबन्ध के होने से भी एजन्तत्व की हानि नहीं होती। जैसे कि मेङ् में (ङ्) अनुबन्ध के बने रहते ही एच् निमित्त आकारादेश होगया इससे यह परिभाषा स्वार्थ में चरितार्थ हुई और अन्यत्र फल यह है कि दैप् धातु को भी अनुबन्ध के वर्त्तमान समय ही में एजन्त मानकर आकारादेश हो जाता है फिर अदाप् निषेध के प्रवृत्त होने से घुसंज्ञा का प्रतिषेध होकर (अवदातं मुखम्) प्रयोगसिद्ध होता है ॥ ६ ॥

अब अनुबन्धों के एकान्तपक्ष में यह भी दोष आता है कि (अण्) और (क) प्रत्यय में (ण्,क्) अनुबन्धों के लगे होने से भिन्नरूप वाले समझे जावें फिर सरूप प्रत्यय नित्य बाधक होते हैं अर्थात् अपवाद विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती यह बात नहीं बनेगी इस से (गोदः, कम्बलदः) यहां

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(अण्) का अपवाद (क) प्रत्यय हो जाता है इस अपवाद के विषय में उत्सर्ग अण् भी होना चाहिये इसलिये ज्ञापकसिद्ध यह परिभाषा है ॥

७—नानुबन्धकृतमसारूप्यम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३९ ॥

जिन में अनुबन्धमात्र का भेद हो, वे भिन्नरूपवाले असरूप नहीं कहाते । (ददातिदधात्योर्विभाषा) इस सूत्र में विभाषा ग्रहण इसलिये है कि (श) प्रत्यय के पक्ष में आकारान्त से विहित उत्सर्ग रूप (ण) प्रत्यय भी होजावे और (अण्, क) प्रत्यय के समान (ण, श, प्रत्यय भी अनुबन्ध से असरूप और अनुबन्ध रहित सरूप ही हैं फिर असरूप प्रत्ययों में तो (वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्) इस परिभाषा सूत्र से उत्सर्गापवाद विकल्प होही जाता फिर विभाषाग्रहण व्यर्थ होकर यह जनाता है अनुबन्धमात्रभेद के होने से असारूप्य नहीं होता अर्थात् (ण, श) प्रत्यय असरूप नहीं हैं कि जो (वाऽसरूप०) परिभाषा से विभाषा होजावे इस से विभाषा ग्रहण स्वार्थ में चरितार्थ और अन्यत्र फल यह है कि इसी से (गोदः, कम्बलदः) यहां (क) अपवाद के विषय में (अण्) उत्सर्ग भी नहीं होता ॥ ७ ॥

अब संज्ञा दो प्रकार की होती है एक तो जो वाच्यवाचक संकेत से किन्हीं विशेष प्रयोजनों के लिये किसी का कुछ नाम रख लेना उस को कृत्रिमसंज्ञा कहते हैं और जो प्रकृति प्रत्यय के योग से यौगिक अर्थ होता है उस को अकृत्रिम संज्ञा कहते हैं । सो लौकिक व्यवहारों में तो यही रीति है कि जहां कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों संज्ञाओं का सम्भव हो वहां कृत्रिम संज्ञा ली जावे अकृत्रिम नहीं। यथा (केनचिदुक्तं गोपालकमानयेति) जैसे किसी ने कहा कि गोपालक को लेआ एक तो यहां गोपालक किसी निज मनुष्य का नाम है । और दूसरा जो कोई गौओं का पालन करे उसको गोपाल कहते हैं तो यह अर्थ किसी निज के साथ नहीं है । फिर इस कृत्रिमसंज्ञा वाले निज गोपालक का ही ग्रहण होता है ऐसे अब व्याकरण में जहां कृत्रिम अकृत्रिम दोनों संज्ञाओं का सम्भव है जैसे धातु, प्रातिपदिक, बहुव्रीहि, तत्पुरुष, वृद्धि, गुण, सवर्ण, सम्प्रसारण, नदी इत्यादि शब्दों में कृत्रिम संज्ञा का ग्रहण हो वा अकृत्रिम का इसलिये यह परिभाषा है ॥

८–कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्ययः॥ अ० ॥ १ । १ । २३ ॥

जहां कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों संज्ञाओंमें कार्य होना सम्भव हो वहां कृत्रिम संज्ञा में कार्य होना निश्चित रहे अकृत्रिममें नहीं इस से व्याकरणमें भी धातु आदि कृत्रिम संज्ञाओं से कार्य लेने चाहिये सुवर्ण आदि धातु संज्ञक से नहीं॥८॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अब इस कृत्रिम परिभाषा के होने से दोष आते हैं कि जहां कृत्रिमसंज्ञा के लेने से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता जैसे (कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे) इस सूत्र में जो कृत्रिम कर्मसंज्ञा का ग्रहण होवे तो (देवदत्तस्य धान्यं व्यतिलुनन्ति) यहां कर्त्ता को ईप्सिततम धान्य कर्म के होने से आत्मनेपद होना चाहिये वह यहां इष्ट नहीं है इसलिये यह परिभाषा है ॥

९—उभयगतिरिह भवति ॥ अ० ॥ १ । १।२३ ॥

इस व्याकरण शास्त्र में दोनों प्रकार का बोध होता है अर्थात् कहीं कृत्रिम और कहीं अकृत्रिम का भी ग्रहण होता है जैसे (कर्मणि द्वितीया) यहां कृत्रिम कर्मसंज्ञा और(कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे)क्षणीवला व्यतिलुनते। यहां अकृत्रिम क्रिया-रूप कर्म का ग्रहण है इसलिये (देवदत्तस्य धान्यं व्यतिलुनन्ति) यहां अकृत्रिम कर्म के होने से (आत्मनेपद) नहीं होता तथा (कर्त्तृकरणयोस्तृतीया)देवदत्तेन ग्रामो गम्यते, रथेन गच्छति। यहां कृत्रिम करणसंज्ञा और (शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे)शब्दं करोति शब्दायते।यहां अकृत्रिम करणसंज्ञा लीजाती है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ९ ॥

(अध्येता, शयिता)इत्यादि प्रयोगों में इङ् और शीङ् धातु को गुणनिषेध होना चाहिये क्योंकि अनुबन्धोंके एकान्तपक्षमें दोनों धातु ङित् हैं और अनेकान्तपक्ष में अनुबन्ध पृथक् भी हैं इस में गुणनिषेध कार्य और इगन्त कार्यी है ॥

१०—कार्यमनुभवन् हि कार्यी निमित्तत्वेननाश्रीयते ॥

कार्य करते हुए कार्यी का निमित्तपन से आश्रय नहीं किया जाता है अर्थात् जिसके आश्रय से कार्य होता हो वही उसका निमित्त कार्यी नहीं होताहै जैसे गुणनिषेध का निमित्त ङित् इगन्त नहीं कि जो वह ङित् इगन्त गुणनिषेध का निमित्त इगन्तकार्यी होता तो अवश्य गुण का निषेध हो जाता (क्ङिति च यिति च०)इससूत्रमें(शीङ्)धातुको गुणपठनज्ञापक सेयह परिभाषा निकली है। तथा सन्नन्त यङन्त को कहा द्वित्व ऊर्णु धातु के नुभाग कोहोजाताहै क्योंकिसन का निमित्त ऊर्णु धातु है (ऊर्णुनविषति' ऊर्णुनुविषति) इत्यादि ॥ १० ॥

(प्रणिदापयति,प्रणिधापयति)इत्यादिप्रयोगों में (दा,धा) रूप को कही हुई घुसंज्ञा पुगन्त(दाप्,धाप्,) को न प्राप्त होने से घुसंज्ञक धातुओं के परे(प्र)उपसर्गसे उत्तर नि के नकार कोणत्व नहोना चाहिये इसलिये यह परिभाषा कीगई है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

११–अर्थवत आगमस्तद्गुणीभूतोऽर्थवद्ग्रहणेन गृह्यते* ॥ अ० १ । १ । २० ॥

जो अर्थवान् प्रकृति आदि को टित् कित् और मित् आगम होते हैं वे उन्हीं प्रकृति आदि के स्वरूपभूत होने से उन्हीं के ग्रहण से ग्रहण किये जाते हैं अर्थात् वे पुक् आदि आगम प्रकृति आदि से पृथक् स्वतन्त्र नहीं समझे जाते इस से (प्रणिदापयति) आदि में पुगन्त की भी घुसंज्ञा के होजाने से णत्व आदि कार्य होजाते हैं तथा (सर्वेषाम्) इत्यादि प्रयोगों में भी सुडादि आगमों के तद्गुणीभूत होने से (साम्) को झलादि सुप मानकर एकारादेश होजाता है इसी प्रकार लोक में भी किसी प्राणी का कोई अङ्ग अधिक होजावे तो वह उसी के ग्रहण से ग्रहण किया जाता है ॥ ११ ॥

अब (पादः पत्) इस सूत्र से जो पाद शब्द को (पत्) आदेश कहा है यहां तदन्तविधि परिभाषा के आश्रय से द्विपात्, त्रिपात्) शब्दों को भी भसंज्ञा में (पत्) आदेश होता है उस पत् आदेश के अनेकाल् होने से द्विपात् त्रिपात् संपूर्ण के स्थान में प्राप्त है सो जो संपूर्ण के स्थान में होवे तो (द्विपदः पश्य, त्रिपदः पश्य) इत्यादि प्रयोग न बन सकें इसलिये यह परिभाषा कही है ॥

१२–निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति ॥ अ० ६ । ४ । १३० ॥

षष्ठी विभक्ति से दिखाये हुए स्थानी के स्थान में प्राप्त जो प्रथमानिर्दिष्ट आदेश वह निर्दिश्यमान अर्थात् सूत्रकार वा वार्त्तिककार ने जितने स्थानी का निर्देश किया हो उसी के स्थान में हो अर्थात् तदन्तविधि से जो पूर्वपद वा अन्य उसके सदृश कोई आजावे तो उस सब के स्थान में न हो । इस से द्विपात् शब्द में पादमात्र को पत् आदेश हो जाता है (द्वि,त्रि) आदि बच जाते हैं इसी से(द्विपदः पश्य)इत्यादि प्रयोग बन जाते हैं ॥ १२ ॥

अब (चेता, स्तोता)इन प्रयोगों में (स्थानेऽन्तरतमः)इस सूत्र से प्रमाणकृत आन्तर्य मानें तो ह्रस्व इकार उकार के स्थान में अकार गुण प्राप्त है इससे अभीष्ट प्रयोगों की सिद्धि नहीं होती इसलिये यह परिभाषा की है ॥

* जो नागेश और भट्टोजिदीक्षित आदि नवीन लोग इस परिभाषा को (यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते) इस प्रकार की लिखते मानते और व्याख्यान भी करते हैं सो यह पा० महाभाष्य से विरुद्ध है, महाभाष्य में यह परिभाषा ऐसी कहीं नहीं लिखी इसलिये इन लोगों का प्रमाद है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१३–यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत एवान्तर्यं बलीयः ॥ अ० १ । १ । ५० ॥

जहां अनेक प्रकार का अर्थात् स्थानकृत, अर्थकृत, गुणकृत और प्रमाणकृत यह चार प्रकार का आन्तर्य प्राप्त हो वहां जो स्थान से आन्तर्य है वही बलवान् होता है इस से प्रमाणकृत आन्तर्य्य के हट जाने से स्थानकृत आन्तर्य्य के आश्रय से एकार ओकार गुण होकर (चेता, स्तोता) प्रयोग बन जाते हैं स्थानकृत आदि के विशेष उदाहरण सन्धिविषय में लिख चुके हैं ॥ १३ ॥

(संख्याया अतिशदन्तायाः कन्) यहां ति और शत् जिस के अन्त में हो उस से कन् प्रत्यय का निषेध किया है । सो (कतिभिः क्रीतम्, कतिकम्) यहां भी त्यन्त से निषेध होना चाहिये और कन् प्रत्यय तो इष्ट ही है इसलिये यह परिभाषा है ॥

१४–अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ॥ अ० ५ । १ । २२ ॥

अर्थवान् के ग्रहण होने में अनर्थक शब्दों का ग्रहण नहीं होता इससे अर्थवान् (ति) शब्द के ग्रहण में निरर्थक डतिप्रत्ययान्त के ति का ग्रहण नहीं होता इस से (कतिकम्) यहां कन् का निषेध नहीं हुआ । इसी प्रकार प्रशब्द से ऊढ के परे वृद्धि कही है सो (प्र×ऊढवान्=प्रोढवान्) यहां ऊढ शब्द निरर्थक है इसलिये वृद्धि नहीं होती इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ४ ॥

अब अर्थवद्ग्रहणपरिभाषा के होने से भी (अमहान् महान् संपन्नो महद्भूतश्चन्द्रमाः) इस प्रयोग में महत् शब्द को आकारादेश होना चाहिये और आत्व के होने से अनिष्टसिद्धि प्राप्त है इसलिये यह परिभाषा है ॥

१५–गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः ॥ अ० ६ । ३ । ४६ ॥

जो गुणों से प्राप्त होवे वह (गौण) और जो गुणी से प्राप्त होवे वह (मुख्य) कहाता है उस गौण से प्राप्त और मुख्य दोनों में एककाल में एककार्य प्राप्त हो तो मुख्य में कार्य होवे और गौण में नहीं इससे (महद्भूतश्चन्द्रमाः) यहां आकारादेश नहीं होता क्योंकि यहां महत् शब्द अभूततद्भाव अर्थ में मुख्य और चन्द्रमा के साथ समानाधिकरण में गौण विशेषण है इसी प्रकार (अगौः, गौःसंपद्यत, गोभवत्) यहां च्विप्रत्ययान्त गो शब्द निपातसंज्ञक है परन्तु मुख्य ओकारान्त निपात नहीं इसलिये (ओत्) सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञा नहीं होती इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ १५ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थवान् के ग्रहण में अनर्थक का ग्रहण नहीं होता यह कह चुके हैं सो (राज्ञा) राजन् शब्द में कनिन् प्रत्यय का अन् अर्थवान् है इसलिये अन्नन्त के अकार का लोपहोना ठीक है और (साम्ना) यहां सामन् शब्द में मनिन् प्रत्यय का मन् अर्थवान् और अन् अनर्थक है इस समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

१६-अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति ॥ अ०१ । १ । ७२ ॥

अन्, इन्, अस्, मन् ये जिन सूत्रोंमें ग्रहणहैं वहां अर्थवान् और अनर्थकदोनों से तदन्तविधि होता है । अन् में तो अर्थवान् और अनर्थक दोनों के उदाहरण दे दिये । इन् (दण्डी) यहां इनि प्रत्यय के अर्थवान् इनन्त को दीर्घ और (वाग्मी) यहां अर्थवान् (असुन्) प्रत्यय के अस् को दीर्घ और (पीतवाः) यहां पीत पूर्वक (वस्) धातु से क्विप् हुआ है सो वस् में अनर्थक अस् को दीर्घ होता है । मन् (सुष्ठुशर्म्म यस्याः सा सुशर्म्मा) यहां तो अर्थवान् मन्नन्त से ङीप् का निषेध है और(सुप्रथिमा) यहां इमनिच् प्रत्यय का इमन् अर्थवान् और मन् भाग निरर्थक को भी ङीप् का निषेध होता ही है ॥ १६ ॥

औरआगेएकपरिभाषालिखेंगे कि समीपस्थ का विधान वा निषेध होताहै इस में यह दोष आता है कि जैसे (लिङ्सिचावात्मनेपदेषु) इस सूत्र की अनुवृत्ति (उश्च) इस में आती है । सो जो समीपस्थ के विधि निषेध का नियम है तो आत्मनेपद की अनुवृत्तिआनी चाहिये क्योंकि आत्मनेपद की अपेक्षा में (लिङ्, सिच्)दूर हैं और (लिङ्,सिच्) की अनुवृत्ति के विना कार्यसिद्धि नहीं हो सकती इसलिये यह वक्ष्यमाण परिभाषा है ॥

१७-एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः ॥

जो एक सूत्र में निर्देश किये पद हैं उन को अन्य सूत्रों में एकसाथ प्रवृत्ति और एकसाथ निवृत्ति हो जाती है इस से (उश्च)सूत्र में लिङ् सिच् की भी अनुवृत्ति आ जाती है । इसी प्रकार अन्यत्र बहुत स्थलों के सूत्र वार्त्तिकों में यह रीति दीखपड़ती है कि जैसे कहीं दो पदों की अनुवृत्ति आती है उन में से जब एक को छोड़ना होता है तब द्वितीय पद को फिर के पढ़ते हैं तो यही प्रयोजन है कि उन दोनों पदों की अनुवृत्ति एक साथ ही चलती है उस में से एक को छोड़ के दूसरे पद की अनुवृत्ति नहीं आ सकती ॥ १७ ॥

For Private And Personal Use Only

अब इस पूर्व परिभाषाके होने में यह दोष है कि (अलुगुत्तरपदे) इस सब सूत्र का अधिकार चलता है उस में अलुक् अधिकार तो आनङ् विधान से पूर्व २ ही रहता है फिर उत्तरपदाधिकार पादपर्य्यन्त क्यों जावे इसलिये यह परिभाषा है ॥

१८–एकयोगनिर्दिष्टानामप्येकदेशानुवृत्तिर्भवति ॥ अ० ४ । १ । २७ ॥

एक सूत्र में पृथक् पठित पदों में से भी कहीं एकदेश की अनुवृत्ति होती है इससे उत्तरपदाधिकार का पादपर्यन्त जाना सिद्ध हो गया । तथा (दामहाय-नान्ताच)यहां पूर्वसूत्र से संख्या की अनुवृत्ति आती है और अव्यय की नहीं और (पचादिः) इस सूत्र में पूर्व सूत्र से मूलशब्द की अनुवृत्ति आ जाती है पाक की नहीं आती इत्यादि ॥ १८ ॥

(अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः) यहां प्रत्ययग्रहण से सवर्ण का निषेध किया है इस का यही प्रयोजन है कि (सनाशंसभिक्ष उः) इत्यादि में उ आदिप्रत्यय अपने सवर्णोदीर्घ आदि के ग्राहक न होंसो जब स्त्री प्रत्यय को छोड़ के अन्यदीर्घ प्रत्यय से किसी अर्थ की प्रतीति ही नहीं होती तो दीर्घप्रत्यय नहीं होसकता इसलिये प्रत्ययग्रहण के व्यर्थ होने से यह ज्ञापक होता है कि इस सूत्र में यौगिक प्रत्यय का निषेध है (प्रतीयते विधीयते भाव्यतेऽनेनाऽसौ प्रत्ययः, न प्रत्ययोऽप्रत्ययः) इसी व्याख्यान से यह परिभाषा निकली है ॥

१९–भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणन्न ॥ अ० १ । १ । ६९ ॥

जो विधान किया जाता है उससे सवर्णों का ग्रहण नहीं होता जैसे (त्यदा-दीनामः) यहां अकार का विधान किया है उस से दीर्घ सवर्णों का ग्रहण नहीं होता और(ज्यादादीयसः)यहां ईयसुन् प्रत्यय के ईकार को आकारादेश न कहते किन्तु अकार कहते तो सवर्णग्रहण से दीर्घ हो ही जाता फिर निश्चित हुआ कि यहां भी पूर्ववत् भाव्यमान अकार सवर्णग्राही नहीं हो सकता इसलिये दीर्घ कहा इत्यादि ॥ ८ ॥

यदि भाव्यमान से सवर्णों का ग्रहण नहीं होता तो (दिव उत्, ऋत उत्)इन सूत्रों में भाव्यमान उकार को तपर करना व्यर्थ है । क्योंकि तपर करने का यही प्रयोजन है कि उकार तत्काल का ग्राहक हो अपने सवर्णों का ग्रहण न करे फिर (अणुदित्०) परिभाषा से सवर्णग्रहण तो प्राप्त ही नहीं उकार तपर क्यों पढ़ा इस-लिये यह परिभाषा है ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२०–भवत्युकारेण भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणम्॥ अ० ६ । १ । १८५ ॥

भाव्यमान उकार से सवर्णों का ग्रहण होता है इस से पूर्वोक्त उकार में तपर सार्थक हुआ और अन्यत्र फल यह है कि (अदसोऽसेर्दादुदोमः) यहां भाव्यमान ह्रस्व उकार सवर्णों का ग्राही होता है तभी (अमूभ्याम्) आदि में दीर्घ ऊकारादेश हुआ ॥२०॥

(गवेहितं, गोहितम्) यहां समास में चतुर्थ्येकवचन प्रत्यय का लुक् किये पीछे (प्रत्ययलोपे०) सूत्र से प्रत्ययलक्षण कार्य मानें तो (गो) शब्द के ओकार को अवादेश प्राप्त है इसलिये यह परिभाषा है ॥

२१––वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम् ॥

वर्ण के आश्रय से जो कार्य कर्त्तव्य हो तो प्रत्ययलक्षण न हो अर्थात् उस प्रत्यय को मान के वह कार्य न होवे इसलिये अच् को मान के अवादेश नहीं होता इत्यादि ॥ २१ ॥

(अतःकृकमिकंस०) इस सूत्र में कंस शब्द का पाठ व्यर्थ है क्योंकि उणादि में (कमेः सः) इस सूत्र से कम् धातु का कंस शब्द बना है कम् धातु के सामान्य प्रयोगों के ग्रहण में कंस शब्द का भी ग्रहण होजाता फिर कंस शब्द क्यों पढ़ा इसलिये यह परिभाषा है ॥

२२–उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि ॥अ० १।१।६१॥

उणादि प्रातिपदिक अव्युत्पन्न अर्थात् उन का सर्वत्र प्रकृति, प्रत्यय, कारक आदि से यौगिक यथार्थ अर्थ नहीं लगता अर्थात् उणादि शब्द बहुधा रूढ़ि होते हैं इसलिये (अतः कृकमिकंस०) सूत्र में कंस ग्रहण सार्थक है । इसी प्रकार (प्रत्ययस्य लुक्०) इस सूत्र से (परशव्य) शब्द का लुक् कहा हुआ उकार प्रत्यय होने से भी अव्युत्पन्नपक्ष मान के परशु शब्द के उकार का लुक् नहीं होता। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ २२ ॥

(देवदत्तश्चिकीर्षति) इत्यादि प्रयोगों में देवदत्त आदि शब्दों को सन्नन्त के धातुसंज्ञा आदि कार्य्य प्राप्त हैं सो क्यों नहीं होते। जो देवदत्त के सहित सब वाक्य की धातुसंज्ञा होजावे तो (सुपो धातु०) इस सूत्र से जो देवदत्त के आगे विभक्ति है उस का लुक् प्राप्त होवे इसलिये यह परिभाषा है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२३–प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स प्रत्ययो विहितस्तदादेस्तदन्तस्य च ग्रहणं भवति ॥अ० १। ४ । १३ ॥

जिस से जो प्रत्यय विधान किया हो वह जिस के आदि वा अन्त में हो उसी का ग्रहण हो और जो उस वाक्य में प्रत्ययविधि से पद पृथक् हो उस का सामान्य कार्यों में ग्रहण न हो। इस से सन्नन्तको धातुसंज्ञा में देवदत्त का ग्रहण न हुआ तो विभक्ति का लुक् भी बचगया इसी प्रकार(देवदत्तो गार्ग्यः)यहां समुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा हो तो मध्य विभक्तिका लुक् हो जावे तथा (ऋद्धस्य राज्ञः पुरुषः) इस समुदाय की समाससंज्ञा हो तो मध्य विभक्तियों का लुक् प्राप्त होवे इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं॥ २३॥

(येन विधिस्तदन्तस्य) इस परिभाषा सूत्र से (दृषत्तीर्णा, परिषत्तीर्णा)इत्यादि प्रयोगों में (रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः)इस सूत्रसे दृषद् परिषद् दकारान्त शब्दों से परे धातु के तकारको अनिष्ट नकारादेश प्राप्त है इसलिये यह परिभाषाहै ॥

२४–प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्याः ॥ अ० १ । १ । ७२ ॥

जिन सूत्रों में प्रत्ययग्रहण से कार्य होते हैं वहां पञ्चम्यन्त से परे वह कार्य न हो अर्थात् पंचम्यन्तसे परे प्रत्ययग्रहण में तदन्तविधि न होवे इस से (परिषत्तीर्णा) आदि में धातु के तकार को नकार आदेश नहीं होता इत्यादि॥ २४॥ कुमारीगौरितरा। इत्यादि प्रयोगों में तदन्तविधि मानें तो कुमारी शब्द को भी ह्रस्व प्राप्त है इसलिये यह परिभाषा है॥

२५–उत्तरपदाधिकारे प्रत्ययग्रहणे रूपग्रहणं द्रष्टव्यम् ॥अ० ६ । ३ । ५० ॥

(अलुगुत्तरपदे)जो षष्ठाऽध्याय के तृतीय पाद में प्रत्ययनिमित्त कार्य है वहां स्वरूप का ग्रहण होना चाहिये अर्थात् तदन्तविधि न हो इस से (कुमारीगौरितरा)यहां कुमारी शब्द को ह्रस्व नहीं होता और रूपग्रहण से यह भी प्रयोजन है कि(हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु) जो इस सूत्र में (२३)वीं परिभाषा के अनुकूल (यत्) और (अण्) प्रत्यय जिस से विहित हों उस उत्तरपद के परे पूर्व को कार्य होजावे सो इष्ट नहीं है। क्योंकि जो तदन्तविधि होतो केवल हृदय शब्द से (हृद्यम्,हार्दम्) प्रयोग नहीं बनें इस में लेखग्रहण ज्ञापक है कि अणन्तउत्तरपद का ग्रहण होतो लेख शब्द (अण्)प्रत्ययान्त पृथग् ग्रहण व्यर्थ है। इस से यह निश्चित हुआ कि इस उत्तरपदाधिकार के प्रत्ययाश्रितकार्यविधायक सूत्रों में तदन्तविधि नहीं होती॥ २५॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(प्रत्ययग्रहणे०) इस २३ वीं परिभाषासे (ष्यङः संप्रसारणं पुत्रपत्योस्तत्पुरुषे) यहां तत्पुरुष में (पुत्र) और (पति) उत्तरपदों के परे (ष्यङ्)को संप्रसारण कहा है तो (ष्यङ्)का जो आदि वा ष्यङन्त को कार्य होगा। इस से(कारीषगन्ध्यायाः पुत्रः कारीषगन्धीपुत्रः, कारीषगन्धीपतिः, वाराहीपुत्रः, वाराहीपतिः) इत्यादि प्रयोग तो सिद्ध हो जावेंगे परन्तु(परमकारीषगन्धीपुत्रः, परमकारीषगन्धीपतिः) इत्यादि प्रयोग नहीं सिद्ध होंगे क्योंकि जिस (कारीषगन्धि) शब्द से (ष्यङ्) प्रत्यय विहित है तो वही जिस के आदि में हो ऐसे (ष्यङ्) का ग्रहण हो सकता है और परम के सहित ग्रहण नहीं हो सकता इसलिये यह परिभाषा है ॥

२६—अस्त्रीप्रत्ययेनानुपसर्जनेन ॥ अ० ६ । १ । १३ ॥

(तदादिग्रहणपरिभाषा) स्त्रीप्रत्यय और उपसर्जन को छोड़ के प्रवृत्त होवे इस से सामान्य स्त्रीप्रत्यय (परमकारीषगन्धीपुत्रः) इत्यादि में तदादि ग्रहण के दोष से संप्रसारण का निषेध नहीं होता और(कारीषगन्ध्यमतिक्रान्तोऽतिकारीषगन्ध्यः,अतिकारीषगन्ध्यस्य पुत्रः अतिकारीषगन्ध्यपुत्रः)यहां ष्यङन्त स्त्रीप्रत्यय उपसर्जन अर्थात् स्वार्थ में अप्रधान है इसलिये संप्रसारण नहीं होता इत्यादि॥२६॥ (सुप्तिङन्तं पदम्)इस सूत्र में अन्तग्रहण व्यर्थ है क्योंकि जो (सुप्तिङ्‌तंपदम्) ऐसा सूत्र करते तो तदन्तविधिपरिभाषा से अन्त की उपलब्धि से(सुबन्त,तिङन्त) की पदसंज्ञा हो ही जाती फिर अन्तग्रहण व्यर्थ हो कर इस परिभाषा का ज्ञापक है ॥

२७—संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तविधिर्न भवति ॥ अ० १। ४ । १४ ॥

प्रत्ययों की संज्ञा करने में तदन्तविधि नहीं होती। इस से अन्तग्रहण सार्थक होना तो स्वार्थ में चरितार्थ है और अन्यत्र फल यह है कि (तरप्तमपौ घः) यहां (तरप् तमप्) प्रत्ययान्त की (घ) संज्ञा नहीं होती जो तरप् प्रत्ययान्तकी (घ) संज्ञा होजावे तो (कुमारीगौरितरा) यहां घसंज्ञक के परे कुमारी शब्द को ह्रस्व हो जावे सो इस परिभाषा से नहीं होता। और (कृत्तद्धितसमासाश्च) यहां कृत्तद्धित प्रत्ययों में अन्तग्रहण नहीं किया और प्रातिपदिकसंज्ञा के होने से तदन्तविधि भी नहीं हो सकती इसलिये कृत्तद्धित में अर्थवान् की अनुवृत्ति करने से कृदन्त और तद्धितान्त ही अर्थवान् होते हैं केवल (कृत्, तद्धित) नहीं क्योंकि (न केवला प्रकृतिःप्रयोक्तव्या न च केवलप्रत्ययः) इस महाभाष्य के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रमाण से प्रत्ययान्त ही अर्थवान् होता है। और (बहुच्) प्रत्यय प्रातिपदिक से नहीं होता किन्तु सुबन्त से पूर्व बहुच् कहा है बहुच् प्रत्यय के सहित जो समुदाय है वहां प्रातिपदिकसंज्ञा होने की कुछ आवश्यकता नहीं है जैसे (बहुपटवः)यहां बहुच् के होने से पहिले ही अथवा पटु शब्द की प्रातिपदिक-संज्ञा तो सिद्ध ही है। फिर बहुच् प्रत्यय की विवक्षा में जिस विभक्ति और वचन का प्रयोग करना हो उस को रख के बहुच् प्रत्यय लाना चाहिये जैसे (पटु, जस्) इस सुबन्त के पूर्व बहुच् आकर (बहुपटवः) प्रयोग सिद्ध हो गया। इसी प्रकार अन्य प्रयोगों में जान लेना चाहिये और(सर्वकः)(विश्वकः) इत्यादि में जो अकच् प्रत्यय मध्य में होता है उस के आगे परिभाषा लिखी है कि(तदेकदेशभूतस्तद्ग्रहणेन गृह्यते) (सर्व)प्रातिपदिक के एक देश के मध्य में आया अकच् उसी प्रातिपदिक के ग्रहण से ग्रहण किया जाता है ॥ २७ ॥

(२३)वी परिभाषा के होने में ये भी दोष हैं कि(अवतप्ते नकुलस्थितं त एतत्) यहां क्त प्रत्ययान्तस्थित शब्दके साथ सप्तम्यन्त का समास कहा है सो गतिसंज्ञक अव शब्द के सहित सप्तम्यन्त और कर्त्तृकारकवाची नकुल शब्द के सहित क्तान्त कृदन्त स्थित शब्दहै इस कारण समास नहीं प्राप्तहै इसलिये यह परिभाषा है।

२८-कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणं भवति ॥ अ० १।४।१३ ॥

जहां कृत्प्रत्यय के ग्रहण से कार्य हो वहां उस कृदन्त के पूर्व गतिसंज्ञक और कारक हो तो भी वह कार्य हो जावे। इस से गतिसंज्ञक अव और कारक नकुल के होने से भी समास हो जाता है, तथा सांकूटिनम् यहां (इनुण्) कृत्प्रत्ययान्त से (अण्) तद्धित होता है सो जो (कूटिन्)शब्द से करें तो उसी के आदि को वृद्धि होवे इस परिभाषा से गतिसंज्ञक (सम्) के सहितके (अण्)के होने से (सम्) के सकार को वृद्धि होती है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं (गतिरनन्तरः) इस सूत्र में (अनन्तर) ग्रहण इस परिभाषा के होने में ज्ञापक है ॥

(येन विधिस्तदन्तस्य) इस परिभाषासूत्र में सामान्य करके तदन्तविधिकही है विशेषविषय में उस का अपवादरूप वक्ष्यमाण परिभाषा है ॥

२९--पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य च ॥अ० १।१।७२ ॥

उत्तरपदाधिकारअर्थात्षष्ठाध्यायके तृतीयपादमें और अङ्गाधिकार में जिस को कार्य्यविधान हो वा जिस के आश्रय हो उस का और वह जिस के अन्त में

For Private And Personal Use Only

हो उन दोनों का ग्रहण होता है जैसे (इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु) इस सूत्रमें (इष्टकचितं चिन्वीत) यहां उसी इष्टका शब्द को ह्रस्व और (पक्वेष्टकचितं चिन्वीत) यहां तदन्त को भी ह्रस्व होता है (इषीकतूलेन, मुञ्जेषीकतूलेन, मालभारिणी कन्या, उत्पलमालभारिणीकन्या) यहां भी इषीका और माला शब्द को दोनों प्रकार ह्रस्व हुआ है । अङ्गाधिकारमें (सान्तमहतः संयोगस्य) महान् यहां उसी महत् शब्द की उपधा को दीर्घ और (परममहान्) यहां तदन्त को भी होता है इत्यादि अनेक उदाहरण महाभाष्य में लिखे हैं ॥ २८ ॥

(एकाचो द्वे प्रथमस्य) यहां अनेकाच् धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व होता है जैसे (जजागार) यहां जा भाग को द्वित्व हुआ है । जो केवल एकाच् धातु है उसमें प्रथम एकाच् अवयव कहां है जिस को द्वित्व हो जैसे (पपाच, इयाज) इत्यादि । तथा (एकाच्) शब्द में भी बहुव्रीहि समास है कि एक अच् जिस में हो अर्थात् अन्य एक वा अधिक हल् हों वह (एकाच्) अवयव कहाता है। सो जहां केवल एकही अच् धातु है जैसे (इयाय, आर) यहां (इ, ऋ) धातुओं को द्वित्व कैसे हो सके इसलिये यह परिभाषा है ॥

३०—व्यपदेशिवदेकस्मिन् ॥ अ० १ । १ । २१ ॥

सत् निमित्त के होने से मुख्य जिस का व्यपदेश (व्यवहार) हो वह व्यपदेशी कहाता है और एक वह है जिसके व्यवहार का कोई सहायी कारण न हो उस एक में व्यपदेशी के तुल्य कार्य होता है इस से (एकाच्) धातु (पपाच)आदि में द्वित्व और केवल एक ही अच्धातु (इयाय, आर) आदि में भी द्विर्वचन हो जाता है । क्योंकि एकाच् और एकही अच्धातु की अपेक्षा में अनेकाच् व्यपदेशी है तद्वत्कार्य मानने से सर्वत्र द्वित्व हो जाता है (आदेश प्रत्यययोः) इस सूत्र में प्रत्यय के अवयव सकार को मूर्द्धन्य कहा है सो (करिष्यति) आदि में तो होही जाता है। और (स देवान् यक्षत्) यहां यक्षत् क्रिया में केवल सिप् विवरण का सकारमात्र प्रत्यय है उसको (व्यपदेशिवद्भाव)मानके मूर्द्धन्य होता है ।इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं । लोक में भी यह व्यवहार होता है कि किसी के बहुत पुत्र हैं वहां तो ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ का व्यवहार बनता है और जिस का एकही पुत्र है तो वहां उसी में ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ व्यवहार होता हैं ॥ ३० ॥

तद्धित में जैसे नड़ादि, गर्गादि और शिवादि इत्यादि प्रातिपदिकों से अपत्य आदि अर्थों में अण् आदि प्रत्यय कहे हैं सो उत्तमनड़ परमगर्ग और महाशिव आदिप्रातिपदिकों से तदन्तविधि में क्यों नहीं होते इसलिये यह परिभाषा है ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३१–ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिः प्रतिषिध्यते ॥ अ० ५ । २ । ८७ ॥

प्रत्यय का ग्रहण करने वाले प्रातिपदिक से तदन्तविधि नहीं होता इसलिये (उत्तमनड) और (परमगर्ग) आदि प्रातिपदिकों से (फक्) और (यञ्) आदि प्रत्यय नहीं होते और इस परिभाषा के निकलने का ज्ञापक (पूर्वादिनिः, सपूर्वाच्च) ये दोनों सूत्र हैं क्योंकि जो पूर्व शब्द से विधान किया इनि प्रत्यय तदन्त से भी हो जाता तो द्वितीय सूत्र व्यर्थ हो जाता फिर व्यर्थ होकर यह ज्ञापक होता है कि यहां तदन्तविधि नहीं होता ॥ ३१ ॥

सूत्रान्त प्रातिपादिकों से (ठक्) और दशान्त आदि प्रातिपदिकोंसे(ड)आदि प्रत्यय कहे हैं सो (३०) वीं परिभाषा से (व्यपदेशिवद्भाव) मान कर केवल सूत्र और दश आदि से (ठक्) तथा (ड) आदि प्रत्यय क्यों नहीं हो जाते इसलिये यह परिभाषा है ॥

३२–व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेन ॥ अ० १ । १ । ७२॥

व्यपदेशिवद्भाव की प्रवृत्ति प्रातिपदिकाधिकार को छोड़ के होती है । इसलिये केवल सूत्रआदि शब्दोंसे ठक् आदि प्रत्यय नहीं होते और इस परिभाषा का ज्ञापक भी (पूर्वादिनिः,सपूर्वाच्च) ये दोनों सूत्र हैं क्योंकि जो यहां व्यपदेशिवद्भाव होताती (पूर्वान्तादिनिः)ऐसा एक सूत्र कर देते तो सब काम सिद्ध हो जाता फिर पृथक्२ दो सूत्र करनेसे ज्ञात हुआ कि यहां व्यपदेशिवद्भाव नहीं होता ॥ ३२ ॥

(अचि श्नुधातु॰) यहां (श्रियौ, भुवौ) उदाहरणों में तो केवल (अच्) के परे (इयङ्, उवङ्) होजाते हैं और (श्रियः,भुवः) यहां (इयङ्, उवङ्) न होने चाहियें क्योंकि यहां केवल (अच्) परे नहीं है इसलिये यह परिभाषा है ॥

३३–यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे ॥ अ०१ । १ । ७० ॥

जिस प्रत्याहाररूप पर विशेषण के आश्रय से विधि हो वह जिस के आदि में हो उस के परे वह कार्य होना चाहिये इस से अजादि प्रत्यय के परे (इयङ् उवङ्) होते हैं तो (श्रियः, भ्रुवः) यहां अजादि [जस्] में भी दोष नहीं आता । तथा [अवश्यलाव्यम्, अवश्यपाव्यम्] इत्या॰ में वान्तो यि प्रत्यये] सूत्र से यकारादि प्रत्यय के परे वान्तादेश हो जाता है(इको झल्) यहां झलादिसन् लिया जाता है । इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ॥३३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(तिष्यपुनर्वस्वोर्नक्षत्रद्वन्द्वे बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम्) इस सूत्र में बहुवचनग्रहण न करते तो भी प्रयोजन सिद्ध हो जाता। क्योंकि एक (तिष्य) और दो (पुनर्वसु) इन तीन के होने से बहुवचन तो प्राप्त ही था फिर द्विवचन के कहने से उसी बहुवचन की प्राप्ति में द्विवचन हो जाता इस प्रकार बहुवचनग्रहण व्यर्थ हो कर ज्ञापक है कि (तिष्य,पुनर्वसु) में कहीं एकवचन भी होता है वहां एकवचन को द्विवचन न हो इसलिये यह परिभाषा है॥

३४—सर्वो द्वन्द्वो विभाषैकवद्भवति ॥ अ० १। २। ६३॥

दो वा अधिक किन्हीं शब्दों का द्वन्द्वसमास हो वह सब विकल्प करके एकवचन होता है। इस से तिष्य पुनर्वसु के एकवचनपक्ष में द्विवचन हो इसलिये बहुवचनस्थानी का ग्रहण है। तथा इसी परिभाषा से (घटपटम्, घटपटौ, ईपलोमकूलम्, माषोत्तरपदव्यनुपदम्) इत्यादि में भी एकवचन सिद्ध हो जाता है। समाहार द्वन्द्व सर्वत्र एक ही वचन होता है। और यह परिभाषा इतरेतरद्वन्द्वसमासमें लगती है इसीसे इसके उदाहरण भी सब इतरेतरद्वन्द्व के दिये हैं॥३४॥

(व्यत्ययो बहुलम्) इस से स्य आदि विकरणों का व्यत्यय होना सूत्रार्थ है। तथा (षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा) इस सूत्र से भी षष्ठीयुक्त पति शब्द की घिसंज्ञा का वेद में विकल्प है इन दोनों में भाष्यकारने विभाग करके यह परिभाषा सिद्ध की है॥

३५—वाच्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति ॥ अ० १। ४। ९॥

वेद में सब कार्य विकल्प करके होते हैं जैसे (दक्षिणायाम्) इस सप्तम्यन्त की प्राप्ति में (दक्षिणायाः) ऐसा प्रयोग होता है। इत्यादि अनेकप्रयोजन हैं॥३५॥

किसी विद्यार्थी ने (अग्नी) ऐसा द्विवचनान्त शब्द उच्चारण किया जो उसका कोई अनुकरण करे कि (अग्नी इत्याह) तो यहां अनुकरण में साक्षात् द्विवचन के न होने से जो प्रगृह्यसंज्ञा न होवे तो इकार के साथ संधि होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है॥

३६—प्रकृतिवदनुकरणं भवति ॥ अ० ८। २। ४६॥

जो अनुकरण किया जाता है वह प्रकृति के तुल्य होता है इस से (अग्नी) द्विवचनप्रकृति के तुल्य अनुकरणको मानके प्रगृह्यसंज्ञा होनेसे संधि नहीं होती। और एकवचन बहुवचन में तो संधि होता है(कुमार्य्लृतक इत्याह)यहां (ऋतक) शब्द के अनुकरण (लृतक) के परे भी यणादेश होता है (द्विः पचन्त्वित्याह) यहां

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(ह्नि: पचन्तु) शब्द के अनुकरण मेंभी अतिङ्से परे तिङ् पद निघात होजाताहै। (अर्थवदधातुरप्रत्यय:०) इस सूत्र में धातु का पर्युदास प्रतिषेध मानें कि धातुसे अन्य अर्थवान् को प्रातिपदिकसंज्ञा हो इस से ह्नि आदि धातुओं के अनुकरण को प्रकृतिवत् होने से स्वाश्रय कार्य मान कर प्रातिपदिकसंज्ञा होजातीहै फिर पंचमी विभक्ति के एकवचन में ह्निधातु को (इयङ्)आदेश नहीं प्राप्त है इसलिये धातु के अनुकरण को प्रकृतिवत् मान के (इयङ्) आदेश भी होजाता है इस से (ह्नियो दीर्घात्,परीभुवोऽवज्ञाने,नेर्विश:)इत्यादि सब निर्देश ठीक बनजातेहैं॥३६॥

(भवतु, पचतु) इत्यादि की पदसंज्ञा न होनी चाहिये क्योंकि तिङन्त की पदसंज्ञा कही है यहां तो तिप् के इकार को उकार हो जाने से तिङ् नहीं रहा इसलिये यह परिभाषा है ॥

३७-एकदेशविकृतमनन्यवद्भवति ॥ अ० ४ । १ । ८३ ॥

जिस किसी का एक अवयव विपरीत हो जावे तो वह अन्य नहीं हो जाता किन्तु वही बना रहता है । इससे इकार के स्थान में उकार हो जानेसे भी पद-संज्ञा हो जाती है (प्राग्दीव्यतोऽण्) इस सूत्र से (दीव्यत्) शब्दपर्यन्त (अण्) प्रत्यय का अधिकार करते हैं और दीव्यत्शब्द कहीं नहीं है किन्तु(दीव्यति)शब्द है इस का एकदेश इकार के जाने से(दीव्यत्) रह जाता है इसी ज्ञापकसे यह परिभाषा निकली है । लोक में भी किसी कुत्ते का कान वा पूंछ काट लिया जावे तो उस को घोड़ा वा गधा नहीं कहते किन्तु कुत्ता ही कहते हैं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ३७ ॥

(स्योन:) यहां (सिवु) धातु से उणादि (न) प्रत्यय के परे वकार को (ऊठ्) होकर वकार को स्थानिवत् मानने से धातु के इकार को (लघूपधगुण) और उसी इकार को (यणादेश) दोनों प्राप्त हैं । इस में गुण पर और यणादेश (अन्तरङ्ग)है अब दोनों मेंसे कौनसा कार्य होना चाहिये इसलिये यहपरिभाषाहै॥

३८-पूर्वपरनित्यान्तरङ्गाऽपवादानामुत्तरोत्तरं बलीय: ॥

पूर्व से पर, पर से नित्य, नित्यसे अन्तरङ्ग और अन्तरङ्ग से अपवाद ये सब पूर्व २ से उत्तर २ बलवान् होते हैं । यह परिभाषा महाभाष्य के अभिप्रायानुकूल है अर्थात् इसी प्रकार की कहीं नहीं लिखी । पूर्व से पर बलवान् होना यह विषय (विप्रतिषेधे परं कार्यम्) इसी सूत्र का है जैसे (अग्नि) इस शब्द से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपत्याधिकार में ऋषिवाची होने से (अण्) प्राप्त और "इकारान्तऽद्व्यच्" होने से ढक् प्राप्त है सो पूर्व (अण्) को बाध के परविहित (ढक्) होता है जैसे (अत्रेरपत्यम्, आत्रेयः) इत्यादि। भू धातु से लिट् लकार के णल् प्रत्ययके परे (भू×अ) इस अवस्था में द्वित्व, यणादेश, उवङ्, गुण, वृद्धि और वुक् आगम ये सब प्राप्त हैं (द्विर्वचन) नित्य होने से पर यणादेश का बाधक है (उवङ्) अन्तरङ्ग होने से नित्य द्वित्व का भी बाधक है और (उवङ्) का अपवाद (गुण) गुण का अपवाद (वृद्धि) और इन दोनों का अपवाद निरवकाश होने से (वुक्) हो जाता है। इसी प्रकार अन्य भी बहुत प्रयोगों में यह परिभाषा लगतीहै (दुद्यूषति) यहां सन् प्रत्यय के परे (दिव्) धातु के वकार को ऊठ् किये पीछे द्विर्वचन और यणादेश दोनों प्राप्त हैं नित्य होने से द्विर्वचन होना चाहिये फिर नित्य द्विर्वचन से भी अन्तरङ्ग होने से यणादेश प्रथम हो जाता है। इत्यादि ॥ ३८ ॥

(इजतुः) यहां यज् धातु से (अतुस्) प्रत्यय के परे द्वित्व को बाध के परत्व से (संप्रसारण) होता है फिर द्वित्व होना चाहिये वा नहीं इसलिये यह परिभाषा है॥

३९–पुनः प्रसङ्गविज्ञानात् सिद्धम् ॥ अ० १ । ४ । २ ॥

परत्व से वा अन्य किसी प्रकार से प्रथम बाधक कार्य हो जावे। फिर जो उत्सर्ग कार्यकी प्राप्तिहो तो उत्सर्ग भी हो जावे। इस से (यज्) धातु को संप्रसारण किये पीछे भी द्वित्व होजाता है। इसीप्रकार परत्वसे (हि) के स्थान में तातङ् आदेश होने से फिर हि को धि न होना चाहिये सो भी (तातङ्) के निषेधपक्ष में (हि) को (धि) होकर (भिन्धि) आदि प्रयोग बन जाते हैं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ३९ ॥

लोक में यह रीति है कि तुल्य अधिकारी दो स्वामियों का एक भृत्य होता के तो वह आगे पीछे दोनों के कार्य किया करता है परन्तु जो उस भृत्य को दोनों स्वामी अनेक दिशाओं में एक काल में कार्य करने के लिये आज्ञा दें तो उस समय जो वह किसी का विरोधी न हुआ चाहे तो दोनों के कार्य न करे क्योंकि एक को एककाल में दोदिशाओं में जाके दो कार्य करना असम्भव है फिर जिस का पीछे करेगा वही अप्रसन्न होगा, इसी प्रकार सूत्रों में भी दोमें जो बलवान् होगा वह प्रथम हो जावे गा और जो दोनों तुल्यबल वाले हो'गे तो एक दूसरे को हटाने से लोक के तुल्यएक भी कार्य न होगा। जैसे स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान (त्रि, चतुर) शब्द को सामान्य विभक्तियों में (तिसृ, चतसृ) आदेश कहे हैं और (त्रि) शब्द को (आम्) विभक्ति के परे (त्रय) आदेश भी कहा है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

फिर (विप्रतिषेधे परं कार्यम्) इस सूत्र से पर विप्रतिषेध मान के प्रथम (तिस्र) आदेश हो गया। फिर उस को स्थानिवत् मान के (त्रय) आदेश भी होना चाहिये तो लोकवत् अनिष्टप्रसङ्ग आजावे इसलिये यह परिभाषा है ॥

४०—सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद् बाधितं तद् बाधितमेव ॥ अ० १।४।२॥

एककाल में जब दो कार्यों की प्राप्ति होती है तब विप्रतिषेध में पर का कार्य होकर फिर दूसरे पूर्व सूत्र का कार्य प्रवृत्त नहीं हो सकता क्योंकि जो बाधक हुआ सो हुआ इस से फिर स्थानिवत् मान के(त्रय) आदेश नहीं होता इस कारण[तिसृणाम्] इत्यादि प्रयोग शुद्ध ठीक बन जाते हैं। और जो दूसरा कार्य्य भी पश्चात् प्राप्त हो और प्रथम हुआ कार्य्य कुछ न बिगड़े तो[३८] वीं परिभाषा के अनुकूल वह भी कार्य्य हो जावे गा ॥ ४० ॥

अब यह विचार भी कर्त्तव्य है कि धातुओं से परे जो लकारों के स्थान में तिप् आदि परस्मैपद और आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं वे पहिले हों किंवा विकरण हों आत्मनेपदादि के करनेसे प्रथम और पीछे भी विकरणों की प्राप्ति है इस से वे नित्य हैं। और आत्मनेपद परस्मैपद विधायक प्रकरण से परे भी विकरण ही हैं और विकरण किये पीछे आत्मनेपद नियम की प्राप्ति नहीं क्योंकि (अनुदात्तङित०) यह पञ्चमीनिर्दिष्ट कार्य व्यवधानरहित उत्तर को होना चाहिये विकरणों के व्यवधान से फिर आत्मनेपद नहीं पाता और जो आत्मनेपद नियम को अनवकाश माने सो भी नहीं क्योंकि अदादि और जुहोत्यादिगण में जहां विकरण विद्यमान नहीं रहते वहां और (लिङ्, लिट्) लकारों में (आत्मनेपद, परस्मैपद) को अवकाश ही है फिर (एधते,स्पर्द्धते) आदि में आत्मनेपद नहीं हो सकता इसलिये यह परिभाषा है ॥

४१—विकरणेभ्यो नियमो बलीयान् ॥ अ० १।४।१२॥

विकरण विधि से आत्मनेपद परस्मै पद नियमविधान बलवान्है क्योंकि जो आत्मनेपद आदि के होने से पहिले विकरण ही होते होंतो (आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्, पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु) इन विकरणविधायकसूत्रों में आत्मनेपद के आश्रय से विकरणविधान क्यों किया इससे यह ज्ञापक है कि विकरणविधि से पहिले ही आत्मनेपद परस्मैपद नियम कार्य होते हैं। इस से (एधते,स्पर्द्धते) आदि में आत्मनेपद सिद्ध हो गया इत्यादि प्रयोजन इस के हैं॥४१॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(न्यविशत, व्यक्रीणीत) यहां (नि, वि) उपसर्गों से परे (विश) और (क्री) धातु से आत्मनेपद होता है सो विकरण आत्मनेपद और अट् आगम तीनों कार्य्य एक साथ प्राप्त हैं इन में से आत्मनेपद सब से पहिले होकर अब विकरण करने के पहिले और पीछे भी (अट्) प्राप्त है इस से अट् नित्य हुआ और विकरण भी अट् करने से पहिले तथा पीछे भी प्राप्त है तो विकरण भी नित्य हुए। जब दोनों नित्य हुए तो परत्वसे अट् प्राप्त है। और अङ्ग कार्य अट्से विकरणों का होना प्रथम इष्ट है क्योंकि विकरण के आजाने पर सब की (अङ्ग) संज्ञा हो और अङ्गसंज्ञा के पश्चात् अट् होवे इसलिये यह परिभाषा है ॥

४२-शब्दान्तरस्य च प्राप्नुवन्विधिरनित्यो भवति॥अ० १।३।६०॥

जो दो कार्य एकसाथ प्राप्त हों और वे दोनें नित्य ठहरते हों तो उन में एकविधि के होने से पहिले जिस शब्द को दूसरा विधि प्राप्त है और पहिले कार्य के होने पश्चात् वह विधि दूसरे शब्द को प्राप्त हो तो वह अनित्य होता है यहां (अट्) आगम पहिले तो केवल (विश) को प्राप्त है और विकरण किये पीछे विकरणसहित सब की अंगसंज्ञा होने से सब को प्राप्त है इसलिये अट् अनित्य हुआ। फिर प्रथम विकरण हो कर पुनः प्रसंग मानने से (अट्) हो जाता है। इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ४२ ॥

[मृकुर्व्यां भवः मार्कुटः, नृपतेरपत्यं नार्पत्यः] यहां जो (ऋ) शब्दको वृद्धि होती है उसी वृद्धिरूप आकार का सहचारी रेफ रहता है उस रेफ को खर् प्रत्याहार के परे [खरवसानयोर्विसर्जनीयः] इस सूत्र से विसर्जनीय होने चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

४३-असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे ॥ अ० ८ । ३ । १५ ॥

४४-असिद्धं बहिरङ्गलक्षणमन्तरङ्गलक्षणे॥ अ० ६।४।१३२॥

इन में से पहिली परिभाषा बहुधा व्यवहारकालमें प्रवृत्त होती और दूसरी बहुधा व्याकरणादिशास्त्रों में लगती है। बहिरंग कार्य करने में अन्तरंग कार्य असिद्ध हो जाता है। बहिर् और अन्तर् इन दोनें शब्दों के आगे जो अंग शब्द है वह उपकारकवाची और अंग शब्द के साथ दोनें शब्दों का बहुव्रीहि समास है [निमित्तसमुदायस्य मध्ये यस्य कार्यस्यांगमुपकारि निमित्तं बहिः कार्यान्तरापेक्षया दूरमधिकं वा वर्त्तते तद्बहिरङ्गं कार्य्यम्, एवं निमित्तसमुदायस्य मध्ये

For Private And Personal Use Only

यस्य कार्यस्याङ्गमुपकारिनिमित्तमन्तः कार्यान्तरापेक्षया सन्निहितं वा न्यूनं वर्त्तते तदन्तरङ्गं कार्यम्, तथा बह्वपेक्षं बहिरङ्गमल्पापेक्षमन्तरङ्गम्) बहिरङ्ग उस को कहते हैं कि प्रकृति, प्रत्यय, वर्ण और पद के समुदाय में जिस कार्य के उपकारी अवयव दूसरे कार्य की अपेक्षा से दूर वा अधिक हों । और अन्तरङ्ग वह कहाता है कि प्रकृति आदि निमित्तों के समुदाय में जिस कार्य के उपकारी अवयव दूसरे कार्य की अपेक्षा से समीप वा न्यून हों । तथा जो बहुत निमित्त और व्याख्यान की अपेक्षा रक्खे वह बहिरङ्ग तथा थोड़े निमित्त और व्याख्यान की अपेक्षा रक्खे वह अन्तरङ्ग कहाता है । इसलिये प्रायः अन्तरङ्गकार्य प्रथम होता है और बहिरङ्ग असिद्ध हो जाता है । और कहीं २ बहिरङ्ग प्रथम हो भी जावे तो अंतरङ्गकार्य की दृष्टि में असिद्ध अर्थात् नहीं हुआ सा ही रहता है । अब प्रकृत में (नार्कुटः, नार्पत्यः) यहां ककार पकार विसर्जनीय के निमित्त अंतरङ्ग और वृद्धि का निमित्त तद्धित बहिरङ्ग है सो प्रथम बहिरङ्ग कार्य वृद्धि होभी जाती है । परन्तु अंतरङ्गकार्य विसर्जनीय करने में वृद्धि के असिद्ध होने से रेफ ही नहीं फिर विसर्जनीय किस को हो तथा (वाह ऊठ्) इस सूत्र में (ऊठ्)नहीं पढ़ते तो संप्रसारण की अनुवृत्ति आकर (प्रष्ठ×वाह्×ण्वि× अस्) इस अवस्था में ण्वि प्रत्यय के परे वकार को (उ) संप्रसारण और पूर्वरूप हो कर। (प्रष्ठ×उह्×ण्वि×अस्) इस अवस्था में उकार को ओकार (गुण)और उस ओकार के साथ वृद्धि एकादेश होकर(प्रष्ठौहः) आदि प्रयोग सिद्ध होही जाते फिर ऊठ् ग्रहण व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक होता है कि(प्रष्ठौहः)आदि में गुण करते समय संप्रसारण(असिद्ध)होता हैअर्थात् यजादिप्रत्ययनिमित्त भसंज्ञा और भसंज्ञाके आश्रय संप्रसारण होता है इसप्रकार बहुत अपेक्षा वाला होने से संप्रसारण बहिरङ्ग और(वि) प्रत्यय को मान के गुण अंतरङ्ग है फिर अंतरङ्ग गुण करने में जब संप्रसारण असिद्ध हुआ तो गुण की प्राप्ति नहीं जब गुण नहीं हुआ तो वृद्धिहोकर (प्रष्ठौहः) आदि प्रयोग भी नहीं बन सकते इसलिये ऊठ्ग्रहण करना चाहिये इसी ऊठ् ग्रहण के ज्ञापक से यह परिभाषा निकली है तथा (पचावेदम्, पचामेदम्) यहां लोट्के उत्तम पुरुष के एकार को ऐकारादेश प्राप्त है सो ऐत्व अंतरङ्ग की दृष्टि में (आद्गुणः) सूत्र से हुआ गुण बहिरङ्ग होने से असिद्ध है इसलिये वहां एकारही नहीं तो ऐकार किसको हो । इत्यादि इस परिभाषा के असंख्य प्रयोजन हैं।लोक में भी अंतरंग कार्य करने में बहिरङ्ग असिद्धही माना जाताहै जैसे । मनुष्य प्रातःकाल उठकर पहिले निज शरीरसंबन्धी अंतरङ्गकार्यों को करता है पीछे मित्रों के और उस

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

के पीछे सम्बन्धियों के काम करता है क्योंकि मित्र आदि के कार्य निज शरीर की अपेक्षा में बहिरङ्ग हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अब अंतरङ्गबहिरङ्गलक्षण परिभाषा में ये दोष हैं कि (अक्षैर्दीव्यति अक्षद्यूः, हिरण्यद्यूः) यहां (दिव्) धातु से क्विप् प्रत्यय के परे क्विप् को मान के वकार को ऊठ् होता है उस बहिरङ्गऊठ् को असिद्ध मानें तो यणादेश नहीं हो सकता इत्यादि दोषों की निवृत्ति के लिये यह अगली परिभाषा है ॥

४५–नाजानन्तर्ये बहिष्ट्वप्रक्लृप्तिः ॥ अ० १ । ४ । २ ॥

जहां दोनों अचों के समीप वा मध्य में कार्य विधान करते हो वहां अन्तरङ्ग बहिरङ्गलक्षण परिभाषा नहीं लगती इस से (अक्षद्यूः) आदि में बहिरङ्ग ऊठ्को जब असिद्ध नहीं माना तो यणादेश भी होगया तथा (षत्वतुकोरसिद्धः) इस सूत्र में तुक्ग्रहण का यही प्रयोजन है कि (अधीत्य, प्रेत्य) इत्यादि प्रयोगों में तुक् अन्तरङ्ग और सवर्णदीर्घ तथा गुण एकादेश बहिरङ्ग है जो तुक् अन्तरङ्ग के करने में बहिरङ्गएकादेश असिद्ध होजाता तो तुक् हो ही जाता फिर तुग्-विधि में एकादेश को असिद्ध करने से यह ज्ञापक निकला कि जो दो अचों के आश्रय बहिरङ्गकार्य हो वह अन्तरङ्गकार्य की दृष्टि में असिद्ध नहीं होता । इसी तुक्ग्रहणज्ञापक से यह परिभाषा निकली है ॥ ४५ ॥

(गोमान् प्रियो यस्य स गोमत्प्रियः,यवमत्प्रियः,गोमानिवाचरति गोमत्यते, यवमत्यते) इत्यादि प्रयोगों में समासाश्रित अन्तर्वर्त्तिनीविभक्ति का लुक् द्विपदाश्रय होने से बहिरङ्ग और (हल्ङ्यादि) सूत्र से प्राप्तसुलोप एकपदाश्रय होने से अन्तरङ्ग है सो जो बहिरङ्ग का बाधक अन्तरङ्ग होजावे तो नुम् आदि कार्य होकर (गोमत्प्रियः) प्रयोग सिद्ध नहीं किन्तु (गोमान्प्रियः) ऐसा प्राप्त होवे सो अनिष्ट है इसलिये यह परिभाषा है ॥

४६–अन्तरङ्गानपि विधीन् बाधित्वा बहिरङ्गो लुग् भवति ॥ अ० ७ । २ । ९८ ॥

अन्तरङ्गविधियोंको बाध के भी बहिरङ्गलुक् होताहै अर्थात् जब अन्तर्वर्त्तिनी विभक्ति का लुक् समासाश्रय होनेसे बहिरङ्गहुआ एकपदाश्रयसुलोप आदि अंतरङ्गों का बाधक होगयातो(न लुमताङ्गस्य)इस सूत्र से नुम्आदि करनेमें प्रत्ययलक्षण का निषेध होकर(गोमत्प्रियः)इत्यादि प्रयोग बनजाते हैं तथा(प्रत्ययोत्तरपदयोश्च)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस सूत्र का यही प्रयोजन है कि (त्वामिच्छति, त्वयति, मयति, तवपुत्रस्त्वत्पुत्रः, मत्पुत्रः त्वं नाथोस्य त्वन्नाथः, मन्नाथः) इत्यादि प्रयोगों में (युष्मद् ,अस्मद्) शब्दों को (त्व,म) आदेश होजावे (त्वं नाथोऽस्य) इस अवस्था में मध्यवर्तिनी विभक्ति का लुक् (त्व, म) आदेश होने के पहिले और पीछे भी प्राप्त होने से नित्य और (त्व,म) आदेश अन्तरङ्ग हैं नित्य से अंतरङ्ग बलवान् होता है यह तो कहचुके हैं। सो जो अन्तरङ्ग होने से (त्व, म) आदेश पहिले हो जावें तो इस सूत्रका कुछ प्रयोजन न रहे क्योंकि वर्त्तमान विभक्ति के परे (त्वमावेकवचने) सूत्र से (त्व, म) होही जावेंगे फिर व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक हुआ कि अन्तरङ्ग विधियों का भी बहिरङ्ग लुक बाधक होता है फिर जब बहिरङ्ग लुक् पहिले हुआ तो सूत्र सार्थक रहा और इसी ज्ञापक से यह परिभाषा निकली॥ ४६ ॥

(पूर्वैषुकामशमः) यहां (पूर्वैषुकामशमी) शब्द से तद्धित (अण्) प्रत्यय होता है (पूर्व×इषु×काम×शमी×अ) इस अवस्था में जो तद्धित प्रत्ययाश्रित बहिरङ्ग उत्तरपदवृद्धि से अन्तरङ्ग होने के कारण अकार इकार को गुण एकारादेश पहिले हो जावे तो पूर्वोत्तरपद के पृथक् २ न रहने और उभयाश्रय कार्य में अन्तादिवद्भाव के निषेध होने से (दिशोऽमद्राणाम्०) इस सूत्र से उभयपद वृद्धि नहीं हो सकती इत्यादि दोषों की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है॥

४७-पूर्वोत्तरपदयोस्तावत्कार्यं भवति नैकादेशः॥अ० १।४।२॥

पूर्वोत्तरपदनिमित्तकार्य से अन्तरङ्ग भी एकादेश पहिले नहीं होता किन्तु पूर्वोत्तरपदनिमित्त कार्य अन्तरङ्ग एकादेश से पहिले हो जाता है इस से (पूर्वैषुकामशमः) यहां अन्तरङ्ग मान कर प्रथम गुण एकादेश नहीं होता किन्तु पहिले उत्तरपद को वृद्धि होकर वृद्धि एकादेश हो जाता है। यह भी परि॰भाषा (४५) वीं परिभाषा की सहचारिणी है। इस का ज्ञापक यह है कि (नेन्द्रस्य परस्य) इस सूत्र में उत्तरपदवृद्धिका निषेध है कि उत्तरपद में इन्द्र शब्द को वृद्धि न हो जिस से (सौमेन्द्रः) प्रयोग सिद्ध होजावे। सो जो सोम के साथ इन्द्र का एकादेश अन्तरङ्ग होने से पहिले होजावे तो इन्द्र शब्द का इकार तो एकादेश में गया अन्त्य का अच् तद्धित प्रत्यय के परे लोप में गया फिर जब उत्तरपद इन्द्र शब्द में कोई अच् ही नहीं तो वृद्धि का निषेध क्यों किया इस से व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक हुआ कि अन्तरङ्ग भी एकादेश पूर्वोत्तरपद कार्य के पहिले नहीं होता किन्तु अन्तरङ्ग का बाधक उत्तरपदवृद्धि पहिले होती है इसलिये उत्तरपद में इन्द्र शब्द को वृद्धि का निषेध किया है॥ ४७॥

For Private And Personal Use Only

(प्रधाय, प्रस्थाय) इत्यादि प्रयोगों में (क्त्वा) प्रत्यय के स्थान में (ल्यप्) आदेश होता है सो ल्यप् होने से पहिले (प्रधा×त्वा) इस अवस्था में धा के स्थान में (हि) और (स्था) को इकारादेश तथा (त्वा) को (ल्यप्) भी प्राप्त है इस में हि आदि आदेश पर और अन्तरङ्ग हैं और ल्यप् बहिरङ्ग है सो पर और अन्तरङ्ग मान के हि आदि आदेश कर लें तो (प्रधाय, प्रस्थाय) आदि प्रयोग नहीं बन सकें इसलिये यह परिभाषा है ॥

४८–अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो ल्यब् बाधते ॥ अ० २।४।३६॥

अन्तरङ्ग विधियों का भी बहिरङ्ग ल्यबादेश बाध करता है । इस से (हि) आदि आदेशों को बाध के प्रथम (ल्यप्) हो गया फिर हि आदि की प्राप्ति नहीं तो (प्रदाय, प्रधाय, प्रस्थाय) आदि प्रयोग सिद्ध हो गये और (अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति) इस सूत्र में ल्यप् का ग्रहण नहीं करते तो तकारादि प्रत्ययमात्र की अपेक्षा रखने वाला अद् धातु को (जग्ध) आदेश अन्तरङ्ग होने के कारण पूर्वपद की अपेक्षा रखने वाले समासाश्रित बहिरङ्ग ल्यप् आदेश से प्रथम हो जाता फिर ल्यप् ग्रहण व्यर्थ होकर इस का ज्ञापक हुआ कि (अन्तरङ्गविधियों को भी बाध के पहिले ल्यप् होता है) फिर तकारादि कित् न होने से (जग्ध) आदेश प्राप्त नहीं होता इसलिये ल्यप् ग्रहण किया है । यही ल्यप् ग्रहण इस परिभाषा के निकलने में ज्ञापक है ॥ ४८ ॥

(इयाय, इययिथ) इत्यादि प्रयोगों में पर होने से गुण वृद्धि और नित्य होने से द्वित्वप्राप्त है द्वित्व होने के पश्चात् (इ×इ×अ, इ×इ×इथ) इस अवस्था में परत्व से गुण वृद्धि और अन्तरङ्ग होने से सवर्णदीर्घ एकादेश प्राप्त है सो जो बलवान् होने से अन्तरङ्ग सवर्णदीर्घ एकादेश हो जावे तो (इयाय, इययिथ) आदि प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकें इसलिये यह परिभाषा है ॥

४९–वार्णादाङ्गं बलीयो भवति ॥ अ० ६ । ४ । ७८ ॥

वर्णकार्य से अङ्गकार्य बलवान् होता है । यहां वर्णकार्य सवर्णदीर्घ एकादेश और अंगकार्य गुणवृद्धि हैं उस वर्णकार्य से अंगकार्य को बलवान् होने से गुणवृद्धि प्रथम हो कर (इयाय, इययिथ) इत्यादि प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं (अभ्यासस्यासवर्णे) इस सूत्र में असवर्ण अच् के परे अभ्यास के इवर्ण उवर्ण को (इयङ्, उवङ्) आदेश कहे हैं सो जो गुण वृद्धि का बाधक एकादेश हो जावे तो अभ्यास से परे

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

असवर्ण अच् हो ही नहीं सकता फिर उस असवर्ण गुण वृद्धि किये अच् के परे (इयङ्, उवङ्) कहने से निश्चित ज्ञात हुआ कि (वर्णकार्य का बाधक अंगकार्य होता है) यही असवर्ण अच् के परे (इयङ्,उवङ्) का विधान इस परिभाषा के होने में ज्ञापक है ॥ ४९ ॥

यह बात प्रथम लिख चुके हैं कि अन्तरङ्ग से भी अपवाद बलवान् होता है (जुसि च) इस सूत्र से जो गुणविधान है सो (क्ङिति च) आदि निषेधप्रकरण का अपवाद है क्योंकि (झि) के ङित् होने से उसके स्थान में जुस् भी ङित् हो आदेश होता है सो जैसे (अबिभयुः, अबिभरुः) इत्यादि में निषेध का बाध जुस् में गुण होता है वैसे ही [चिनुयुः,सुनुयुः] यहां [यासुट्]के आश्रय से प्राप्त गुण निषेध का भी बाधक होजावे तो (चिनुयुः, सुनुयुः) आदि प्रयोगों में गुण होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

५०–येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति ॥ अ० १ । १ । ६ ॥

जिस कार्य की प्राप्ति में अपवाद का आरम्भ किया जाता है वह अपवाद उसी कार्य का बाधक होता है और जिस की प्राप्ति अप्राप्ति में सर्वथा अपवाद का आरम्भ है उसका बाधक नहीं होता इससे यह आया। कि (चिनुयुः, सुनुयुः) यहां दो ङित् हैं एक सार्वधातुक जुस् प्रत्यय का और दूसरा यासुट् का सो सार्वधातुकप्रत्ययाश्रित जो ङित्व है उसी को मान के प्राप्त गुण का निषेध है उस निषेध की प्राप्ति में जुस् के परे गुण कहा है और यासुट् के ङित्वनिमित्तप्राप्तनिषेध के होने वा न होने में उभयत्र जुस् के परे गुण कहा है क्योंकि (अबिभयुः) आदि में यासुट् के विना केवल सार्वधातुक के आश्रयगुण का निषेध प्राप्त है इस लिये (चिनुयुः) आदि में गुण नहीं होता। इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ॥ ५० ॥

अब इस पूर्वोक्त परिभाषा के विषय में यह विशेष विचार है कि (नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च) यह सूत्र अगले (न क्रोडादिबह्वचः, सहनञ्०) इन दो सूत्रों का अपवाद है और दोनों की प्राप्ति में इस का आरम्भ भी है पूर्व परिभाषा के अनुकूल माना जावे तो सह, नञ् और विद्यमानपूर्वक शब्दों से प्राप्त निषेध का बाधक ङीष् प्रत्यय (सनासिका, अनासिका, विद्यमाननासिका) आदि में भी (ङीष्) प्रत्यय होना चाहिये तो ये प्रयोग नहीं बनसकें इसलिये यह परिभाषा है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५१—पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते न परान्॥

अ० ॥ ४ । १ । ५५ ॥

जो पहिले अपवाद और पीछे उत्सर्ग पढ़ा हो तो वह अपने समीपस्थ कार्य का बाधक हो और परविधि अर्थात् जिस के साथ व्यवधान है उस का बाधक नहीं होवे। इस से बह्वच् लक्षण से प्राप्त [ङीष्] के निषेध का बाधक हुआ और सह, नञ्, विद्यमान पूर्वक नासिका से प्राप्त ङीष् के निषेध का बाधक नहीं हुआ। इस प्रकार(सनासिका, अनासिका) आदि प्रयोग सिद्ध हो गये। इसी प्रकार अन्यत्र भी इसका विषय जानना ॥ ५१ ॥

अब (नासिकोदरौष्ठ०) इस सूत्र में जो ओष्ठ आदि पांच संयोगोपध शब्द हैं उन से निषेध भी प्राप्त है उस का बाधक पूर्व परिभाषा नहीं हो सकती क्योंकि (नासिकोदर०) सूत्र से भी संयोगोपध का निषेध पूर्व है (नासिकोदर०) सूत्र में नासिका और उदर शब्द तो सह आदि पूर्व होने से पर दोनों सूत्रों के अप॰ वाद हैं और ओष्ठ आदि शब्द सह आदि पूर्व हों तो (सहनञ्) इस पर सूत्र के और सामान्य उपपद में (स्वाङ्गाच्चोप०) इस पूर्व सूत्र के भी अपवाद हों। सो दोनों के अपवाद होने चाहिये या किसी एक के। इस सन्देह की निवृत्तिके लिये यह परिभाषा है॥

५२—मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान् ॥ अ० ४ । १ । ५५ ॥

जो पूर्व पर दोनों ओर उत्सर्ग और मध्य में अपवाद पढ़ा हो तो वह अपने से पूर्वविधि का बाधक होता है उत्तर का नहीं इस से (बिम्बोष्ठी, बिम्बोष्ठा, दीर्घजङ्घी, दीर्घजङ्घा) इत्यादि उदाहरणों में संयोगोपधलक्षण निषेध का बाधक होगया और (सदन्ता,अदन्ता,विद्यमानदन्ता) इत्यादि में परसूत्र से प्राप्त निषेध की बाधा नहीं हुई। इसी प्रकार सर्वत्र योजना करलेनी चाहिये ॥ ५२ ॥

(सुडनपुंसकस्य) इस सूत्र में सुट् की सर्वनामसंज्ञा का निषेध है सो(कुण्डानि तिष्ठन्ति, वनानि तिष्ठन्ति) यहां भी जो नपुंसक के सुट् की सर्वनामस्थानसंज्ञा का निषेध होजावे तो (नुम्) आदि होकर (कुण्डानि) आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं सो न होसकें इसलिये यह परिभाषा है॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५३-अनन्तरस्य विधिर्वा प्रतिषेधो वा॥अ० १ । १ । ४३ ॥

जिस में कुछ अन्तर न हो अर्थात् जो अत्यन्त समीप हो उस का विधि वा निषेध होता है दूरस्थ का नहीं । इससे सुट्करके जो सर्वनामस्थानसंज्ञाकी प्राप्ति है उसी का निषेध करता है (शि) की सर्वनामस्थानसंज्ञा का निषेध नहीं इस से कुण्डानि आदि प्रयोग बन जाते हैं । और (नेटि) सूत्र में इडादि सिच् के परे वृद्धि का निषेध होता है सो जो दूरस्थ वृद्धि का भी होती अमार्जीत्, अलावीत्, अपावीत् इत्यादि में भी वृद्धि का निषेध होना चाहिये इस परिभाषा से समीपस्थ हलन्तलक्षण वृद्धि का निषेध हो जाता है सामान्य करके नहीं इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ५३ ॥

(ददति, दधति) इत्यादि प्रयोगों में जो प्रत्ययादि झकार को अन्तरङ्ग होने से अन्तादेश प्रथम हो जावे तो अभ्यस्तसंज्ञकों से विहित प्रत्ययादि झकार को अत् आदेश व्यर्थ और अनिष्टप्रयोग सिद्ध होने लगें इसलिये ये परिभाषा हैं ॥

५४-नचापवादविषये उत्सर्गोऽभिनिविशते ॥

५५-पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुत्सर्गाः ॥

५६—प्रकल्प्य चापवादविषयमुत्सर्गः प्रवर्त्तते॥अ०६।१।५॥

ये तीनों परिभाषा उत्सर्गापवाद की व्यवस्था के लिये हैं अपवादविषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती । प्रथम अपवादों की और पश्चात् शेषविषय में उत्सर्गों की प्रवृत्ति होती है । अपवाद के विषय को छोड़के अपने विषय में उत्सर्ग प्रवृत्त होते हैं । इस से यह आया कि अभ्यस्तसंज्ञक से प्राप्त जो प्रत्ययादि झकार को अन्, आदेश उस अपवाद के विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति न होने से प्रथम अपवाद प्रवृत्त हुआ तो प्रत्ययादि झकार को अत् आदेश हो कर [ददति, दधति] आदि प्रयोग सिद्ध हो गए । और जैसे अन्त आदेश का बाधक[पचेयुः,अजागरुः] आदि प्रयोगों में झि को जुस् होता है वैसे [ऐप्सन्] आदि प्रयोगों में उत्सर्ग का विषय है उस में झिको जुस् नहीं होता । अर्थात् अपवाद के विषय में उत्सर्गकी प्रवृत्ति नहीं होती और उत्सर्ग के विषयमें अपवाद की प्रवृत्तिहोही जातीहै॥५६॥

अब पूर्व परिभाषाओं से यह आया कि अपवादविषय में उत्सर्गों कीप्रवृत्ति नहीं होती किन्तु स्वविषय में अपवाद उत्सर्ग का बाधक होताहै तो[दीर्घोऽकितः] इस सूत्र में अकित् ग्रहण व्यर्थ होता है क्योंकि जो सामान्य से अभ्यास कोदीर्घ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कहते तो अनुनासिकान्त अकारोपध धातुओं के अभ्यास को दीर्घ का बाधक (नुक्) आगम हो कर अजन्त के न रहने से दीर्घ की प्राप्ति हो नहीं थी तो (यंबम्यते, रंरम्यते) आदि प्रयोग सिद्ध हो हो जाते फिर अकित् ग्रहण व्यर्थ हो कर इस वक्ष्यमाण परिभाषा के निकलने में ज्ञापक है ॥

५७-अभ्यासविकारेष्वपवादा उत्सर्गान्न बाधन्ते ॥अ०७।४।८३॥

अभ्यास के आदेशविधानप्रकरण में अपवाद उत्सर्गों के बाधक नहीं होते तो जब दीर्घरूप उत्सर्ग का बाधक नुक्, न रहा तो (यंयम्यते) आदि में दीर्घ की प्राप्ति हुई इसलिये अकित् ग्रहण सार्थक हुआ यह तो स्वार्थ में चरितार्थ औरअन्यत्र फल यह है कि (डोढौक्यते,तोत्रौक्यते) इत्यादि प्रयोगों में उत्सर्गरूप ह्रस्वका बाधक दीर्घ नहीं होता और जो ह्रस्व का अपवाद होने से औकार को औकार हो दीर्घ कर लेवें तो फिर ह्रस्व होकर गुण न होवे तो (डोढौक्यते) आदि प्रयोग भी सिद्ध न हों इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ॥ ५७॥

तच्छीलादि अर्थों में (तृन्) प्रत्यय ण्वुल् का अपवाद है और (ण्वुल्) तथा (तृन्) असरूप प्रत्यय भी हैं सो धात्वधिकार में असरूप प्रत्यय उत्सर्ग का बाधक विकल्पकरके होता है पक्ष में उत्सर्ग भी होजाता है अब (निन्दहिंसक्लिश०) इस सूत्र में (वुञ्) प्रत्यय का (तृन्) अपवाद क्यों पढ़ा क्योंकि तृन् के द्वितीय पक्ष में ण्वुल् होकर (निन्दकः,हिंसकः) आदि प्रयोग बन ही जाते कि जो (वुञ्) प्रत्यय के होने से बनते हैं और (निन्दकः) आदि में (ण्वुल्, वुञ्) का स्वर भी एक ही होता है एक (असूयक) शब्द के स्वर में तो (ण्वुल्,वुञ्) के होने से भेद पड़ेगा। ण्वुल् का स्वर [असूयकः] वुञ् का [असू॑यकः] और [निन्द॑कः] आदि में आद्युदात्त ही रहेगा। फिर निन्द आदि धातुओं से वुञ्विधान व्यर्थ हुआ इसलिये यह ज्ञापकसिद्ध परिभाषा है ॥

५८-ताच्छीलिकेषु सर्व एव तृजादयोवाऽसरूपेण न भवन्ति॥ अ० ३। २। १४६ ॥

तृच्आदि अपवादों के साथ असरूप उत्सर्ग रूप प्रत्यय तच्छीलाधिकार विहित अपवादों के पक्ष में नहीं होते। इस से तच्छीलाधिकारविहित तृन् के पक्ष में जब ण्वुल् नहीं होसकता तो निन्द आदि धातुओं से वुञ्विधान सार्थक होगया और [असूयकः] में स्वर भेद होने के लिये [वुञ्] कहना आवश्यकही है। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ५८ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अब धात्वधिकार में सर्वत्र वाऽसरूपविधि के मानने से (हसितं, हसनं वा छात्रस्य शोभनम्) यहां (क्त) और ल्युट् के विषय में घञ् (इच्छति भोक्तुम्) यहां (लिङ्, लोट्) और (ईषत्पानः सोमो भवता) यहां (खल्) असरूप उत्सर्ग होने से प्राप्त हैं इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

५९–क्तल्युट्तुमुन्खलर्थेषु वाऽसरूपविधिर्नास्ति ॥अ० ३।१।९४॥

क्त, ल्युट्, तुमुन्, और खलर्थप्रत्ययों के विषय में असरूप उत्सर्ग प्रत्यय अपवाद-पक्ष में नहीं होते इस से (हसितम्, हसनम्) आदि प्रयोगों के विषय में घञ् आदि उत्सर्ग प्रत्यय नहीं होते (अर्हे कृत्यतृचश्च) इस सूत्र में कृत्य और तृच् प्रत्यय नहीं कहते तो अर्ह अर्थ में कहे हुए लिङ् के साथ असारूप्य होने से अर्ह अर्थ में कृत्य और तृच् हो ही जाते फिर कृत्य और तृच् ग्रहण व्यर्थ होकर यह जनाते हैं कि (वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्) यह परिभाषा अनित्य है ॥ ५९ ॥

(हशश्वतोर्लङ् च) इस सूत्र में लङ् ग्रहण नहीं करते तो भूतानद्यतनपरोक्षकाल में, विहित (लिट्) के साथ असरूप (लङ्] का समावेश हो ही जाता फिर लङ् व्यर्थ होकर इस परिभाषा का ज्ञापक होता है ॥

६०–लादेशेषु वाऽसरूपविधिर्न भवति ॥अ० ३ । १। ९४ ॥

लकारार्थ विधान में वाऽसरूपविधि नहीं होती । इस से लङ् लकार का ग्रहण सार्थक हुआ । और [लटः शतृशानचा०] यहां विकल्पकी अनुवृत्ति इसलिये करते हैं कि जिस से तिङ् का भी पक्ष में समावेश हो जावे जो [वाऽसरूप-विधि] होजाती तो तिङ् समावेश के लिये विकल्प नहीं लाने पड़ता इत्यादि अनेक प्रयोजन इस परिभाषा के समझने चाहिये ॥ ६० ॥

अब (तस्मिन्निति, तस्मादित्युत्तरस्य) इन सूत्रों से सप्तमीनिर्दिष्टकार्य अव्यवहित पूर्व को और पंचमीनिर्दिष्ट उत्तर को होता है सो [इको यणचि] यहां सप्तमी-निर्दिष्ट पूर्व को और [उदन्तरुपसर्गेभ्योऽपईत] ईपम् । यहां पंचमीनिर्दिष्टउत्तर को होता है । परन्तु जहां पंचमी और सप्तमी दोनों विभक्तियों का निर्देश हो वहां किसकोकार्य होना चाहिये इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषाहै ॥

६१–उभयनिर्देशे विप्रतिषेधात् पंचमीनिर्देशः॥अ० १। १।६६ ॥

जहां सप्तमी पंचमी दोनों विभक्तियों से निर्देश किया है वहां [तस्मिन्निति० तस्मादित्यु०] इन दोनों सूत्रों में पर विप्रतिषेध मान के पंचमीनिर्दिष्ट का कार्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होना चाहिये जैसे (बह्वोर्लोपोभूच बह्वोः) यहां (बहु) शब्द पंचमीनिर्दिष्ट और (इष्ठन्, इमनिच्, ईयसुन्) सप्तमीनिर्दिष्ट हैं यह बहु से परे इष्ठन् आदि को वा इष्ठन् आदि के परे बहु शब्द को कार्य होवे इस सन्देह की निवृत्ति इस परिभाषा से हुई कि पंचमीनिर्दिष्ट को कार्य होना चाहिये अर्थात् बहु से परे इष्ठन् आदि को कार्य होवे सोपरको विहितकार्य अर्थात् ईयसुन् के आदि का लोप होजाता है भूयान्, भूमा तथा (ङमो ह्रस्वादचिङमुण् नित्यम्) यहां ङम् से परे अच् को वा अच् परे हो तो ङम् को कार्य हो यह सन्देह है। सो ह्रस्व से परे जो ङम् उस से परे अच् को कार्य होता है (तिङ्ङतिङः) कुर्वन्नास्ते। इत्यादि बहुत सन्देह निवृत्त हो जाते हैं॥ ६१ ॥

इस व्याकरणशास्त्र में (स्वं रूपं शब्दस्या०) इस परिभाषासूत्र के अनुकूल (पयस्कुम्भी, पयस्पात्री) इत्यादि प्रयोगों में विसर्जनीय को सकारादेश न होना चाहिये क्योंकि कुम्भ और पात्र आदि शब्दों के परे कहा है उन के स्वरूप ग्रहण होने से स्त्रीलिङ्ग में नहीं हो सकता। इसलिये यह परिभाषा है ॥

६२–प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं भवति ॥ अ० ४ । १ । १ ॥

प्रातिपदिक केपरे वा प्रातिपदिक को जहां कार्य कहा हो वहां पठित लिङ्ग से विशेषलिङ्ग का भी ग्रहण होना चाहिये इस से पयस्कुम्भी आदि प्रयोग भी सिद्ध हो जाते हैं जैसे सर्वनाम को सुट् कहा है सो (येषाम्, तेषाम्) यहां तो होता ही है (यासां, तासां) यहां भी हो जावे जैसे (कष्टं श्रितः कष्टश्रितः) यहां समास होता है वैसे (कष्टं श्रिता कष्टश्रिता) यहां भी हो जावे जैसे (हस्तिनां समूहो हास्तिकम्) यहां ठक् होता है वैसे (हस्तिनीनां समूहो हास्तिकम्) यहां भी हो जावे जैसे (ग्रामेवासी) यहां सप्तमी का अलुक् होता है वैसे (ग्रामे वासिनी)यहां भी हो जावे इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं॥ ६२ ॥

जब प्रातिपदिक के ग्रहण में लिङ्गविशिष्ट का भी ग्रहण होता है तो जैसे (यूनः पश्य) यहां युवन् शब्द को सम्प्रसारण होता है वैसे (युवतीः पश्य)यहां स्त्रीलिङ्ग में भी होना चाहिये इत्यादि सन्देहों की निवृत्ति के लिये यह परि० ॥

६३–विभक्तौ लिङ्गविशिष्टग्रहणं न ॥ अ० ७ । १ । १ ॥

विभक्ति के आश्रय कार्य करने में पठितलिंग से अन्य लिंग का ग्रहण नहीं होता। इस से भसंज्ञाश्रय सम्प्रसारण युवति शब्द को नहीं होता तथा जैसे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(गोमान्, यवमान्) यहां नुम् और दीर्घ होते हैं वैसे (गोमती, यवमती) यहां होवे सो सर्वनामस्थ विभक्त्याश्रित कार्य होने से नहीं होता जैसे (सखा, सखायौ) यहां सखि शब्द को आकारादेश होता है वैसे (सखी, सख्यौ, सख्यः) यहां स्त्रीलिङ्ग में विभक्त्याश्रित आकार नहीं होता, इत्यादि इस परिभाषा के भी बहुत प्रयोजन हैं ॥ ६३ ॥

(तस्यापत्यम्) इस सूत्र में (तस्य) यह पुल्लिङ्ग षष्ठी का एक वचन और अपत्य शब्द नपुंसकलिंग प्रथमैकवचननिर्देश किया है, तो (कन्याया अपत्यं, कानीनः) यहां स्त्रीलिंग शब्द से कानीन शब्द नहीं सिद्ध होना चाहिये और (द्वयोर्मात्रोरपत्यं द्वैमातुरः) यहां द्विवचन से प्रत्ययोत्पत्ति भी नहीं होनी चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

६४-सूत्रे लिङ्गवचनमतन्त्रम् ॥ अ० ४ । १ । ९२ ॥

जो सूत्र में लिंग और वचन पढ़े हैं वे कार्य करने में प्रधान नहीं होते अर्थात् जहां स्त्रीलिंग, पुल्लिंग वा नपुंसकलिंग से तथा एकवचन, द्विवचन बहुवचन से निर्देश किये जावें वहां उसी पठितलिंग वा वचन से कार्य्य लिया जाय यह नियम नहीं समझना चाहिये किन्तु एक किसी लिङ्ग वा वचन से शब्द पढ़ा हो तो सभी लिङ्ग वचनों से कार्य्य हो सकते हैं इस से (कानीनः, द्वैमातुरः) इत्यादि शब्द सिद्ध हो जाते हैं। इत्यादि अनेक प्रयोजन इस परिभाषा से सिद्ध होते हैं॥६४॥

अब अत्यन्त भृशादि प्रातिपदिकों से जो भू धातु के अर्थ में (क्यङ्) प्रत्यय होता है वह (क दिवा भृशा भवन्ति) यहां भी भृश शब्द से होना चाहिये इत्यादि सन्देहों की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

६५-नञिवयुक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथाह्यर्थगतिः ॥ अ० ३ । १ । १२ ॥

वाक्य में जो नञ्युक्त पद है उस के समान जो वाक्य में युक्त और उस नञ्युक्त पदार्थ के सदृश धर्मवाला हो उस में कार्य्यविधान होना चाहिये। ऐसा ही अर्थ लोक में प्रतीत होता है। अर्थात् वाक्य में जिस पदार्थ को जिस क्रिया का निषेध होवे उस पदार्थ के तुल्य धर्म वाले को उसी क्रिया का विधान कर लेना चाहिये। जैसे लोक में किसी ने कहा कि (अब्राह्मणमानय) ब्राह्मण से भिन्न को लेआ तो ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रियादि किसी मनुष्य को ले आता है क्योंकि ब्राह्मण के तुल्य धर्मवाला मनुष्य ही होता है किन्तु यह नहीं होता कि ब्राह्मण से इतर को मंगवाने में मट्टी वा पत्थर आदि किसी पदार्थ को लेआ के अपना अभीष्ट

सिद्ध कर लेवे। इसी प्रकार शास्त्रों में भी जिस का निषेध किया हो उसके सदृश दूसरे का विधान करना चाहिये। यहां जो च्विप्रत्ययान्त से अन्य भृशादिशब्दों से क्यङ् प्रत्यय विधान किया है वह च्विप्रत्ययान्त के तुल्य अर्थ वाले भृशादिकों से क्यङ् होना चाहिये। च्वि प्रत्यय का अर्थ अभूततद्भाव है उसी अर्थ में क्यङ् होता है (अभृशो भृशो भवति, भृशायते) इत्यादि (क्दिवा भृशा भवन्ति) यहां अभूततद्भाव के न होने से (क्यङ्) नहीं होता। तथा (दधिक्कादयति, मधुक्कादयति) इत्यादि प्रयोगों में (तुक्) आगम को अभक्त मानें कि न पूर्वान्त और न परादि दोनों से पृथक् है तो अतिङ् से परे तिङ् पद को निघात होजावे। सो तुक् तिङ् से भिन्न तिङ् के तुल्य धर्मवाला पद नहीं है इस से निघात नहीं पावेगा और निघात होना इष्ट है इसलिये (तुक्) को अभक्त नहीं करना, किन्तु पूर्वान्त ही करना चाहिये इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६५ ॥

(उपपदमतिङ्) इस सूत्र में अतिङ्ग्रहण का यही प्रयोजन है कि तिङन्त उपपद का समास न होवे सो जो (सुप्, सुपा) इन दोनों की अनुवृत्ति चली आती है तब तो तिङ् उपपद का समास प्राप्तही नहीं फिर निषेधार्थ करना व्यर्थ हुआ इसलिये ऐसा ज्ञापक होना चाहिये कि असुबन्त के साथ असुबन्तका भी समास होता है तब तो अतिङ्ग्रहण सार्थक होता है इसलिये यह प० ॥

६६–गतिकारकोपपदानां कृद्भिःसह समासवचनंप्राक्सुबुत्पत्तेः ॥ अ० ४ । १ । ४८ ॥

गति कारक और उपपद इन का कृदन्तके साथ सु आदि की उत्पत्ति से पहिले ही समास होजाता है। यहां केवल सुप्रहित कृदन्त के साथ समास हुआ तो अतिङ्ग्रहण सार्थक होने से स्वार्थ में चरितार्थ होगया। और अन्यत्र फल यह है कि गति, (सांकूटिनम्) यहां जो तद्धितोत्पत्ति से पहिले सम् और कूटिन् सुबन्तों का समास करके पीछे तद्धित उत्पन्न किया चाहें तो तद्धितोत्पत्ति की विवक्षा में कूटिन् शब्दकी पृथक् पदसंज्ञा रहने से सम् शब्द को वृद्धि नहीं हो सकती। और जब सुप्रहित केवल कूटिन् कृदन्त के साथ समास होता है तब समास समुदाय की एक पदसंज्ञा होकर तद्धितोत्पत्ति होने से सम् को वृद्धि होजाती है। कारक, (या वस्त्रेण क्रीयते सा वस्त्रक्रीती, अश्वक्रीती) इत्यादि शब्दों में केवल क्रीत कृदन्त के साथ वस्त्र आदि शब्दों का समास होकर कारण पूर्व क्रीतान्त प्रातिपदिक से (ङीष्) प्रत्यय होजाता है। और जो सुबन्त के साथ ही समास नियम रहे तो समास की विवक्षा में ही अन्तरङ्ग होने से

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अकारान्तक्रीत शब्दसे टाप् होजावे पुनः अकारान्त होजानेसे अकारान्तसे विहित ङीप् प्रत्यय नहीं होवे तो(वस्त्रक्रीती) आदि प्रयोग भी सिद्ध न हो सकें। उपपद, (माषवापिणी,व्रीहिवापिणी) यहां प्रातिपदिकान्तनकार को णत्व होता है। सो जो सुबन्तों का ही समास करें तो समास की विवक्षा में ही नकारान्त(वापिन्) शब्दसे ङीप् होकर पीछे समास हो तब उस ङीबन्त (माषवापिनी) समुदाय की प्रातिपदिकसंज्ञा होवे तो प्रातिपदिकान्त ईकार के होने से फिर णत्व नहीं होसके। और जब केवल कृदन्त वापिन् शब्दके साथ समास होता है तब केवल माषवापिन् नकारान्त शब्दकी प्रातिपदिकसंज्ञा होकर ङीप् होताहै तो प्रातिपदिकान्तनकार को णत्व होजाता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६६ ॥

(उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः) इस सूत्र में उगित् धातु के निषेध का यही प्रयोजन है कि (उखास्रत्,पर्णध्वत्) इत्यादि में नुम् आगम न हो सो यह प्रयोजन तो (अञ्चु) धातु के ग्रहण से निकल जाता कि (उगित्) धातुको (नुम्) आगम हो तो अञ्चु ही को हो इस नियम से अन्य उगित् धातु को नुम् होता ही नहीं फिर अधातु ग्रहण व्यर्थ हुआ। इसके व्यर्थ होने रूप ज्ञापक से यह परिभाषा निकली है ॥

६७–साम्प्रतिकाऽभावे भूतपूर्वगतिः ॥

जो पदार्थ वर्त्तमान काल में अपनी प्रथमावस्था से पृथक होगया होतो उसी पूर्वावस्था के सम्बन्ध से उस को वर्त्तमान में भी कार्य हों जैसे (गोमन्तमिच्छति,-गोमत्यति , गोमत्यते, क्विप्,गोमान्) यहां प्रथम तो गोमान् प्रातिपदिक है पीछे उस से क्यच् हुआ तो धातुसंज्ञा हुई फिर क्यच्प्रत्ययान्त से क्विप् होने से धातुसंज्ञा उसको बनी रही। सो पूर्व रही प्रातिपदिकसंज्ञा के स्मरण से पीछे धातुसंज्ञा के बने रहते भी (नुम्) होता है अर्थात् अधातुनिषेध नहीं लगता इस से अधातु निषेध भी सार्थक रहा। तथा (आत्मनः कुमारीमिच्छति, कुमारीयति, कुमारीयतेः कर्त्तरि क्विप्,कुमारी ब्राह्मणः,तस्मै कुमार्य *ब्राह्मणाय) यहां कुमारी शब्द प्रथमावस्था में स्त्रीलिङ्गईकारान्त है तब तो स्त्र्याख्य ईकारान्त नदीसंज्ञा सिद्धहै पीछे जब पुल्लिङ्गवाची हो गया तब भी पूर्वावस्था के भूतपूर्व स्त्रीत्व को लेकर नदीसंज्ञा होके नदीसंज्ञा के कार्य भी होते हैं। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६७ ॥

*यहां भूतपूर्वगति परिभाषा के मानने से कार्य भी चलजाता तथा अन्यत्र भी सब काम चलता है फिर कुमार्यै ब्राह्मणाय। इत्यादि प्रयोगसिद्धि के लिये नदीसंज्ञा में (प्रथमलिङ्गग्रहणञ्च) इस वार्त्तिक का भी कुछ प्रयोजन नहीं रहा क्योंकि इस परिभाषा के होने से सब काम निकलजाते हैं। वार्त्तिक एकदेशी और परिभाषा सर्वदेशी है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बहुव्रीहिसमासमेंअन्य पदार्थ प्रधान होताहै अर्थात् जिन दो वा अधिकपदों का समास किया जावे उन पदों से पृथक् पद वाच्य अन्य पदार्थ कहाताहै जैसे (चित्रा गावो यस्य स चित्रगुः, शवलगुः) यहां गौओं का विशेषण (चित्रगुण) और गौ इन दोनों पदों से भिन्न इन का स्वामी (चित्रगु) कहाता है इसी प्रकार (सर्व आदिर्येषां तानि सर्वादीनि) यहां सर्व और आदि दोनों शब्दसे पृथक् अन्यपदार्थ लिया जावे तो सर्वशब्दकी सर्वनाम संज्ञा नहीं होसके इसलिये यह परिभाषाहै॥

६८–भवति हि बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि*॥अ० १।१।२७॥

बहुव्रीहि दो प्रकार का होता है एक (तद्गुणसंविज्ञान) और दूसरा (अतद्गुणसंविज्ञान) तद्गुणसंविज्ञान उस को कहते हैं कि जहां उस अन्य पदार्थ के साथ उसके निज गुणों का समवायसम्बन्ध हो जैसे (लम्बकर्णः, तुङ्गनासिकः, दीर्घबाहुः, कृमकेशनखश्मश्रुः) इत्यादि में अन्य पदार्थ का बोध कान आदि के सहित होता है । अतद्गुणसंविज्ञान वह है कि जिन पदों का समास किया जावे उन से अन्य पदार्थ का पृथक् सम्बन्ध बना रहे कि जैसे (चित्रगु) शब्दमें दिखा दिया है । इस से सर्वादि में भी तद्गुणसंविज्ञान मान के सर्व शब्द कोभी सर्वनामसंज्ञा हो जाती है । इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

जहां समास को अन्तोदात्त स्वर कहा है वहां (ब्राह्मणसमित्, राजदृषत्) इत्यादि प्रयोगों के अन्त में तकार है तो विधानसामर्थ्य से उस व्यञ्जन कोही उदात्त होजाना चाहिये इत्यादि सन्देह कीनिवृत्ति के लिये यह परि० ॥

६९–हल्स्वरप्राप्तौ व्यंजनमविद्यमानवद्भवति+ ॥अ० ६।१।२२३॥

व्यञ्जनको उदात्तादि स्वर प्राप्त होतो वह व्यञ्जन अविद्यमानवत् होताहै इससे (ब्राह्मणसमित्) आदि प्रयोगों में अन्त्य तकार को अविद्यमानवत् मानके इकार

---

* इस परिभाषा के आगे नागेश ने (चानुकृष्टं नोत्तरत्र) यह परिभाषा लिखी है सो ठीकनहीं क्योंकि उसका मूल कहीं महाभाष्यसे वा सूत्रों से नहीं निकलता । और न कोई उदाहरण मुख्य प्रयोजन का दिया ।

+ इस परिभाषा को नागेश भट्ट तथा अन्य लोग भी महाभाष्य से विरुद्ध लिखते पढ़ते हैं कि(स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्)ऐसा पाठ करने में महाभाष्यकारने ये दोषभी दिखाये हैं कि उदात्तादि स्वरोंकेविधान-मात्र में जो व्यञ्जन अविद्यमानवत् माना जावे तो (विद्युत्वान् वलाहकः) यहां विद्युत् के तकार को अविद्यमान मानें तो ह्रस्व से परे मतुप् को उदात्त स्वर (ह्रस्वनुड्भ्यां०) सूत्र से प्राप्त है० इत्यादि अनेक दोष आवेंगे । और (हल्स्वरप्राप्तौ०) इस प्रकार की परिभाषा में कोई दोष नहीं आता इसलिये नागेश आदि का मानना ठीक नहीं है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

को उदात्त होजाता है। इस का ज्ञापक (यतोऽनावः) इस सूत्र में यत् प्रत्ययान्त द्व्यच् प्रातिपदिक को आद्युदात्त कहा है। और (नौ) शब्द का निषेध इसीलिये है कि (नाव्य म्) यहां आद्युदात्त न हो सो जब आदि में नकारहै तब स्वर के होने से आद्युदात्त प्राप्त हो नहीं फिर निषेध करने से यही प्रयोजन है कि उस नकार का भी स्वर प्राप्त होता है सो अविद्यमानवत् मान के आकार को होजाता इसलिये निषेध किया। तथा अनुदात्तादि वा अन्तोदात्त से परे जो कार्य कहे हैं उन में जहां आदि और अन्त में व्यञ्जन हैं वहां उन कार्यांको प्राप्ति नहीं होगी वहां भी अविद्यमानवत् मान कर काम चल जाता है। और जो कदाचित् ऐसा मान लिया जावे कि उदात्तादि गुण व्यंजनों के हो हैं उन के संयोग से अचोंके भी धर्म समझे जाते हैं सो नहीं बन सकता क्योंकि व्यंजन के बिना भी केवल अचों में उदात्तादि धर्म प्रसिद्ध हैं और अच् के बिना व्यंजन का उच्चारण होना भी कठिनहै इसलिये उदात्तादि गुण स्वतंत्र व्यंजनों के नहीं होसकते। परन्तु यह बात तो माननी चाहिये कि अच् के संयोग से व्यंजन को भी उदात्तादि गुण प्राप्तहो जाते हैं। जैसे दो रङ्गिवस्त्रों के बीच एक श्वेत वस्त्र हो तो वह भी कुछ रङ्गित प्रतीत होता है॥ ६८॥

(वामदेवाड् ड्यड्यौ) इस सूत्र में ड्यत् औ ड्य प्रत्यय ङित् इसीलिये पढ़े हैं कि ङित् के परे वामदेव शब्द के टि भाग का लोप होजावे सो (यस्येति च) सूत्र से तद्धित के परे भसंज्ञक अवर्ण का लोप हो ही जाता फिर ङित्करण व्यर्थ हो कर इन परिभाषाओं के निकलने में ज्ञापक है॥

७०—अननुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य ग्रहणम्॥

७१—तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य ग्रहणम्॥अ०४।२।९॥

अनुबन्धरहित प्रयोगों के ग्रहण में अनुबन्धसहितोंका ग्रहण नहीं होसकता अर्थात् जहां यत् प्रत्यय ङकार अनुबन्ध से रहित पढ़ा है और ड्यत् में ङकारको इत्संज्ञा होकर यत्ही रह जाता है जहां यत् और य प्रत्यय का ग्रहण कियाहै वहां (ड्यत्, ड्य) प्रत्यय का ग्रहण न हो। और जिस अनुबन्धसे जो प्रत्ययपढ़ा है उस में द्वितीय अनुबन्ध के सहित प्रत्यय का ग्रहण न हो अर्थात् यत् कहनेसे ण्यत् अङ् कहने से चङ् और अच् कहने से णच् का ग्रहण न हो इस से यह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आया कि (ययतोश्चातदर्थे) इस स्वरविधायक सूत्र में नञ् से परे (य, यत्) प्रत्ययान्त को अन्तोदात्त स्वर होता है सो जो (ण्यत्, ण्य)का भी ग्रहण होवे तो (अवामदेव्यम्) यहां भी अन्तोदात्त स्वर होजावे और पूर्वपदप्रकृतिस्वर इष्ट है इसलिये ङित्ग्रहण का सार्थक होना स्वार्थ में चरितार्थ और अङ् के परेजो गुणआदि कार्य कहा है सो चङ् के परे नहीं होता और चङ् के परे जोद्दित्वादि कार्य कहा है सो अङ् के परे नहीं होता इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥७०॥७१॥

(णचः स्त्रियामञ्) यहां णच् प्रत्ययान्त से स्वार्थ में अञ् प्रत्ययकहाहै सो (कर्म्मव्यतिहारे णच्स्त्रियाम्) इस सूत्र से णच प्रत्यय का तो स्त्रीलिंगमें ही विधान है फिर स्वार्थ में णच् प्रत्ययान्त से अञ् कहने से स्त्रीलिंग ही हो जाता क्योंकि स्वार्थिक प्रत्ययों के होने में प्रकृति के लिङ्ग और वचन की अनुवृत्ति होती है फिर स्त्रीग्रहण व्यर्थ हुआ इसलिये यह परिभाषा है ॥

७२-क्वचित्स्वार्थिका अपि प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्त्तन्ते ॥

अ० ५ । ३ । ६८ ॥

कहीं २ स्वार्थिक प्रत्यय भी प्रकृति के लिङ्ग वचनों को छोड़ देते हैं जब प्रकृति के लिङ्ग वचन स्वार्थप्रत्ययोत्पत्ति में सर्वत्र नहीं बने रहते तो (णचः-स्त्रियामञ्) सूत्र में स्त्रीग्रहण सार्थक हो गया । तथा(अपकल्पम्) यहां नियत स्त्रीलिङ्ग बहुवचनान्त अप शब्द से कल्पप्प्रत्यय स्वार्थ में हुआ है सो अपने लिङ्ग वचन छोड़ के नपुंसकलिङ्ग एकवचन रह जाता है तथा (गुड़कल्पा द्राक्षा, पयस्कल्पा यवागूः) यहां गुड़पुल्लिङ्ग और पयः नपुंसकलिङ्ग से कल्पप् प्रत्यय होकर स्त्रीलिङ्ग हो जाता है । और क्वचित् कहने से यह प्रयोजन है कि(बहुगु-डो द्राक्षा, बहुपयो यवागूः) इत्यादि में प्रकृति के अनुकूल ही लिङ्ग वचन रहते हैं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७२ ॥

(प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे) इस सूत्र के अंश्वादिगण में राजन् शब्द पढ़ा है तो उस का यही प्रयोजनहै कि प्रति से परे तत्पुरुष समासमें राजन् शब्द अन्तोदात्त होजावे सो जब प्रतिपूर्वक राजन् शब्द से तत्पुरुष समास में समासान्तटच्प्रत्यय प्राप्त है तब तो चित् होने से अन्तोदात्त होही जाता फिर राजन् शब्द का पाठ व्यर्थहुआ इसलिये यह परिभाषा है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

७३-विभाषा समासान्तो भवति *॥ अ० ६। २। १९७॥

समासान्त सब प्रत्यय विकल्प करके होतेहैं तो प्रतिपूर्वक राजन् शब्दसेजिस पक्ष में समासान्त टच् न हुआ वहां (प्रतिराजा) में भी अन्तोदात्त होजावे इसलिये राजन् शब्द का अंशवादिगण में पढ़ना सार्थक हो गया। तथा (द्वित्रिभ्यां षाइन्) इस सूत्र से भी बहुव्रीहिसमास में द्वित्रिपूर्वक मूर्द्ध शब्दकोअन्तोदात्त स्वर कहा है सो यहां भी द्वित्रिपूर्वक मूर्द्ध से जब समासान्त ष प्रत्ययविधान है तो प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त सिद्ध हो है फिर मूर्द्धन् शब्द का ग्रहण इसीलिये है कि समासान्त प्रत्यय विकल्प होते हैं सो जिस पक्ष में समासान्त नहीं होता (द्विमूर्द्धा, त्रिमूर्द्धा) यहां भी अन्तोदात्त स्वर हो जावे। इत्यादि प्रयोजनोंके लिये यह परिभाषा है॥ ७३॥

(शतानि, सहस्राणि) यहां जब सर्वनामस्थान शि को मान के नुम्आगम होता है तब(शतन्, सहस्रन्) शब्दों के नकारान्त हो जाने से(ष्णान्ता षट् सूत्र से षट्संज्ञा होजावे तो(षड्भ्यो लुक्) सूत्र से शिका लुक् होना चाहिये इत्यादि समाधान के लिये यह परिभाषा है॥

७४-सन्निपातलक्षणोविधिरनिमित्तंतद्विघातस्य॥अ० १।१।३९॥

जो एक के आश्रय से दूसरे का सम्बन्ध होना है वह सन्निपात कहाता है उसी सन्निपातसंबन्ध का जो निमित्त हो ऐसा जो विधि कार्य है वह उस अपने निमित्तके बिगाड़नेको अनिमित्त अर्थात् असमर्थ होताहै। यहां शत, सहस्रशब्द से जस् आकर शि आदेश हुआ अब शि के आश्रय से शत शब्द को नुम् हो कर शत नान्त हुआ अब जिस के आश्रय से शत को नान्तत्व गुण मिला उस नान्तगुण से उसी का विघात करे यह ठीक नहीं इस से(शतानि, सहस्राणि) आदि में शि का लुक् नहीं होता तथा(इयेष, उवोष) यहां णल् प्रत्यय के आश्रय से(इष, उष) धातु को गुणहोता है गुण होने से इजादि मान कर आम् प्राप्त है और

* इस परिभाषा को नागेश भट्ट ने (समासान्तविधिरनित्यः) ऐसा लिखा है सो महाभाष्यसे विरुद्ध है क्योंकि अनित्य औरविभाषा में बहुत भेद है अनित्य उस को कहते हैं कि जो कभी हो और कभी न हो और विकल्प के दो पक्ष सदा बने रहते हैं और इस परिभाषा की भूमिका में (सुपथी नगरी) यह महाभाष्य का उदाहरण करके रक्खा है कि पथिन् शब्द से (इनः स्त्रियाम्) सूत्र से समासान्त कप् नहीं हुआ तो समासान्त अनित्य हैं। सो यह नहीं विचारा कि (न पूजनात्) सूत्र से (सुपथी नगरी) आदि सब में पूजनवाची समास से समासान्त का निषेध सिद्ध है जब कप् प्राप्त ही नहीं तो समासान्तविधि के अनित्य होने में (सुपथी नगरी) यह प्रयोग कब समर्थ हो सकता है। देखो व्याकरण में नागेश की कितनी बड़ी भूल है॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आम् के होजाने से उस से परे लुक् कहा है तो उसी आम् का विघात हो कि जिस के आश्रय से इस उस इत्यादि हुए हैं इत्यादि इसके अनेक प्रयोजन हैं। और लोक के साथ भी इस परिभाषा का सम्बन्ध है कि जो पुरुष जिस धनाढ्य के धन से स्वयं धनवान् हुआ हो वह उसी धन से धनाढ्य का विघात करे यह बहुत विरुद्ध है अर्थात् ऐसा कभी न होना चाहिये कि जिस के संग से जो सामर्थ्य प्राप्त हो उस सामर्थ्य से उसी को नष्ट करे ॥ ७४ ॥

(पञ्चेन्द्राण्यो देवता अस्य स पञ्चेन्द्रः स्थालीपाकः) पञ्चेन्द्राणी शब्दसे देवता अर्थ में विहित अण् प्रत्यय का (द्विगोर्लुगनपत्ये) सूत्र से लुक् होकर (लुक्तद्धितलुकि) सूत्र से ईकार स्त्रीप्रत्यय का भी लुक् हो जाता है। तब ङीष् के संयोग से आया जो आनुक् आगम उस का लुक् विधान किसी सूत्र से नहीं किया सो उस आनुक् का श्रवण हो तो (पञ्चेन्द्रः) आदि शब्द सिद्ध नहीं हो सकें इसलिये यह परिभाषा है ॥

७५—संनियोगशिष्टानामन्यतराऽभावे उभयोरप्यभावः ॥ अ० ६ । ४ । १५३ ॥

जिस कार्य के होनेमें एक साथ दो का नियम हुआ हो उन में से जब एकका अभाव होजावे तब दूसरे का अपने आप अभाव होजाताहै। जैसा किसी कार्य का नियम है कि देवदत्त यज्ञदत्तदोनों मिलके इस काम को करें सो जो देवदत्त न रहे तो यज्ञदत्त उस कार्य से स्वयं निवृत्त होजाता है। इसी प्रकार यहां भी इन्द्र शब्दसे स्त्रीत्व रूप कार्य की विवक्षा को ङीष् और आनुक् दोनों पूरी करते हैं। सो जब ङीष् का अभाव होता है तब आनुक् भी वहां से निवृत्त होजाता है। तथा (पञ्चाग्नाय्यो देवता अस्य स पञ्चाग्निः)। यहां स्त्री प्रत्यय के लुक् होने के पश्चात् ऐकार आगम की भी निवृत्ति होजाती है। इस परिभाषा का ज्ञापक यह है कि (विल्वकादिभ्यश्छस्य लुक्) इस सूत्र में विल्वकादि से परे छ प्रत्यय का लुक् कहा है और उसी छ प्रत्यय के संयोग से विल्वादि शब्दों को कुक् होता है। सो विल्वादि शब्दों से छ का लुक् कहदेते तो कुक् आगम की भी निवृत्ति हो जाती। इसलिये विल्वादि शब्दों को कुक् आगम के सहित पढ़ उन से परे छ प्रत्ययमात्र का लुक् कहा है। इस से सिद्ध हुआ कि आगमी की निवृत्ति में आगम की निवृत्ति होजाती है। तब कृत कुगागम विल्वकादि से छ प्रत्यय का लुक् कहा है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७५ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तदनुबन्धकग्रहणे० इस पूर्व लिखित परिभाषा के अनुकूल अण् प्रत्यय के आश्रय कार्य है वह ण प्रत्यय को मान के न होना चाहिये तो (कार्मस्ताच्छील्ये) इस सूत्र का यही प्रयोजन है कि ताच्छील्य अर्थ में ण प्रत्यय परे होता कर्मन् शब्द के टि भाग का लोप हो सो (नस्तद्धिते) सूत्र से नान्त भ संज्ञक अङ्ग के टि का लोप सिद्ध ही है तो ताच्छील्य अर्थ में (कार्मः) प्रयोग बन ही जाता फिर यह सूत्र व्यर्थ होकर इस परिभाषा का ज्ञापक है ॥

७६-ताच्छीलिके णेऽण् कृतानि भवन्ति ॥ अ० ६ । ४ । १७२ ॥

तच्छील अर्थ में विहित ण प्रत्यय के परे अण् प्रत्ययाश्रित कार्य भी होते हैं इस से यह आया कि (अन्) सूत्र से अण् प्रत्यय के परे अन्नन्त को प्रकृतिभाव कहा है सो ताच्छील्य अर्थ में ण प्रत्यय के परे अन्नन्तकर्मन् शब्द को भी प्राप्त था इसलिये (कार्मस्ताच्छील्ये) सूत्र में टिलोपनिपातन सार्थक होगया यह स्वार्थ में चरितार्थ है । अन्यत्र फल यह है कि (चुराशीलमस्याः सा चौरी, तपः शील-मस्याः सा तापसी, इत्यादि प्रयोगों में ताच्छीलिक णप्रत्ययान्तसे (टिड्ढाणञ्०) सूत्र में अणन्त से कहा ङीप् हो जाता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७६ ॥

(दाण्डिनाय०) इस सूत्र में भ्रौणहत्य शब्द निपातन किया है उस से यही प्रयोजन है कि (भ्रूणघ्नो भावः भ्रौणहत्यम्) यहां निपातन से तकारादेश होजावे सो जो (हनस्तोऽचिण्णलोः) सूत्र से ष्यञ् प्रत्यय के परे हन् के नकार को तका-रादेश होजाता तो फिर निपातन करना व्यर्थ है इसलिये यह परिभाषा है ॥

७७-धातोः कार्यमुच्यमानं तत्प्रत्यये भवति ॥ अ० ७।२।११४॥

जो धातु को कार्य कहा है वह उसी धातु से विहित प्रत्यय के परे हो अर्थात् धातु को कार्य प्रातिपदिक से विहित तद्धित के परे नहो इससे हन् धातु को कहा तकारादेश भ्रौणहत्य में प्रातिपदिक से विहित तद्धित ष्यञ् के परे नहीं हो सकता । इसलिये भ्रौणहत्य में तकारादेश निपातन करना सार्थक हुआ और अन्यत्र फल यह है कि (भ्रौणघ्नः) यहां अण् प्रत्ययके परे तकारादेश नहीं होता तथा (कंसपरिमृड्भ्याम्) यहां प्रातिपदिक से विहित विभक्ति के परे मृज् धातु को कहो वृद्धि नहीं होती(रज्जुसृड्भ्याम्,देवदृग्भ्याम्)यहां झलादि अकित् विभक्ति के परे सृज् धातु को अम् आगम नहीं होता । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं॥७७॥

(सर्वके,विश्वके,उच्चकैः,नीचकैः)यहां सर्वनाम और अव्ययसंज्ञा नहीं होनी चाहिये क्योंकि सर्वादि में सर्व विश्व शब्द और अव्ययों में उच्चैस् नीचैस् शब्दपढ़े हैं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सो जब शब्द के स्वरूप का ग्रहण होता है तो उक्त शब्दों की सर्वनाम और अव्यय-संज्ञा कैसे होगी और संज्ञा के बिना सर्वनाम और अव्यय के कार्य भी नहीं हो सकते इसलिये यह परिभाषा है ॥

७८-तदेकदेशभूतस्तद्ग्रहणेन गृह्यते ॥ अ० १ । १ । ७२ ॥

किसी के एकदेश में कोई अन्य आजावे तो वह उसी के ग्रहण से ग्रहण किया जाता है इस से यहां सर्व आदि शब्दों के मध्य में अकच् प्रत्यय आगया वह उसी के ग्रहण से ग्रहण किया गया तो सर्वनामसंज्ञा हो गई। इसी प्रकार (उच्चकैः) आदि में अव्ययसंज्ञा होना जानो। तथा (अहंपटामकि) यहां अतिङ् से परे तिङ्पद अनुदात्त भी हो जाता है। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७८ ॥

(गातिस्थाघुपा०) इस सूत्र में गाति निर्देश से तो अदादि के इण् धातु का ग्रहण होना ठीक है। परन्तु पा धातु के ग्रहण में संदेह है कि अलुक्विकरण भ्वादि और लुक्विकरण अदादि इन दोनों में से किस का ग्रहण किया जावे सो जो अदादि के पा धातु का भी ग्रहण हो तो (अपासीद्वनम्) यहां भी सिच् का लुक् हो जाना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

७९-लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्यैव ग्रहणम् ॥ अ० ७ । २ । ४४ ॥

लुग्विकरण और अलुग्विकरण के ग्रहण में जहां संदेह पड़े वहां अलुग्विकरण का ही ग्रहण होना चाहिये इस से उक्त (गातिस्था०) सूत्र में (पा पाने) अलुग्विकरण धातु का ग्रहण हो जाता है। और लुग्विकरण (पा रक्षणे) का ग्रहण नहीं होता। इस का ज्ञापक यह है कि (स्वरतिसूतिसूयति) इस सूत्र में (सूति, सूयति) दोनों के स्थान में सूङ् पढ़ते तो इन्हीं दोनों का ग्रहण हो जाता क्योंकि ये ही दोनों सूङ् हैं तीसरा नहीं परन्तु सूति लुग्विकरण अदादि और सूयति अलुग्विकरण दिवादि का है। इससे यही आया कि सामान्य सूङ् के पढ़ने से अलुग्विकरण सूयति का ग्रहण होता और सूति का नहीं होता इसलिये पृथक् २ दोनों का निर्देश किया गया है इत्यादि इसके अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७९ ॥

(हेरचङि) इस सूत्र में अभ्यास से परे हि धातु के हकार को कुत्व कहा है परन्तु वह कुत्व चङ् में न हो सो चङ् णिजन्त से होता है उस चङ् के परे हि की अङ्गसंज्ञा ही नहीं किन्तु णिच् के सहित और णिच् के परे हि की अङ्गसंज्ञा है और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अंगाधिकार में अङ्ग को कार्य का विधान वा निषेध होता है इस चङ् के परे कुत्व प्राप्त ही नहीं फिर निषेध क्यों किया इसलिये यह परिभाषा है ॥

८०–प्रकृतिग्रहणे ण्यधिकस्यापि कुत्वंभवति॥ अ० ७।३।५६॥

कुत्वप्रकरण में जहां मूलप्रकृति का ग्रहण है वहां णिच्सहित प्रकृति का भी ग्रहण हो जावे। इस से चङ् के परे निषेध सार्थक होगया और अन्यत्र फल यह है कि (प्रजिघाययिषति) यहां णिजन्त हि धातु को सन् प्रत्यय के परे कुत्व हो जाता है इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ८० ॥

(ज्यादादीयसः) इस सूत्र में जो ज्य से परे ईयसुन् प्रत्यय को आकारादेश न कहते तो भी लोप की अनुवृत्ति आकर पर के आदि ईकार का लोप होकर अकृत् यकारादि प्रत्यय के परे ज्य को दीर्घ हो के (ज्यायान्) प्रयोग सिद्ध होही जावेगा फिर आकारादेशविधान व्यर्थ होने से यह परिभाषा है ॥

८१–अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिः ॥ अ० ६ । ४ । १६० ॥

अंगाधिकार में कोई कार्य निष्पन्न हो गया होतो फिर दूसरे कार्य में प्रवृत्ति न होवे। इस से यह आया कि अंगाधिकार के एक ईयसुन्लोप कार्य होने में फिर द्वितीय कार्य दीर्घ नहीं हो सकता इसलिये पूर्वोक्त (ज्यादादीयसः) सूत्र में आकारादेश सार्थक होगया तथा (रीङ् ऋतः) यहां जो दीर्घ रीङ् न कहते तो भी (मात्रीयति) आदि में अकृत् यकारादि प्रत्यय के परे दीर्घ हो जाता फिर दीर्घ रीङ् ग्रहण का यही प्रयोजन है कि रिङ् किये पीछे दीर्घ नहीं हो सकता इसलिये दीर्घ रीङ् पढ़ना चाहिये। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८१ ॥

(परमात्मानं नमस्करोति नमस्यति वा) इत्यादि प्रयोगों में नमः शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति (नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषट्योगाच्च) इस सूत्र से होनी चाहिये सो इस समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

८२–उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी ॥ अ० २।३।१९ ॥

उपपदविभक्ति से कारकविभक्ति बलवान् होतीहै। उपपदविभक्ति वह कहाती है कि जहां कर्मादि कारक व्यवस्था से किसी निज विभक्ति का नियम न किया हो और जहां कर्मादि कारक व्यवस्था से नियत विभक्ति होती है उस को कारक विभक्ति कहते हैं सो (परमात्मने नमः, गुरवे नमः) इत्यादि में तो उपपदविभक्ति चतुर्थी हो जाती और (परमात्मानं नमस्करोति) इत्यादि में उपपदविभक्ति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

को बाध के कारकविभक्ति हो जाती है । तथा (गाः स्वामी व्रजति) यहां स्वामी शब्द के योग में उपपद विभक्ति षष्ठी सप्तमी (स्वामीश्वराधिपति०) इस सूत्र से प्राप्त है परन्तु व्रजति क्रिया में गौओं को कर्मत्व होने से द्वितीयाविभक्ति हो जाती है । इत्यादि ॥ ८२ ॥

(मिमार्जिषति) यहां (मृज्×सन्×तिप्=) इस अवस्था में बहुपेक्ष वृद्धि की अपेक्षा में अल्पापेक्ष अन्तरङ्ग होने से द्वित्व हो कर परत्व से अभ्यासकार्य होके (मिमृज्×सन्×तिप्=) इस अवस्था में इकार ऋकार दोनों को वृद्धि प्राप्त है सो जो अभ्यासकोभी वृद्धि होजावे तो ह्रस्व का अपवाद होनेसे फिर ह्रस्व नहीं होसकता तो (मिमार्जिषति) आदि प्रयोग भी सिद्ध नहीं हो सकते इसलिये यह परि० ॥

८३–अनन्त्यविकारेऽन्त्यसदेशस्य कार्यं भवति ॥ अ० ६ । १ । १३ ॥

जहां अनन्त्य और अन्त्य वर्ण के समीपस्थ दोनों वर्णों को जो कार्य प्राप्त हो वहां अन्त्य के समीपस्थ वर्ण को कार्य होना चाहिये और दूरस्थ व्यवहित पूर्ववर्ण को नहीं होवे इस से (मिमार्जिषति) में अभ्यास को वृद्धि नहीं होती तथा (अदोऽञ्चति, अदमुयङ्) यहां क्विप् प्रत्ययान्त अञ्चु धातु के परे अदस् शब्द के टि भाग को अद्रि आदेश हो कर (अदद्र्यङ्) इस अवस्था में (अदसोऽसेर्दादु दो मः) इस सूत्र से दोनों दकारों से परे उ और दकारों को मकार प्राप्त है सो इस परिभाषा से अन्त्य को होता है अनन्त्य पूर्व को नहीं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८३ ॥

(देहि, धेहि) इत्यादि प्रयोगों में जो अभ्यास का लोप होता है सो अलोन्त्यविधि मान के अन्त्य अल् का लोप होवे तो (देहि, धेहि) आदि प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकें इसलिये यह परिभाषा है ॥

८४–नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ॥ अ० १ । १ । ६५ ॥

अनर्थक शब्द को कहा कार्य अन्त्य अल् को न हो परन्तु अभ्यास विकार को छोड़ के धातु को जो द्वित्व किया जाता है उस में एक भाग अनर्थक और दोनों भाग सार्थक होते हैं क्योंकि वहां शब्दाधिक्य होने से अर्थाधिक्य नहीं हो जाता इस से अनर्थक अभ्यास का लोप अन्त्य अल् को न हुआ तो (देहि, धेहि) आदि प्रयोग सिद्ध हो गये । तथा (अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ) इस से अत् भाग को कहा पररूप इस परिभाषा के आश्रय से अन्त्य अल् को नहीं होता (घटत्×इति= घटिति, पटिति) इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८४ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैसे (ब्राह्मणश्च, ब्राह्मणी च ब्राह्मणौ, वत्सश्च वत्सा च वत्सौ) यहां स्त्री वाचक शब्द के साथ पुरुषवाची शब्द एकशेष रह जाता है वैसे (ब्राह्मणवत्सा च ब्राह्मणीवत्सश्च) यहां भी एकशेष होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

८५-प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्यसम्प्रत्ययः ॥

जहां प्रधान और अप्रधान दोनों में कार्य प्राप्त हो वहां प्रधान में कार्य होना निश्चित रहे अप्रधान में नहीं (ब्राह्मणवत्सा च ब्राह्मणीवत्सश्च) यहां स्त्रीत्व और पुंस्त्व स्वार्थ में अप्रधान और स्वस्वामिसम्बन्ध में प्रधान हैं इसलिये एकशेष नहीं होता इत्यादि । तथा लोक में भी और किसी ने किसी से पूछा कि यह कौन जाता है उसने उत्तर दिया कि राजा यद्यपि राजा के साथ सेनादि सब थे तथापि प्रधान राजा का ग्रहण होता और दो मनुष्यों का देवदत्त नाम हो तो उन में जो प्रधान होता है उसी से व्यवहार किया जाता है ॥ ८५ ॥

स्वस्रादिगण में मातृ शब्द पढ़ा है उस से ङीप् प्रत्यय का निषेध किया है सो जननीवाचक है और परिमाण अर्थात् तोलन करने वाली सामान्य स्त्री को भी मातृ कहते हैं सो दोनों का निषेध हो वा किसी एक का इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

८६-अवयवप्रसिद्धेः समुदायप्रसिद्धिर्बलीयसी ॥

अवयव की प्रसिद्धि से समुदाय की प्रसिद्धि बलवान् होती है। अवयव की प्रवृत्ति थोड़े अंश में और समुदाय की प्रवृत्ति बहुत अंश में होती है । इस कारण जननीवाचक मातृ शब्द के रूढि होने से अवयव मान कर स्वस्रादिगण से ङीप् का निषेध होजाता है और परिमाणकर्तृवाचक मातृ शब्द के यौगिक होने से समुदायवाची मान कर स्वस्रादि गण से ङीप् का निषेध नहीं होता अर्थात् परिमाणवाचक मातृपुरुष होतो (माता,मातारौ,मातारः) और स्त्री होतो(मात्री, मात्र्यौ,मात्र्यः) ऐसे प्रयोग होंगे इस परिभाषा के इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ८६ ॥

(अचि विभाषा) इस सूत्र में गॄ धातु के रेफ को लकारादेश होता है । सो जहां कण्ठवाची गलशब्द है वहां भी लत्वका विकल्पहोतोगर शब्दभी कण्ठवाचक होजावे सो नियम से विरुद्ध है क्योंकि गर शब्द केवल विष का वाची और गल शब्द कण्ठवाची है इन दोनों के अर्थ में लत्व के विकल्प से व्यभिचार होजाना चाहिये इस के समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

८७—व्यवस्थितविभाषयाऽपि कार्याणि क्रियन्ते ॥

व्यवस्थित विभाषा से भी कार्य किये जाते हैं। व्यवस्थित विभाषा उस को कहते हैं कि जिस कार्य का विकल्प किया हो वही कार्य किसी नियतार्थवाचक शिष्टप्रयुक्त शब्द में नित्य हो जावे और किसी में होही नहीं और जहां सब प्रयोगों में उस कार्य का होना न होना दोनों भेद रहें तो उस को अव्यवस्थित विभाषा कहते हैं इस से कण्ठवाची गल शब्द में नित्य लत्व हो जाता है इस के उदाहरणों की कारिका महाभाष्य की यह है कि:—

देवत्रातो गलो ग्राह इतियोगे च सद्विधिः ।

मिथस्ते न विभाष्यन्ते गवाक्षः संशितव्रतः ॥ १ ॥

(देवाश्चासौ त्रातो देवत्रातः) यहां संज्ञावाचक त्रात शब्द में (नुदविदोन्दत्रा०) इस सूत्र से निष्ठा के तकार को नकार नित्य ही नहीं होता और क्रियावाचक में तो (त्राणम्, त्रातम्) दोनों होते हैं। गल शब्द का लिख दिया। सामान्य यौगिकवाची (गरः,गलः) दोनों ही होते हैं (विभाषा ग्रहः) इस सूत्र में ग्रह धातु से ण प्रत्यय होकर (ग्राहः) प्रयोग बनता है सो यह जलजन्तु की संज्ञा है इस में नित्य ण हो जाता है। और जहां नक्षत्र आदि लोकवाची में ग्रह शब्द अच् प्रत्ययान्त होगा वहां ण नहीं होता तथा(इति) शब्द के योग में सत् संज्ञक(शतृ, शानच्) प्रत्यय विकल्प से प्राप्त भी हैं जैसे (हन्तीति पलायते, वर्षतीति धावति) यहां प्रथमासमानाधिकरण में व्यवस्थितविभाषा मान कर नित्य नहीं होते (गवाक्षः) यह झरोखा की संज्ञा है यहां गो शब्द को अवङ् आदेश विकल्प से प्राप्त है सो नित्यही हो जाता है। और जहां गौ के अक्ष नेत्र का नाम होगा वहां (गवाक्षम्, गोअक्षम्' गोऽक्षम्) ये तीन प्रयोग होजावेंगे और (संशितव्रतः) यहां (शाच्छोरन्यतरस्याम्) इस सूत्र से तादि कित् के परे शो धातु को विकल्प से प्राप्त इकारादेश नित्य होता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८७ ॥

(आशंसायां भूतवच्च) इस सूत्र में प्रिय पदार्थ की इच्छा संबन्धी भविष्यत्काल में भूतवत् और वर्त्तमानवत् प्रत्यय कहे हैं अर्थात् भूतकालिक जिस अर्थ में प्रकृति से जो प्रत्यय कहा है वह प्रत्यय उसी अर्थ में उसी प्रकृति से होना चाहिये सो सामान्यभूत में निष्ठा और लुङ् आदि होते हैं और अनद्यतनभूत में लङ् तथा परोक्षानद्यतनभूत में लिट् होता है इस में यह सन्देह है कि भूतवत् कहने से सामान्यभूतकालिक प्रत्ययों का अतिदेश होवे वा सामान्य विशेष दोनों का। इसलिये यह परिभाषा है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

८८-सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः ॥

जहां सामान्य और विशेष दोनोंका अतिदेश प्राप्त हो वहां विशेषका अतिदेश नहीं होता । इस से सामान्यभूत के अतिदेश में विशेषभूत में विहित लङ् लिट् का अतिदेश नहीं होता इत्यादि ॥ ८८ ॥

(सनाशंसभिक्ष उः) इस सूत्र में सन् धातु वा सन् प्रत्यय का ग्रहण होना चाहिये इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

८९-प्रत्ययाप्रत्यययोः प्रत्ययस्यैव ग्रहणम् ॥ अ० ६ । ४ । १ ॥

जहां प्रत्यय और अप्रत्यय दोनों का एकस्वरूप होने से ग्रहण हो सकता हो वहां प्रत्यय ही का ग्रहण हो अप्रत्यय का नहीं । इसलिये सन् धातु का ग्रहण नहीं होता किन्तु सन् प्रत्ययान्त से उ प्रत्यय होता है तथा (चिचीषति,तुष्टूषति) यहां सन् के परे अजन्त को दीर्घ होता है सो (दधि सनोति, मधु सनोति) यहां सन् धातु के परे दीर्घ नहीं होवे । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८९ ॥

(विपराभ्यां जेः) इस सूत्र में वि परा पूर्वक जि धातु से आत्मनेपद कहा है सो (परा जयति सेना) यहां सेना शब्द के विशेषण परा शब्द से परे भी आत्मनेपद होना चाहिये इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

९०-सहचरितासहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम् ॥

सहचारी और असहचारी दोनों का जहां ग्रहण होसकता हो वहां सहचारी का ही ग्रहण हो । और असहचारी का नहीं (विजयते,पराजयते) यहां आत्मनेपद होगया और (बहुविजयति वनम्, पराजयति सेना) यहां न हुआ । क्योंकि जहां वि, परा, केवल उपसर्ग हैं वहां हो । यहां बहुवि वन का और परा, सेना का विशेषण अर्थात् दोनों अनुपसर्ग हैं वहां आत्मनेपद नहीं होता । वन और सेना के विशेषण में वि और परा शब्द उपसर्ग के सहचारी नहीं हैं इस कारण वहां आत्मनेपद नहीं हुआ तथा (पंचम्यपाङ्परिभिः) यहां कर्मप्रवचनीय अप आङ् और परि के योग में पंचमी विभक्ति होती है सो वर्जनार्थ अप शब्द के साहचर्य से (वृक्षं परि विद्योतते विद्युत्) यहां लक्षण अर्थ में पंचमी विभक्ति नहीं होती । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ९० ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैसे (अहो आश्चर्यम्, उताहो इमे) इत्यादि में ओकारान्त निपात को प्रगृह्य-संज्ञा हो कर प्रकृतिभाव हो जाता है वैसे (अतिरस्तिरः समपद्यत, तिरोऽभवत्) यहां च्विप्रत्ययान्त लाक्षणिक ओकारान्त को निपातसंज्ञा होकर प्रगृह्यसंज्ञा होजावे तो प्रकृतिभाव होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

९१-लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्॥ अ०१।१।१५॥

लक्षण नाम जो सूत्रसे कार्य होकर बना हो वह लाक्षणिक और जो स्वाभाविक है वह प्रतिपदोक्त कहाता है। उन लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त के बीच में जहां संदेह पड़े वहां प्रतिपदोक्त को कार्य हो और लाक्षणिक को नहीं इस से (तिरोऽभवत्) यहां लाक्षणिक ओकारान्त निपात को प्रगृह्यसंज्ञा होकर प्रकृतिभाव नहीं होता। तथा(आशिषा तरति, आशिषिकः) यहां इस भाग के लाक्षणिक होने से (इसुसुक्तान्तात्कः) सूत्र से ठक् प्रत्यय को ककारादेश नहीं होता इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ९१ ॥

इस परिभाषा के होने में ये दोष हैं कि जो (दाधाघ्वदाप्) सूत्र से दाधा को घु संज्ञा होती है सो (देङ्रक्षणे, दोअवखण्डने, धेट् पाने) आदि की घु संज्ञा नहीं होनी चाहिये क्योंकि (डुदाञ्, डुधाञ्) प्रतिपदोक्त और देङ् आदि लाक्षणिक हैं इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

९२-गामादाग्रहणेष्वविशेषः ॥ अ० १ । १ । २० ॥

गा, मा, दा ये तीनों जिन सूत्रों में ग्रहण किये हों वहां सामान्य करके लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त दोनों का ग्रहण होता है इस से (देङ्) आदि लाक्षणिक धातुओं की भी घु संज्ञा हो जाती है (दैप्) धातु में पित् पढ़ने का यही प्रयोजन है कि जो दाप् को घु संज्ञा का निषेध है सो दै मात्र के पढ़नेसे प्राप्त नहीं था इसलिये पित् किया सो जो लाक्षणिक दै मात्र को घु संज्ञा प्राप्त ही नहीं थी तो निषेध के लिये पित् क्यों पढ़ा। इस से यह आया कि लाक्षणिक को भी घु संज्ञा होती है (घुमास्थागापाजहातिसां हलि) यहां मा करके मेङ् आदि को भी ईकारादेश होता है (मीयते, मेमीयते) इत्यादि गा करके गै आदि भी लिये जाते हैं (गीयते, जेगीयते) इङ् धातु के स्थान में जो गाङ् आदेश होता है उस का भी ग्रहण होता है जैसे (अध्यगीष्ट, अध्यगीषाताम्) इत्यादि बहुत प्रयोजन हैं ॥ ९२ ॥

(वृद्धिरादैच्) सूत्र में आ,ऐ, औ, इन तीनों की वृद्धिसंज्ञा होती है। इस में यह संदेह होता है कि जो तीनों वर्णों को एक साथ वृद्धिसंज्ञा होजावे तो(कारकः) आदि में एक साथ तीनों वर्ण वृद्धि होने चाहिये। इसलिये यह परिभाषा है ॥

९३-प्रत्यवयवं वाक्यपरिसमाप्तिः ॥ अ० १ । १ । १ ॥

वाक्य की समाप्ति प्रत्येक अवयव के साथ होती है अर्थात् जहां समुदाय को

For Private And Personal Use Only

कार्य कहा है वहां वाक्यस्थ क्रिया जब प्रत्येक अवयव के साथ सम्बन्ध करलेतीहै तब उस को पूर्णवाक्य कहते हैं। जैसे किसी ने कहा कि (देवदत्तयज्ञदत्तविष्णुमित्रा भोज्यन्ताम्) यद्यपि यहां यह नहीं कहा कि देवदत्त, यज्ञदत्त और विष्णुमित्र को पृथक् २ भोजन कराओ तथापि भोजन क्रिया प्रत्येक के साथ सम्बन्ध रखती है इसी प्रकार यहां आ, ऐ, औ को वृद्धिसंज्ञा पृथक् कही है इसी से प्रत्येकवर्ण के साथ वृद्धि का सम्बन्ध पृथक् २ रहता है ऐसे ही गुण आदि संज्ञा भी प्रत्येक की होती है ॥ ८३ ॥

अब इस पूर्वोक्त परिभाषा से यह दोष आया कि जो (हलोऽनन्तराः संयोगः) यहां प्रत्येक वर्ण की संयोगसंज्ञा रहे तो (निर्यायात्, निर्वायात्) यहां या, वा धातु को संयोगादि मान कर (वान्यस्य संयोगादेः) इस सूत्र से एकारादेश होना चाहिये इत्यादि अनेक दोष आवेंगे। इसलिये यह परिभाषा है ॥

९४-समुदाये वाक्यपरिसमाप्तिः ॥ अ० १ । १ । ७ ॥

कहीं ऐसा भी होता है कि समुदाय में वाक्य की परिसमाप्ति होवे अर्थात् वाक्यस्थ क्रिया का केवल समुदाय के साथ सम्बन्ध रहे। और प्रत्येक अवयव के साथ पृथक् २ संबन्ध न होवे जैसे राजा ने आज्ञा किई कि (गर्गाःशतन्दण्ड्यन्ताम्) यहां गर्गों पर सौ रुपये दण्ड कहा तो उन में प्रत्येक पर सौ२ दण्ड किया जावे वा समुदाय पर तो जैसे समुदाय पर एक दण्ड होताहै वैसे ही समुदित हलों की संयोगसंज्ञा होती है। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८४ ॥

(वृद्धिरादैच्) सूत्र में आ, ऐ, औ, इन तीन दीर्घ वर्णों की वृद्धिसंज्ञा की है फिर आकार तपर क्यों पढ़ा क्योंकि सवर्णग्रहणपरिभाषा से अक्षरसमाम्नाय का ही अण् सवर्णग्राहक है परन्तु जो अक्षरसमाम्नाय में ह्रस्व पढ़ते हैं उन्हीं का ग्रहण होगा दीर्घों का नहीं फिर दीर्घ से सवर्णग्रहण की प्राप्ति ही नहीं और तपरकरण का यही प्रयोजन होता है कि तपर से भिन्न कालिक सवर्णों का ग्रहण न हो। इस के समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

९५-भेदका उदात्तादयः ॥ अ० १ । १ । १ ॥

जिस वर्ण के साथ जो उदात्तादिगुण लगताहै वह उसको स्वभावसे भिन्न कर देताहै परन्तु कालभेद नहीं होता दीर्घउदात्त, दीर्घ अनुदात्त, दीर्घ स्वरित इन में काल का तो भेद नहीं परन्तु उच्चत्व, नीचत्व, समत्वआदिका भेदहै सो जो आकार को तपर न पढ़ते तोभी अभेदकों का ग्रहण होही जाता फिर तपर से यही प्रयोजन है कि भिन्नधर्मवाले तात्कालिक उदात्तादि का भी ग्रहण होजावे इसलिये आकार में तपरकरण सार्थक हुआ तथा अन्यत्रभी दीर्घवर्णों को तपरपढ़ने का यही प्रयोजन है। और लोक में भी उदात्तादिका भेद दीखपड़ता है जैसेकोई

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विद्यार्थी उदात्त के स्थान में अनुदात्त बोले तो अध्यापक उसको शासन करता है कि तू अन्यथा क्यों बोलता है। सो जो उदात्तादिमें भेद नहीं होता तो शासन भी नहीं बन सकता। और यह भी दृष्टान्त है कि एकजल शीत, उष्ण और खारी आदि भेदक गुणों के होनेसे भिन्न२ होजाता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥८५॥

इस पूर्वोक्त विषय में ऐसे भी दृष्टान्त मिलते हैं कि एक देवदत्त बालक युवा वृद्ध आदि अवस्था गुणों और मुण्ड जटिल आदि गुणों से वही बना रहता है कोई भिन्न नहीं होजाता। इस से यह भी आया कि गुण अभेदक हैं और (यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च) इस सूत्र में यासुट् को उदात्त न कहते किन्तु उस को उदात्त ही पढ़ देते तो उदात्तादि गुणों के भिन्न२ होनेसे उदात्तके पढ़ने में अनुदात्त होही नहीं सकता फिर उदात्तग्रहण व्यर्थहुआ इसलिये यह परिभाषा है॥

८६–अभेदका गुणाः॥ अ० १ । १ । १ ॥

उदात्तादि गुण अभेदक होते हैं अर्थात् गुणी के स्वरूप को कुछ भी नहीं बदल सकते। इसीलिये (अच्छिद्धि॰) इत्यादि सूत्रों में उदात्त वा अनुदात्त पढ़ा है जो उदात्तादि शब्दों से उदात्त नहीं पढ़ते तो अभेदक होने से विशेष गुणोंका ज्ञान नहीं होता इस से उदात्तादि शब्दों का पढ़ना सार्थक होगया। इन गुणों के अभेदक पक्ष में दीर्घों को तपर पढ़ने का द्वितीय समाधान है (आदैच्) यहां तो आकारके तपर पढ़ने का यही प्रयोजन है कि तकार से परे ऐ औ तपर माने जावें तो (महा ओजाः, महौजाः) यहां चार मात्रिक स्थानी के स्थान में चार मात्राओं का आदेश भी प्राप्त होताहै सो नहो किन्तु द्विमात्रिक ही(ए,ऐ,ओ,औ) आदेश होवें इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं इन दोनों में गुणों का अभेदकपक्ष ही बलवान् है ॥ ८६ ॥

(सर्वादीनि सर्वनामानि) इस सूत्र में सर्वनामशब्द में णत्वनिषेध निपातन किया है सो उस को सूत्र में चरितार्थ हो जाने से लौकिकप्रयोगविषय में सर्वनाम शब्द को णत्व होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

८७–बाधकान्येव हि निपातनानि ॥अ०१ । १।२७ ॥

जिस अप्राप्त कार्य का विधान वा प्राप्त का निषेध निपातन से करदिया हो वह सर्वथा बाधक होजाता है फिर वह वैसा ही प्रयोगकाल में भी रहेगा। इस से सर्वनाम आदि शब्दों में णत्वनिषेध आदि कार्य सिद्ध होजाते हैं ॥ ८७॥

(स्यन्त्स्यति) इस स्यन्दू धातु के प्रयोग में इट् का विकल्प अन्तरङ्ग और निषेध बहिरङ्ग है सो जो अन्तरङ्गकार्य करने में बहिरङ्ग असिद्ध माना जावे तो परस्मैपद में भी इट्का विकल्प होना चाहिये। इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

९८—प्रतिषेधाश्च बलीयांसो भवन्ति ॥अ० १ । १ । ६३॥

पर, नित्य और अन्तरङ्ग से भी प्रतिषेध बलवान् होते हैं इस से अन्तरङ्ग भी इट्विकल्प को बाध के नित्य प्राप्त इट् का निषेध होजाता है इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ९८ ॥

(अइउण्) आदि प्रत्याहार सूत्रों में जो (ण् क्) आदि अनुबन्ध पढ़े हैं उनका अच् के ग्रहण से ग्रहण किया जावे तो (दधि णकारीयति, जरीकरोति) इत्यादि में णकार ककार के परे इकार ईकार को यणादेश होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

९९—सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्बलीयान् ॥

सब विधियों से लोपविधि बलवान् होती है । इस से (णक्) आदि अनुबन्धों का प्रत्यहार की प्रवृत्ति से पहिले ही लोपहोजाता है फिर अच्में णकार ककार के न रहने से (दधि णकारीयति, जरीकरोति) आदि में यणादेश नहीं होता । इत्यादि । और लोक में भी यही रीति है कि किसी का मृत्यु आजावे तो सब कामों का बाधक होजाता है । अर्थात् अदर्शन अग्रहण होता है ॥ ९९ ॥

(अर्थं प्रत्याययति स प्रत्ययः) जो अर्थ का निश्चय करावे वह प्रत्यय कहाता है इस अर्थ के न होने से केवल स्वार्थ में विहितों को प्रत्ययसंज्ञा नहीं होवे इस-लिये यह परिभाषा है ॥

१००—अनिर्दिष्टार्थाश्च प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति ॥अ० ३।२।४ ॥

जिन प्रत्ययों की उत्पत्ति में कोई विशेष अर्थ नियत न किया हो वे स्वार्थ में हों अर्थात् प्रकृत्यर्थ के सहायक और बोधक रहें । इसी से वे प्रत्यय कहावें जैसे (गुप्तिज्किद्भ्यः सन्, यावादिभ्यः कन्) इत्यादि प्रत्यय स्वार्थ में होते हैं(जुगु-प्सते, यावकः)इत्यादि ॥ १०० ॥

(सुपिस्थः)इस सूत्र से कर्त्तामें प्रत्यय होते हैं इसलिये (आखूनामुत्थानमा-खूत्थः) इत्यादि प्रयोगों में भाव में क प्रत्यय नहीं हो सकता इसलिये यह प-रिभाषा है ॥

१०१—योगविभागादिष्टसिद्धिः ॥

जहां इष्टकार्य की सिद्धि न हो वहां योगविभाग करना चाहिये। और योग-विभाग कर के इष्टकार्य साधलेना अनिष्ट नहीं होने देना (सुपि) इतना पृथक् सूत्र किया तो यह अर्थ हुआ कि सुबन्तउपपद होतो आकारान्त धातुसे कप्रत्यय हो इस से (कच्छेन पिबति कच्छपः, कटाहपः, द्वाभ्यां पिबति द्विपः) इत्यादि प्रयोग सिद्धहुये पीछे (स्थः)इतना पृथक् किया तो यह अर्थ हुआ कि स्था धातु से सुबन्त उपपद होतो क प्रत्यय हो यहां योगविभाग करके कर्त्ता से हटाया तो स्वार्थ भाव में आखूत्थ आदि प्रयोग सिद्ध होगये।इसीप्रकार सर्वत्र जानो॥१०१॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लाघव गौरव का विचार सर्वत्र रहता है कि। जहां तक हो थोड़ा वचन पढ़के बहुत अर्थ निकालना परन्तु ॥

१०२-पर्यायशब्दानां लाघवगौरवचर्चा नाद्रियते ॥

पर्याय शब्दों में थोड़े बहुत होने का विचार नहीं करते कि जहां थोड़े वचन से काम चल सकता है तो उस का पर्याय अधिक अक्षर का शब्द न पढ़ना जैसे (अन्यतरस्याम्, विभाषा, वा उभयथा) इत्यादि एकार्थ शब्दों में किसी को पढ़ दिया यह नियम नहीं कि इतना अधिक क्यों पढ़ा इत्यादि ॥ १०२ ॥

जो ज्ञापकरूप परिभाषाओं से कार्य सिद्ध होते हैं वहां सर्वत्र ज्ञापकसिद्ध की प्रवृत्ति नहीं होती इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०३-ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र ॥

जैसे अर्थवान् और अनर्थक के ग्रहण में ज्ञापकसिद्ध परिभाषा से अर्थवान् को कार्य होता है सो अन्नन्त को कहा कार्य क्वनिन् प्रत्यय के परे सार्थक अन् को और मन् प्रत्यय के निरर्थक अन् को भी होते हैं ॥ १०३ ॥

त्रिपादी में हुआ कार्य सपादसप्ताऽध्यायी में असिद्ध माना जाता है सो (द्रोग्धा, द्रोग्धा, द्रोढा, द्रोढा) यहां त्रिपादिस्थ (वा द्रुहमुह०)सूत्र से हकार को घ और ढ आदेश होते हैं सो जो द्वित्व करने में उस घ को असिद्ध मानें तो द्वित्व के एकभाग में घ और द्वितीय भाग में ढ आदेश रहना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०४-पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने ॥ अ० ८ । १ । १ ॥

त्रिपादी का कार्य द्वित्व करने में असिद्ध न माना जावे इस से (द्रोग्धा द्रोग्धा) आदि में ढत्व नहीं होता तथा(नुन्नं नुन्नम्, नुत्तं नुत्तम्) यहां भी द्वित्व के एक भाग में न और एक में तकार प्राप्त है सो नहो इत्यादि ॥ १०४ ॥

जैसे (गोषु स्वाम्यश्वेषु च) यहां एक स्वामी शब्द के योग में दोनों भिन्नाकृति शब्दों में एकाकृति सप्तमी विभक्ति होती है वैसे गो शब्द में सप्तमी और अश्व में षष्ठी विभक्ति क्यों नहीं होती इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०५-एकस्या आकृतेश्चरितः प्रयोगो द्वितीयस्यास्तृतीयस्याश्च न भवति ॥ अ० १ । ३ । ३९ ॥

जहां एक आकृति का प्रयोग चरितार्थ होता है वहां द्वितीय वा तृतीय अन्यार्थ सम्भव कारक का प्रयोग नहीं होता इस से वहां अश्व शब्द में षष्ठी नहीं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होसकती क्योंकि एकाकृति सप्तमीविभक्ति का चरितार्थ है और षष्ठी के होने से भिन्नार्थ भी सम्भव होजावे ॥ १०५ ॥

(विव्याध)इत्यादि प्रयोगोंमें परत्वसे(हलादिःशेषः)इस सूत्रसे अभ्यासके यकार का लोप होजावे तो वकारको संप्रसारण प्राप्त होताहै इसलिये यह परिभाषाहै ॥

१०६-संप्रसारणं संप्रसारणाश्रयं च कार्यं बलीयो भवति अ० १ । १ । १७ ॥

जो संप्रसारण और संप्रसारण के आश्रय कार्य हैं वे दोनों बलवान् होते हैं इस से (हलादिः शेषः) सूत्र से प्राप्त परलोप को भी बाध के प्रथम यकार को संप्रसारण होगया तो फिर (विव्याध) आदि प्रयोग बन गये। तथा (जुहुवतुः, जुहुवुः) यहां संप्रसारण और ह्वा धातु के आकार का अजादि आर्द्धधातुक के परे लोप भी प्राप्त है परत्व से लोप होना चाहिये बलवान् होने से संप्रसारण हो जाता है और संप्रसारण हुये पीछे भी आकारलोप तथा संप्रसारणाश्रय पूर्वरूप भी प्राप्त है परत्व से आकारलोप होना चाहिये बलवान् होने से संप्रसारणाश्रय पूर्वरूप हो जाता है। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ १०६ ॥

जब शुक्ल नील आदि गुणवाचकशब्द अपने केवल गुणवाचकपन अर्थात् स्वतन्त्र अर्थ में पुल्लिङ्गादि किसी विशेष लिङ्ग वा एकत्वादि वचन का आश्रय करने से नहीं प्रतीत होते पुनः जब इन का द्रव्य के साथ समानाधिकरण हो तब कौन लिङ्ग वचन इन में होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०७-गुणवचनानां हि शब्दानामाश्रयतो लिङ्गवचनानि भवन्ति ॥ अ० १ । २ । ६४ ॥

गुणवाची शब्द जिस द्रव्य के आश्रित हों उस द्रव्यवाचकशब्दके जो लिङ्ग वचन हों वे ही गुणवाचक शब्द के भी हो जावें जैसे। शुक्लं वस्त्रम्। शुक्ला शाटी। शुक्लः कम्बलः। शुक्लौ कंबलौ। शुक्लाः कम्बलाः॥ इत्यादि इसी प्रकार सर्वत्र जानो॥१०७॥

जैसे। कष्टं श्रितः, कष्टश्रितः। इत्यादि में समास हो जाता है वैसे। महत् कष्टं श्रितः। यहां भी समास होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०८-सापेक्षमसमर्थं भवति ॥ अ० २ । १ । १ ॥

जो पद विशेष्यविशेषणभाव से द्वितीय पद के साथ सम्बन्ध रखता हो वह सापेक्ष होने से समास होने में असमर्थ कहाता है उस का समास नहीं हो सकता। इस कारण महत् शब्द विशेषण के साथ कष्टसापेक्ष होने से पर के साथ समास को प्राप्त नहीं होता तथा (भार्या राज्ञः पुरुषो देवदत्तस्य) यहां

For Private And Personal Use Only

भार्या के साथ राजन् शब्द सापेक्ष विशेषण और देवदत्त विशेषण के साथ पुरुष सापेक्ष है इसलिये राजन् और पुरुष दोनों के परस्पर असमर्थ होने से समास नहीं होता । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ १०८ ॥

(परीयात्, अतीयात्) यहां परि—इयात् । दो इकार को दीर्घ एकादेश हुआ है सो जो अन्तादिवत् मानें तो (एतेर्लिङि) सूत्र से उपसर्गों से परे इण् धातु को ह्रस्व प्राप्त है इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०९–उभयत आश्रयेनान्तादिवत् ॥ अ० ६ । १ । ८५ ॥

पूर्व पर के स्थान में जो एकादेश हुआ हो वह पूर्व पर दोनोंके आश्रयकार्यकी प्राप्ति में अन्तादिवत् न हो इस से (परीयात्, अतीयात्) आदि में ह्रस्व नहीं होता । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ १०९ ॥

जो टित्, कित्, मित् आगम होते हैं उन में किसी टकारादि अनुबन्ध से कोई उदात्तादि विशेष स्वर का विधान नहीं किया है वहां क्या स्वर होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

११०–आगमा अनुदात्ता भवन्ति ॥ अ० ३ । १ । ३ ॥

टित् आदि आगम अनुदात्त होते हैं । यद्यपि यह बात है कि अर्थवत आगम इस परिभाषा के अनुकूल जो प्रत्यय वा प्रकृति का स्वर है वही आगम का भी हो तो एक पद में दो स्वर नहीं रहते इसलिये (भविता) इत्यादि में आगम भी अनुदात्त विधान किये हैं इस में ज्ञापक यह है कि (यासुट् परस्मैपदेषूदा०) इस सूत्र में उदात्तादि करने का यही प्रयोजन है कि आगम सब अनुदात्त होते हैं इस से उदात्त प्राप्त नहीं था और जो प्रत्यय को आद्युदात्त स्वर होता है वह आगम को नहीं प्राप्त था इसलिये उदात्त कहा इत्यादि ॥ ११० ॥

गुप्,तिज्, कित्,मान आदि धातुओंसे स्वार्थ में सन् प्रत्यय होता है उस सन् के नित्य होने से प्रथम गण में शुद्ध प्रयोग नहीं होता तो यह सन्देह होताहै कि इन से आत्मनेपद हो वा परस्मैपद हो जो सन्नन्त से पहिले कोई पद विधान होता हो वह (पूर्ववत्सनः) इस सूत्र से सन्नन्त से भी होजाता सो तो नहीं होता और सन्नन्तों में कोई विशेष अनुबन्ध भी नहीं है इसलिये यह परिभाषा है ॥

१११–अवयवे कृतं लिङ्गं तस्य समुदायस्य विशेषकं भवति यं समुदायं सोऽवयवो न व्यभिचरति ॥ अ० ३ । १ । ५ ॥

अवयव में किया हुआ चिन्ह उस समुदाय का विशेषक होता है कि जिस को वह अवयव फिर न छोड़ देवे । इस से यह आया कि जिन गुप् आदि धातुओं में

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जो अनुदात्तेत् चिन्ह किया है उन का सन् के विना कहीं पृथक् प्रयोग भी नहीं होता इसलिये गुप् आदि धातुओं का अनुदात्तेत् सन्नन्त का विशेषक हो के अर्थात् गुप् आदि सन्नन्तों को भी अनुदात्तेत् मान कर आत्मनेपद हो (जुगुप्सते, मीमांसते) यहां आत्मनेपद हो गया और जुगुप्सयति वा जुगुप्सयते मीमांसयति, वा मीमांसयते यहां णिजन्त समुदाय को णिच् छोड़ देता है इसलिये परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं तथा पण धातु अनुदात्तेत् है उस के (पणायति) प्रयोग में आय प्रत्ययान्त सेपरस्मैपद ही होता है क्योंकि आत्मनेपद तो व्यवहार अर्थ में और एकपक्ष में आर्द्धधातुक विषय में चरितार्थ है(शतस्य पणते) पणायांचकार। पेणे। पेणाते। और आय प्रत्ययान्त समुदाय को पण छोड़ भी देता है। इसलिये आय प्रत्ययान्त से आत्मनेपद नहीं होता और लोक में भी बैल को किसी अवयव में दाग देते हैं तो वह चिन्ह उस बैल का विशेषक हो जाता है कि यह अङ्कित बैल है उसी अवयव का और सब साथ के बैलों का भी विशेषक नहीं होता ॥ १११ ॥

(अपृक्त एकाल् प्रत्ययः) इस सूत्र में एकग्रहण का यही प्रयोजन है कि (दर्विः, जागृविः) यहां वि प्रत्यय की अपृक्तसंज्ञा नहीं सो जो एकग्रहण न करते और अल् प्रत्यय कहते तो भी अनेकाल् में नहीं होती फिर एकग्रहण व्यर्थ हुआ इस से यह ज्ञापकसिद्ध परिभाषा निकली ॥

११२—वर्णग्रहणे जातिग्रहणम् ॥ अ० १ । २ । ४१ ॥

वर्ण के ग्रहण में वर्णजाति का ग्रहण होता है इस से एकग्रहण तो सार्थक होगया क्योंकि अल्मात्र पढ़ते तो जातिग्रहण होने से अनेक अलों का ग्रहण होजाता फिर एकग्रहण से नहीं हुआ और (धीप्सति, धिप्सति) यहां दम्भ धातु के दो हलों में भी हल्जाति मानकर (हलन्ताच्च) सूत्र से इक् समीप हल् मान के सन् प्रत्यय कित् होजाता है। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ११२ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुतविरजानन्द सरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचिते वेदाङ्गप्रकाशे दशमोऽष्टाध्याय्यांनवमश्च पारिभाषिको ग्रन्थोऽलङ्कृतिमगात् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra | www. kobatirth.org | Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वैदिकयन्त्रालय अजमेर के पुस्तकों का सूचीपत्र
और संक्षिप्त नियम।

(१) मूल्य रोक भेज कर मंगावें (२) रोक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २०) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जांयगे (३) डाकमहसूल वेदभाष्य छोड़ कर सब से अलग लिया जायगा ५) रु० इस से अधिक के पुस्तक ग्राहक की आज्ञानुसार रजिस्टरी भेजे जाँयगे (४) मूल्य नीचे लिखे पते से भेजें और पता तथा आशय स्पष्ट लिखें॥

ऋग्वेदभाष्य अं० १—१४७	४८)	
यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण	२८)	

	मू०	डा०
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका		
विना जिल्द की	२)	=)
" जिल्द की	३॥)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	-)	)॥
सन्धिविषय	।=)॥	)॥
नामिक	।=)॥	)॥
कारकीय	।-)॥	)॥
सामासिक	।=)॥	)॥
स्त्रैणताद्धित	१=)	-)
अव्ययार्थ	-)॥	)॥
सौवर	=)॥	)॥
आख्यातिक	१॥)	=)॥
पारिभाषिक	=)॥	)॥
धातुपाठ	।=)	)॥
गणपाठ	।-)	)॥
उणादिकोष	॥=)	-)
निघण्टु	।=)	)॥
अष्टाध्यायी मूल	।-)॥	
संस्कृतवाक्यप्रबोध	=)	)॥
हवनमन्त्र	)॥।	)॥
व्यवहारभानु	=)	)॥
भ्रमोच्छेदन	)॥।	)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥	)॥
मेलाचांदापुर	-)	)॥
आर्योद्देश्यरत्नमाला	-)	)॥
गोकरुणानिधि	-)	)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन गुजराती	)॥	)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	=)	)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	)॥
शास्त्रार्थ फीरोजाबाद	=)	)॥
शास्त्रार्थकाशी	-)	)॥
आर्य्याभिविनय	।)	)॥
" जिल्द की	।=)	-)
वेदान्तिध्वान्तनिवारण	-)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	-)।	)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	=)॥	)॥
" जिल्द की	।-)॥	-)
आर्य्यसमाज के नियमोपनियम	)।	)॥
सत्यार्थप्रकाश	२)॥	=)॥
संस्कारविधि	१॥)	-)

मेनेजर—वैदिकयन्त्रालय—अजमेर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

चतुर्दशो भागः ॥

ग ण पा ठः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्याम्

एकादशो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां चतुर्दशं पुस्तकम् ।

वैदिक यन्त्रालय अजमेर

में मुद्रित हुआ

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

इस की रजिस्टरी कराई गई है ॥

दूसरी बार १००० } संवत् १९५५ वि० { मूल्य ।-)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथ गणानां सूचीपत्रम् ॥

गणाः	पृ०	पं०
अ		
अक्षद्यूतादयः	३६	१९
अङ्गुल्यादयः	४७	२६
अजादयः	१४	९
अजिरादयः	५४	५
अध्यात्मादयः	३२	१६
अनुप्रवचनादयः	४०	८
अनुशातिकादयः	६९	३
अपूपादयः	३८	१२
अर्द्धर्चादयः	६	११
अर्शआदयः	४६	११
अरीहणादयः	२६	८
अश्मादयः	२७	६
अश्वादयः	२०	१
अंश्वादयः	५३	१९
अश्वादयः	३९	२
अश्वपत्यादयः	१७	४
आ		
आकर्षादयः	४४	१६
आचितादयः	६३	५
आहिताग्न्यादयः	८	४
उ		
उक्थादयः	२५	१

गणाः	पृ०	पं०
उञ्छादयः	५०	१६
उत्करादयः	२८	२१
उत्सादयः	१७	४
उत्संगादयः	३६	१०
उद्गात्रादयः	४२	६
उपकादयः	१२	७
उरःप्रभृतयः	५०	४
ऊ		
ऊर्यादयः	३	५
ऋ		
ऋगयनादयः	३२	५
ऋश्यादयः	२६	१८
ऐ		
ऐषुकार्यादयः	२४	१७
क		
कच्छादयः	३१	४
कडारादयः	८	११
कण्वादयः	३०	६
कठ्यादयः	२९	११
कथादयः	३७	१९
कर्क्यादयः	५२	८

For Private And Personal Use Only

गणानां सूचीपत्रम् ॥

गणाः	पृ०	पं०
वर्णादयः	२८	१२
कर्णादयः	४३	१२
कल्याण्यादयः	२१	१३
कंबोजादयः	२३	६
कस्कादयः	५६	५
क्रत्वादयः	५२	१५
क्रमादयः	२५	६
कार्त्तकौजपादयः	५१	४
काशादयः	२६	२६
काश्यादयः	३०	११
काष्ठादयः	५५	१६
किशरादयः	३७	४
किंशुलादयः	५४	१०
कुब्जादयः	१८	८
कुम्भपदीप्रभृतयः	५०	७
कुमुदादयः	२८	६
कुमुदादयः	२६	२२
कुर्वादयः	१२	३
कुलालादयः	३४	६
क्षुभ्नादयः	५६	२२
कृतापकृतादयः	५	२१
कृशाश्वादयः	२६	१४
कोटरादयः	५४	१०
क्रोडादयः	१६	७
क्रौड्यादयः	१६	२१
ख		
खण्डिकादयः	२३	२२
ग		
गम्यादयः	१३	१३
गर्गादयः	१९	१३
गवादयः	३८	४
गवाश्वप्रभृतयः	८	२१
गहादयः	३१	१०
गुडादयः	३७	२४
गृष्ट्यादयः	२१	१८
गोपवनादयः	११	१५
गोषदादयः	४४	१०
गौरादयः	१५	७
गौरादयः	५३	२४
घ		
घोषादयः	५२	१
च		
चतुर्वर्णादयः	४१	२०
चादयः	२	११
चिहणादयः	५२	१८
चूर्णादयः	५२	२३
छ		
छत्रादयः	३७	९
छेदादयः	३९	१३
त		
तत्त्वादयः	३३	२१
तारकादयः	४३	१७

गणाः	पृ०	पं०	गणाः	पृ०	पं०
तालादयः	३४	१	**प**		
तिककितवादयः	१२	१	पक्षादयः	२७	१७
तिकादयः	२२	१३	प्रगदिन्नादयः	२७	२७
तिष्ठद्गुप्रभृतयः	४	७	प्रकृत्यादयः	८	१६
तुन्दादयः	४६	७	प्रज्ञादयः	४९	११
तृणादयः	२७	१	प्रतिजनादयः	३७	१४
तौल्वल्यादयः	१०	२२	परिमुखादयः	३२	१४
द			पर्पादयः	३५	२३
दण्डादयः	३९	१८	पर्श्वादयः	४८	१३
दधिपयआदयः	९	३	पलद्यादयः	२९	२३
दामन्यादयः	४८	७	पलाशादयः	३४	१७
दासीभारादयः	५१	१८	प्लक्षादयः	३५	११
द्वारादयः	५४	२२	प्रवृद्धादयः	५३	९
दिगादयः	३२	२६	पात्रेसम्मितादयः	४	२१
द्विदण्ड्यादयः	४९	१९	पामादयः	४५	१६
दृढादयः	४०	२१	पाशादयः	२४	४
देवपथादयः	४७	१२	प्रादयः	३	८
ध			पिच्छादयः	४५	१९
धूमादयः	३०	१९	प्रियादयः	५४	४
न			पील्वादयः	४३	११
नडादयः	१८	१३	पुरोहितादयः	४१	२४
नडादयः	३९	७	पुष्करादयः	४७	१
नद्यादयः	२९	१६	पृथ्वादयः	४०	१४
न्यङ्क्वादयः	५५	९	प्रेक्षादयः	२७	३
निरुदकादयः	५३	१३	पैलादयः	१०	१५
			ब		
निष्कादयः	३८	१८	बलादयः	२७	१५

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गणाः	पृ०	पं०
बलादयः	४७	७
ब्राह्मणादयः	४१	४
बिदादयः	१९	४४
बिल्वादयः	३४	१२
ब्रीह्यादयः	४६	१
भ		
भर्गादयः	२३	११
भस्त्रादयः	३६	१४
भिक्षादयः	२२	१७
भिदादयः	१३	१८
भीमादयः	१५	२
भृशादयः	१३	३
भौरिक्यादयः	२४	१९
म		
मध्वादयः	२८	१६
मनोज्ञादय :	४३	३
मयूरव्यंसकादयः	६	८
महिष्यादयः	३६	२४
मालादयः	५२	१२
य		
यवादयः	५५	२२
यस्कादयः	११	६
याजकादयः	७	८
यावादयः	४८	२४
युक्तारोह्यादयः	६१	२२
युवादयः	४२	१७
यौधेयादयः	२३	१२
यौधेयादयः	४८	१५
र		
रजतादयः	३५	६
रसादयः	४४	२३
राजदन्तादयः	७	१४
राजन्यादयः	२४	९
रेवत्यादयः	२१	२३
ल		
लोमादयः	४५	१६
लोहितादयः	१३	९
व		
वनस्पत्यादयः	५२	२७
वरणादयः	२८	११
वराहादयः	२८	३
वंशादयः	३९	८
वसंतादयः	२५	१०
वह्लादयः	१५	२२
व्याघ्रादयः	५	१०
वाकिनादयः	१	२३
वाह्लादयः	१७	१९
विनयादयः	४९	५
विमुक्तादयः	४४	३
व्युष्टादयः	३९	२२
वृषादयः	६०	२६
वेतनादयः	३६	४

For Private And Personal Use Only

गणाः	पृ०	पं०
श		
शण्डिकादयः	३३	१३
शर्करादयः	४७	२१
शरादयः	३४	२२
शरादयः	५४	१८
शाकपार्थिवादयः	६	३
शाखादयः	४७	१७
शार्ङ्गरवादयः	१६	१३
शिवादयः	२०	१३
शुण्डिकादयः	३३	८
शुभ्रादयः	२१	१
श्रेण्यादयः	५	१५
शौण्डादयः	४	१७
शौनकादयः	३३	२७
स		
संकलादयः	२५	१६
संकाशादयः	२७	१२
सख्यादयः	२७	८
संतापादयः	४०	१
संधिवेलादयः	३१	२१
संपदादयः	१३	२३
सर्वादयः	१	६
सवनादयः	५६	१७
स्वरादयः	१	१३
स्वस्रादयः	१५	३
साक्षात्प्रभृतयः	३	२२
स्वागतादयः	५४	२६
सिध्मादयः	४५	४
सिध्वादयः	३३	१६
सुखादयः	४६	१६
सुतंगमादयः	२७	२[illegible]
सुवास्त्वादयः	२५	२[illegible]
सुषामादयः	५६	१
स्थूलादयः	४८	१
ह		
हरीतक्यादयः	३५	१
हस्त्यादयः	५०	४

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भूमिका ।

इस पुस्तक का नाम गणपाठ इस लिये है कि एकत्र मिला के बहुत २ शब्दों का समुदाय पठित है । यह पुस्तक पाणिनि मुनि जी का बनाया है इस के कार्य्यकर अष्टाध्यायी के सूत्र हैं यद्यपि काशिकादि पुस्तकों में तत्तत् सूत्र पर गणपाठ भी छप गया है तथापि बीच २ सूत्रों के दूर २ होने से गण भी दूर २ हैं इस से कण्ठस्थ करना विचारना वा अनुवृत्तिकरना कठिन होता था इस लिये उस २ गणकार्य सूत्र को सार्थक लिख कर एक दो उदाहरण देके जहां २ एक ऐसा (:–) चिन्ह बना के लिखा है वहां २ से गण पाठ का आरम्भ समझना चाहिये और जिस २ शब्द की विशेष व्याख्या अपेक्षित थी उस २ पर एक आदि अङ्क लिख और रेखा देकर नीचे विवरण (जिस को नोट कहते हैं) लिखा है । उस को भी यथायोग्य समझ लेना चाहिये इन के अर्थ अष्टाध्यायी निरुक्त निघण्टु और उणादिकोष तथा प्रकृति प्रत्ययादि की ऊहा से समझ लेना योग्य है । यद्यपि भ्वादि और उणादि भी एक २ सूत्र पर गण हैं तो भी उन के बड़े और विलक्षण (१) होने से पृथक् श्रीपाणिनि मुनि जी ने लिखे हैं और सूत्र के समान वार्त्तिक गण हैं उन को भी वार्त्तिक के आगे लिख दिया है जो साधारणता से व्याकरण के बोध युक्त हैं वे भी इन का रूप और अर्थ पढ़ पढ़ा सकते हैं ॥

अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमणिषु ॥

स्थान महाराणाजी का उदयपुर
मिति माघ शुक्ला १० सं० १९३९

दयानन्द सरस्वती

---

(१) भ्वादि धातु अनुबन्ध सहित और उणादि में प्रकृतिप्रत्ययसाधुत्व पूर्वक लेख है और सर्वादि में सिद्ध शब्दों का पाठ अनुक्रम से है इसी लिये उन दोनों गणों से यह और इस से वे पृथक् २ रक्खे हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

ओ३म्

अथ गणपाठः ।

——(0)——

१—सर्वादीनि सर्वनामानि ॥ अ० ॥ १ । १ । २७ ॥

सर्वादीनि प्रतिपदिकानि सर्वनामसंज्ञानि भवन्ति । सर्वे । सर्वस्मै । सर्वेषां नामानि सर्वनामानीति समासेनान्वर्थसंज्ञाविज्ञानात् सर्वो नाम कश्चित् मनुष्यविशेषस्तस्मै सर्वाय देहीति सर्वनामसंज्ञा न भवति । अत एव विशेषणवाचकानि सर्वादीनि प्रादिपदिकानि विज्ञेयानि—

सर्व । विश्व । उभ । उभय । डतर । डतम । इतर । अन्य । अन्यतर । त्व । त्वत् । नेम । सम (१) सिम (२) पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ॥ स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ॥ अन्तरम्बहिर्योगोपसंव्यानयोः ॥ त्यद् । तद् । यद् । एतद् । इदम् । अदस् । एक । द्वि । युष्मद् । अस्मद् । भवतु । किम् । इति सर्वादिगणः ॥

२—स्वरादिनिपातमव्ययम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ३७ ॥

स्वरादयश्च निपाताश्चैषां समाहारः स्वरादिनिपातमव्ययसंज्ञं भवति । निपाताश्चादयो वक्ष्यन्ते—

स्वर् । अन्तर् । प्रातर् । एते अन्तोदात्ताः । पुनर् । आद्युदात्तः । सनुतर् । उच्चैस् । नीचैस् । शनैस् । ऋधक् । आरात् । ऋते । युगपत् । पृथक् । अन्तोदात्ताः । ह्यस् । श्वस् । दिवा । रात्रौ । सायम् । चिरम् । मनाक् । ईषत् । जोषम् । तूष्णीम् । बहिस् । आविस् । अवस् । अधस् । समया । निकषा । स्वयम् । मृषा । नक्तम् । नञ् । हेतौ । अद्धा । इद्धा । सामि । ह्यस्प्रभृतयोऽप्यन्तोदात्ताः । वत् (३) सन् । सनात् । सनत् ।

---

(१) सूत्रान्तरे समानामिति निर्देशात्सर्वपर्यायस्यैव समशब्दस्य सर्वनामसंज्ञेष्यते तेन तुल्यवाचकस्य न भवति ॥

(२) इमानि त्रीणि सूत्राण्यष्टाध्याय्यामपि पठ्यन्ते । तत्र जसि विभाषा सर्वनामसंज्ञा । अत्र तु सामान्येन ॥

(३) वदिति तदन्तस्य वतिप्रत्ययान्तस्य ग्रहणम् । ब्राह्मणवत् । क्षत्रियवत् । स्थानिवत् । इत्यादि ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तिरस् । एत आद्युदात्ताः । अन्तरा । अयमन्तोदात्तः । अन्तरेण । ज्योक् । कम् । शम् । सना । सहसा । विना । नाना । स्वस्ति । स्वधा । अलम् । वषट् । अन्यत् । अस्ति । उपांशु । क्षमा । विहायसा । दोषा । मुधा । मिथ्या । (१) क्त्वातोसुन्कसुनः । कृन्मेकारान्तः सन्ध्यक्षरान्तोऽव्ययीभावश्च ॥ पुरा । मिथो । मिथस् । प्रबाहुकम् । आर्यहलम् । अभीक्ष्णम् । साकम् । सार्द्धम् । समम् । नमस् । हिरुक् । (२) तसिलादयः प्राक्पाशपः । शस्प्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः । मान्तः । कृत्वर्थः । तसिः । आच्थालौ । प्रतान् । प्रशान् । इति स्वरादिर्गणः ॥

३—चादयोऽसत्त्वे ॥ अ० ॥ १ । ४ । ५७ ॥

अद्रव्यवाचकाश्चादयो निपातसंज्ञा भवन्ति । असत्त्व इति किम् । पशुर्वैपुरुषः । अत्र पशुशब्दस्य द्रव्यवाचकत्वादव्ययसंज्ञा न भवति—

च । वा । ह । अह । एव । एवम् । नूनम् । शश्वत् । युगपत् । सूपत् । कूपत् । कुवित् । नेत् । चेत् । चण् । कच्चित् । यत्र । नह । हन्त । माकिम् । नकिम् । माङ् । नञ् । यावत् । तावत् । त्वा । त्वै । द्वै । रै । श्रौषट् । वौषट् । स्वाहा । वषट् । स्वधा । ओम् । किल । तथा । अथ । सु । स्म । अस्मि । अ । इ । उ । ऋ । लृ । ए । ऐ । ओ । औ । अम् । तक । उञ् । उकञ् । वेलायाम् । मात्रायाम् । यथा । यत् । यम् । तत् । किम् । पुरा । अद्धा । धिक् । हाहा । हे । है । प्याट् । पाट् । थाट् । अहो । उताहो । हो । तुम् । तथाहि । खलु । आम् । आहो । अथो । ननु । मन्ये । मिथ्या । असि । ब्रूहि । तु । नु । इति । इव । वत् । चन । बत । इह । शम् । कम् ! अनुकम् । नहिकम् । हिकम् । सुकम् । सत्यम् । ऋतम् । वाकिर् । नाकिर् । आङ् । अ । मा । नो । ना । वाकिरादयः । प्रतिषेधे । उत । दह । श्रद्धा । इद्धा । मुधा । नोचेत् । नचेत् । नहि । जातु । कथम् । कुतः । कुत्र । अव । अनु । हाहौ । हैहा । ईहा । आहोस्वित् । छम्वट् । खम् । दिष्ट्या । पशु । वट् । सह । आनुषक् । अङ्ग । फट् । ताजक् । अये । अरे । चटु । बाट् । कुम् । खुम् । घुम् । हुम् । आईम् । शीम् । सम् । वै ।

(१) क्त्वादीनामष्टाध्याय्यां सूत्रपाठग्रहणमस्ति । तेषामेवात्र स्वरादिषु परिगणनं कृतम् । न कश्चिद्विशेषः ॥

(२) तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिरिति सूत्रेण येषामव्ययसंज्ञा तेषामेव तद्धितप्रत्ययानामत्र विस्पष्टार्थं परिगणनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वे । तुवै । न्वै । नुवे । अध । अधम् । स्मि । अच्छ । अदल् । दह । हेहे । हैहै । नौ । म । आस् । शस् । शुकम् । शम् । वव । वात् । डिकम् । हिनुक । वशम् । शिकम् । श्वकम् । सनुकम् । नुकम् । अन्त । धौ । सुक् । माजक् । अले । वट् । वाट् । किम् । उपसर्ग-विभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाताः (१) इति चादिर्गणः ॥

४-प्रादयः ॥ अ० ॥ १ । ४ । ५८ ॥

असत्ववाचकाः प्रादयो निपातसंज्ञा भवन्ति । परामृशति । पराजयते इत्यादि । असत्त्व इति किम् । परा जयति सेना । अत्रोपसर्गसंज्ञयाऽऽत्मनेपदं मा भूत्—

प्र । परा । अप । सम् । अनु । अव । निस् । निर् । दुस् । दुर् । वि । आङ् । नि । अधि । अपि । अति । सु । उत् । अभि । प्रति । परि । उप । इति प्रादयः ॥

५-ऊर्यादिच्विडाचश्च ॥ अ० ॥ १ । ४ । ६१ ॥

ऊर्यादयः शब्दाश्च्व्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञा भवन्ति । च्वि । शुक्लीकृत्य । शुक्लीकृतम् । डाच् । पटपटाकृत्य । पटपटाकृतम् । ऊरीकृत्य । शुक्ली करोति । पटपटाकरोति । ऊरीकरोति । इत्यादि—

ऊरी । उररी । पापी । ताली । आताली । वेताली । धूसी । शकला । संशकला । ध्वंसकला । भ्रंशकला ॥ शकलादयो हिंसायाम् ॥ गुलुगुधा पीडार्थे ॥ सजूः सहार्थे ॥ फलू, फली, विक्ली, आक्ली । इति विकारे ॥ आलोष्टी । केवाली । केवाली । शेवाली । वर्षाली । मस्मसा । मसमसा । एतेहिंसायाम् । वषट् । वौषट् । श्रौषट् । स्वाहा । स्वधा । बन्धा । प्रादुस् । श्रत् । आवित् । इत्यूर्यादयः ॥

६-साक्षात्प्रभृतीनि च ॥ अ० ॥ १ । ४ । ७४ ॥

साक्षादादीनि प्रातिपदिकानि कृञ्योगे विभाषा गतिसंज्ञानि भवन्ति । असाक्षात् साक्षात्कृत्वा । साक्षात्कृत्य । साक्षात्कृत्वा । इत्यादि—

साक्षात् । मिथ्या । चिन्ता । भद्रा । लोचना । विभाषा । सम्पत्का । आस्था । अमा । श्रद्धा । प्राजर्या । प्राजरुहा । वीजर्या । वीजरुहा । संसर्या । अर्थे । लवणम् । उष्णम् ।

---

(१) उपसर्गप्रतिरूपकाः । अवदत्तम् । विदत्तम् । प्रदत्तम् । अत्राच उपसर्गादिति तत्वं न भवति । विभक्ति प्रतिरूपकाः । चिरेण । चिरात् । चिराय । इत्यादयः स्वरप्रतिरूपकाः— अ । इ । उ । ऋ । ए । ओ । इत्येवमादय ः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शीतम् । उदकम् । आर्द्रम् । (१) अग्नी । वशे । विकम्पने । विहसने । प्रहसने । प्रतपने । प्रादुस् । नमस् । आविस् । इति साक्षात्प्रभृतयः ॥

७–तिष्ठद्गुप्रभृतीनिच ॥ अ० ॥ २ । १ । १७ ॥

तिष्ठद्ग्वादयः समुदायाः कृतसमासा अव्ययीभावसंज्ञका विभाषया निपात्यन्ते । तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले दोहनाय स तिष्ठद्गु कालविशेषः । खलेयवादीनि प्रथमान्तानि विभक्त्यन्तरेण नैव संबध्यन्ते । अन्यपदार्थेच काले वर्त्तन्ते ।

तिष्ठद्गु । वहद्गु । आयतीगवम् । खलेयवम् । खलेबुसम् । लूनयवम् । लूयमानयवम् । पूतयवम् । पूयमानयवम् । संहृतयवम् । संह्रियमाणयवम् । संहृतबुसम् । संह्रियमाणबुसम् । एते कालशब्दाः । समभूमि । समपदाति । सुषमम् । विषमम् । निष्षमम् । दुष्षमम् । अपरसमम् । आयतीसमम् । प्राह्णम् । प्ररथम् । प्रमृगम् । प्रदक्षिणम् । अपरदक्षिणम् । सम्प्रति । असम्प्रति । पापसमम् । पुण्यसमम् । इच्कर्मव्यतिहारे (२) इति तिष्ठद्गुप्रभृतयः ॥

८–सप्तमी शौण्डैः ॥ अ० ॥ २ । १ । ४० ॥

शौण्डैरिति बहुवचनादेव गणनिर्देशः । सप्तम्यन्तंसुबन्तं शौण्डादिभिः सह विभाषा समस्यते सप्तमीतत्पुरुषश्च स समासो भवति । अक्षेषु धूर्त्तोऽक्षधूर्त्तः । अक्षकितवः । इत्यादि—

शौण्ड । धूर्त्त । कितव । व्याड । प्रवीण । संवीत । अन्तर् । अधिपटु । पण्डित । कुशल । चपल । निपुण । संव्याड । मन्थ । समीर । इति शौण्डादयः ॥

९–पात्रेसंमितादयश्च ॥ अ० ॥ २ । १ । ४८ ॥

पात्रे संमितादयाः समुदायाः क्षेपे गम्यमाने सप्तमीतत्पुरुषसंज्ञा निपात्यन्तेः—

(३) पात्रेसम्मिताः । पात्रेबहुलाः । उदरक्रिमिः । कूपकच्छपः । कूपचूर्णकः । अवटकच्छपः । कूपमण्डूकः । कुम्भमण्डूकः उदपानमण्डूकः । नगरकाकः । नगरवायसः ।

(१) लवणादय आर्द्रपर्यन्ताः शब्दा गतिसंज्ञासम्बन्धेन मकारान्ता निपात्यन्ते नतु सर्वत्र ॥

(२) कर्मव्यतिहारेऽर्थे समासान्तो इच्प्रत्ययान्ता अपि शब्दा अव्ययीभावसंज्ञा भवन्ति । दण्डादण्डि । मुसलामुसलि । नखानखि । केशाकेशि । इत्यादि ॥

(३)येऽत्र गणे क्तान्तास्तत्र क्षेप इति पूर्वसूत्रेणैव सिद्धे पुनः पाठो युक्तारोह्याद्यन्तर्गतपात्रेसम्मितादीनां पूर्वपदाद्युदात्तार्थः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मातरिपुरुषः । पिण्डीशूरः । गेहेशूरः । गेहेनर्दी । गेहेक्ष्वेडी । गेहेविजिती । गेहेव्याडः । गेहेतृप्तः । गेहेधृष्टः । गर्भेतृप्तः । आखनिकबकः । गोष्ठेशूरः । गोष्ठेविजिता । गोष्ठेक्ष्वेडी । गेहेमेही । गोष्ठेपटुः । गोष्ठेपण्डितः । गोष्ठेप्रगल्भः । कर्णेटिट्टिभः । कर्णेचुरचुरा । आकृतिगणोयम् ॥

१०–उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ॥ अ०॥२।१।५६॥

सामान्यधर्मस्याप्रयोगे सत्युपमेयवाचि सुबन्तमुपमानवचनैर्व्याघ्रादिभिः सह विभाषा समस्यते स समानाधिकरणतत्पुरुषः समासो भवति व्याघ्र इव पुरुषः पुरुषव्याघ्रः । पुरुषसिंहः । इत्यादि । सामान्याप्रयोग इति किम् । पुरुषो व्याघ्र इव शूरः । उपमानोपमेयप्रधानो धर्मः शूरत्वमत्र प्रयुज्यतेऽतः समासनिषेधः–

व्याघ्र । सिंह । ऋक्ष । ऋषभ । चन्दन । वृक्ष । वृष । वराह । हस्तिन् । कुञ्जर रुरु । पृषत । पुण्डरीक । बलाहक (१) आकृतिगणोऽयम् । इति व्याघ्रादयः ॥

११–श्रेण्यादयः कृतादिभिः ॥ अ० ॥ २ । १ । ५९

श्रेण्यादयः सुबन्ताःकृतादिभिः समानाधिकरणैः सह विभाषा समस्यन्ते । अश्रेणयः श्रेणयः कृताः श्रेणिकृताः (२) एककृता वसन्ति वणिजः । इत्यादि–

श्रेणि । एक । पूग । कुण्ड । राशि । विशिख । निचय । निधान । इन्द्र । देव । मुण्ड । भूत । श्रवण । वदान्य । अध्यापक । ब्राह्मण । क्षत्रिय । पटु । पण्डित । कुशल । चपल । निपुण । कृपण । इतिश्रेण्यादयः । कृत । मित । मत । भूत । उक्त । समाज्ञात । समाम्नात । समाख्यात । सम्भावित । अवधारित । निराकृत । अवकल्पित । उपकृत । उपाकृत । आकृतिगणोऽयम् । इति कृतादयः ॥

१२–वा०कृतापकृतादीनामुपसंख्यानम् (३)॥२।१।६०॥

कृतापकृतम् । भुक्तविभुक्तम् । पीतविपीतम् । गतप्रत्यागतम् । यातानुयातम् । क्रयाक्रयिका । पुटापुटिका । फलाफलिका । मानोन्मानिका । इतिकृतापकृतादयः ।

(१)अत्राकृतिगणेनेदमपि सिद्धं भवति । मुखं पद्ममिव, मुखपद्मम् । मुखकमलम् । करकिसलयम् । पार्थिवचन्द्रः ॥

(२)अत्र श्रेण्यादिषु च्व्यर्थ वचनमिति वार्त्तिकेन च्व्यर्थलाभः । यदा च च्व्यन्ताः श्रेण्यादयस्तदा च्विप्रत्ययान्तानां गतिसंज्ञत्वात्गतिप्रादय इति नित्यसमासः श्रेणीकृताः इत्यादि ॥

(३) अनञ्विशिष्टक्तान्तेनापि समासो यथास्यादिति वार्त्तिकम् । कृतंचापकृतं च कृतापकृतं । वार्त्तिकोपरि तत्सूत्रसंख्या सर्वत्र धरिष्यते । यस्योपरि महाभाष्ये वार्त्तिकमस्ति ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१३–वा०–समानाधिकरणाधिकारे शाकपार्थिवादीनामुपसंख्यानमुत्तरपदलोपश्च (१) २ । १ । ६९ ॥

शाकभोजी पार्थिवः शाकपार्थिवः । कुतपसौश्रुतः । अजातौल्वलिः । यष्टिमौद्गल्यः । इत्यादि ॥

१४–मयूरव्यंसकादयश्च ॥ अ० ॥ २ । १ । ७२ ॥

मयूरव्यंसकादयः समुदायाः कृतसमासाः समानाधिकरण तत्पुरुषसंज्ञका निपात्यन्ते । चकारो निश्चयार्थः । परममयूरव्यंसकइतिसमासान्तरं न भवति–

मयूरव्यंसकः । छात्रव्यंसकः (२) । काम्बोजमुण्डः । यवनमुण्डः । (३) छन्दसि । हस्तेगृह्य । पादेगृह्य । लाङ्गूलेगृह्य । पुनर्दाय ॥ (४) एहीडादयोऽन्यपदार्थे ॥ एहीडम् । एहियवं वर्त्तते । एहिवाणिजाक्रिया । अपेहिवाणिजा । प्रेहिवाणिजा । एहिस्वागता । अपेहिस्वागता । प्रेहिस्वागता । एहिद्वितीया । अपेहिद्वितीया । प्रोहकटा । अपोहकटा । प्रोहकर्दमा । अपोहकर्दमा । उद्धरचूडा । आहरचेला । आहरवसना । आहरवनिता । कृन्तविचक्षणा । उद्धरोत्सृजा । उद्धमविधमा । उत्पचविपचा । उत्पतनिपता । उच्चावचम् । उच्चनीचम् । अपचितोपचितम् । अवचितपराचितम् । निश्चप्रचम् । अकिंचनम् । स्नात्वाकालकः । पीत्वास्थिरकः । भुक्त्वा सुहितः । प्रोष्य पापीयान् । उत्पत्यव्याकुला । निपत्यरोहिणी । निषण्णश्यामा । अपेहिप्रघसा । इहपञ्चमी । इहद्वितीया । जहिकर्मणा बहुलमाभीक्ष्ण्ये कर्त्तारंचाभिदधाति (५) । जहिजोडः

(१) शाकपार्थिवादिषु समानाधिकरणतत्पुरुषः समासो यथा स्यात् । पूर्वसमासे यदुत्तरपदं तस्य च लोपः । यथा दृष्टं विज्ञेयम् ॥

(२) मयूर इव व्यंसको धूर्त्तो मयूरव्यंसकः । छात्र इव व्यंसकः । कम्बोज इव मुण्डः । इत्युपमानसमासापवादोऽयं समासः ॥

(३) अतोऽग्रेचत्वारः शब्दाश्छन्दसि वेदविषये निपात्यन्ते ॥

(४) त्वं यस्येडामन्त्रस्तुतिं वा–एहि प्राप्नुहि तत् एहीडम् । एवमेहियवादिषु यथाप्रयोगमर्थानुकूलः समासोज्ञेयः ॥

(५) जहिक्रियाऽऽभीक्ष्ण्येऽर्थे स्वेनैव कर्मणा सह बहुलंसमस्यते समाससमुदायश्च कर्त्तृवाचको भवति । त्वंजोडंजहि, इति जहिजोडस्त्वम् । उज्जहिजोडः । जहिस्तम्बः । इत्यादि । आख्यातः क्रियाशब्द आख्यातेनैव सह समस्यते । अश्नीत च पिबति च, इति समासे कृते प्रातिपदिकसंज्ञायां क्रियाविशेषणे टाप् । अश्नीतपिबता । इत्यादि ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उज्जहिजोडः । जहिस्तम्बः । उज्जहिस्तम्बः । (आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये) ॥ अश्नीतपिबता । पचतभृज्जता । खादतमोदता । खादताचमता । आहरनिवपा । आवपनिष्किरा । उत्पचविपचा । भिन्धिलवणा । छिन्धिविचक्षणा । पचलवणा । पचप्रकूटा ।(१) इतिमयूरव्यंसकादयः ॥

१५-याजकादिभिश्च ॥ अ० ॥ २ । २ । ९ ॥

षष्ठयन्तं सुबन्तं याजकादिभिः सुबन्तैः सह समस्यते स षष्ठीतत्पुरुषः समासो भवति । ब्राह्मणयाजकः । क्षत्रिययाजकः । प्रतिषेधबाधकमिदं सूत्रम् :--

याजक । पूजक । परिचारक । परिषेचक । परिवेषक । स्नातक । अध्यापक । उत्सादक । उद्वर्त्तक । हर्त्तृ । वर्त्तक । होतृ । पोतृ । भर्त्तृ । रथगणक । पतिगणक । इति याजकादयः ॥

१६-राजदन्तादिषु परम् ॥ अ० । २ । २ । ३१ ॥

राजदन्तादिषु परमुपसर्जनं प्रयोक्तव्यम् । पूर्वनिपातापवादः । दन्तानां राजा, राजदन्तः । अनेन दन्तशब्दस्य पूर्वनिपातो बाध्यते । :—

राजदन्तः । अग्रेवणम् । लिप्तवासितम् । नग्नमुषितम् । सिक्तसंमृष्टम् । मृष्टलुञ्चितम् । अवक्लिन्नपक्वम् । अर्पितोप्तम् । उप्तगाढम् । उलूखलमुसलम् । तण्डुलाकिण्वम् । दृषदुपलम् । आरग्वायनबन्धकी । चित्ररथबाह्लीकम् । आवन्त्यश्मकम् । शूद्रार्य्यम् । स्नातकराजानौ । विश्वक्सेनार्जुनौ । अक्षिभ्रुवम् । दारगवम् । धर्मार्थौ । अर्थधर्मौ । कामार्थौ । अर्थकामौ । शब्दार्थौ (२) । अर्थशब्दौ । वैकारिमतम् । गजवाजम् । गोपालधानीपूलासम् । पूलासककरण्डम् । स्थूलपूलासम् । उशीरबीजम् । सिञ्जास्थम् । चित्रास्वाती । भार्य्यापती । जायापती (३) । जम्पती । दम्पती । पुत्रपती । पुत्रपशू । केशश्मश्रू । श्मश्रुकेशौ । शिरोबीजम् । सर्पिर्मधुनी । मधुसर्पिषी । आद्यन्तौ । अन्तादी गुणवृद्धी । वृद्धिगुणौ । इति राजदन्तादयः ॥

---

(१) अविहितलक्षणस्तत्पुरुषो मयूरव्यंसकादिषु द्रष्टव्यः ॥

(२) धर्म्मादिषूभयमिति वार्त्तिकेन कृतद्वन्द्वयोर्द्वयोरपि पर्य्यायेण पूर्वनिपातः । अत्र गणान्तेऽपि केशादयो धर्म्मादिषु द्रष्टव्याः ॥

(३) अत्र जायाशब्दस्य जम्भावो दम्भावश्च निपात्यते । अस्मिन् गणे सर्वेषु समासेषूपसर्जनमनुपसर्जनं वा निपात्यते । सर्वेषां च यथाप्राप्तानामपवादः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१७-वाऽऽहिताग्न्यादिषु ॥ अ० ॥ २ । २ । ३७ ॥

आहिताग्न्यादिषु निष्ठान्तस्य विभाषा पूर्वनिपातो भवति पक्षे च परनिपातः । आहितोऽग्निर्येन सः :—

आहिताग्निः । अग्न्याहितः । जातपुत्रः । पुत्रजातः । जातदन्तः । जातश्मश्रुः । तैलपीतः । घृतपीतः । ऊढभार्यः । गतार्थः । आकृतिगणोऽयम् (१) । इत्याहिताग्न्यादयः ॥

१८-कडाराः कर्मधारये ॥ अ० ॥ २ । २ । ३८ ॥

कर्म्मधारये समासे कडारादयः शब्दा विभाषा पूर्वं प्रयोक्तव्याः । कडारश्चासौ जैमिनिश्च कडारजैमिनिः । जैमिनिकडारः। इत्यादि। कडारादीनां गुणवाचकत्वाद्विशेषणस्य पूर्वनिपातः प्राप्तः स बाध्यते :—

कडार । गडुल । काण । खञ्ज । कुण्ठ । खञ्जर । खलति । गौर । वृद्ध । भिक्षुक । पिङ्गल । तनु । वटर । इति कडारादयः । कर्म्मधारय इति किम् । कडारपुरुषोग्रामः । अत्र बहुव्रीहौ मा भूत् ॥

१९-वा०-तृतीयाविधानेप्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् (२) ॥ २ । ३ । १८ ॥

प्रकृति । प्राय । गोत्र । सम । विषम । द्विद्रोण । पञ्चक । साहस्र । आकृतिगणोऽयम् । इति प्रकृत्यादयः ॥

२०-गवाश्वप्रभृतीनि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ११ ॥

गवाश्वप्रभृतीनिकृतैकवद्भावानि द्वन्द्वरूपाणि सिद्धानि प्रातिपदिकानि निपात्यन्ते । गौश्चाश्वश्च :—

गवाश्वम् । गवाविकम् । गवैडकम् । अजाविकम् । अजैडकम् । कुब्जवामनम् । कुब्जकैरातम् । पुत्रपौत्रम् । श्वचण्डालम् । स्त्रीकुमारम् । दासीमाणवकम् । शाटीपिच्छकम् । उष्ट्रखरम् । उष्ट्रशशम् । मूत्रशकृत् । मूत्रपुरीषम् । यकृन्मेदः । मांसशोणितम् ।

(१) अत्राकृतिगणेन गडुकण्ठादयोऽपि द्रष्टव्याः । कण्ठेगडुः । गडुकण्ठः । गडुशिराः । इत्यादि ॥

(२) प्रकृत्यादिभ्यस्तृतीयाविभक्तिर्यथा स्यात् । कर्त्तृकरणाभावादप्राप्ता विधीयते । प्रकृत्याऽभिरूपः । प्रकृत्या दर्शनीयः । इत्यादि ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दर्भशरम् । दर्भपूतीकम् । अर्जुनशिरीषम् । तृणोलपम् । दासीदासम् । कुटीकुटम् । भागवतीभागवतम् (१) । इति गवाश्वप्रभृतयः ॥

२१– न दधिपयआदीनि ॥ अ० ॥ २ । ४ । १४ ॥

दधिपयआदीनि शब्दरूपाणि द्वन्द्वे नैकवद्भवन्ति :—

दधिपयसी । सर्पिर्मधुनी । मधुसर्पिषी । ब्रह्मप्रजापती । शिववैश्रवणौ । स्कन्दविशाखौ । परिव्राट्कौशिकौ । परिव्राजककौशिकौ । प्रवर्ग्योपसदौ । शुक्लकृष्णौ । इध्माबर्हिषी । दीक्षातपसी । श्रद्धातपसी । मेधातपसी । अध्ययनतपसी । उलूखलमुसले आद्यावसाने । श्रद्धामेधे । ऋक्सामे । वाङ्मनसे । इति दधिपयआदयः ॥

२२–अर्द्धर्चाः पुंसि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३१ ॥

अर्द्धर्चादयः शब्दाः पुंसि चान्नपुंसके च भाष्यन्ते :—

अर्द्धर्च । गोमय । कषाय । कार्षापण । कुतप । कपाट । शङ्ख । चक्र । गूथ । यूथ । ध्वज । कबन्ध । पद्म । गृह । सरक । कंस । दिवस । यूप । अन्धकार । दण्ड । कमण्डलु । मण्ड । भूत । द्वीप । द्यूत । चक्र । धर्म । कर्मन् । मोदक । शतमान । यान । नख । नखर । चरण । पुच्छ । दाडिम । हिम । रजत । सक्तु । पिधान । सार । पात्र । घृत । सैन्धव । औषध । आढक । चषक । द्रोण । खलीन । पात्रीव । षष्टिक । वार । बाण । प्रोथ । कपित्थ । शुष्क । शील । शुल्व । सीधु । कवच । रेणु । कपट । सीकर । मुसल । सुवर्ण । यूप । चमस । वर्ण । क्षीर । कर्ष । आकाश । अष्टापद । मङ्गल । निधन । निर्यास । जृम्भ । वृत्त । पुस्त । क्ष्वेडित । शृङ्ग । शृङ्खल । मधु । मूल । मूलक । शराव । शाल । वप्र । विमान । मुख । प्रग्रीव । शूल । वज्र । कर्पट । शिखर । कल्क । नाट । मस्तक । वलय । कुसुम । तृण । पङ्क । कुण्डल । किरीट । अर्बुद । अङ्कुश । तिमिर । आश्रम । भूषण । इल्कस । मुकुल । वसन्त । तडाग । पिटक । विटङ्क । माष । कोश । फलक । दिन । दैवत । पिनाक । समर । स्थाणु । अनीक । उपवास । शाक । कर्पास । चषाल । खण्ड । दर । विटप । रण । बल । मल । मृणाल । हस्त । सूत्र । ताण्डव । गाण्डीव । मण्डप । पटह । सौध । पार्श्व । शरीर । फल । छल । पुर । राष्ट्र । विश्व । अम्बर । कुट्टिम । मण्डल । ककुद । तोमर ।

(१) अत्र गणे यथोच्चारित एव द्वन्द्वो द्रष्टव्यः । तेन रूपान्तरे न भवति । गोश्वम् । गोश्वौ । अत्र पशुद्वन्द्वो विभाषैकवद् भवति ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तोरण । मञ्चक । पुङ्ख । मध्य । बाल । वल्मीक । वर्ष । वस्त्र । देह । उद्यान । उद्योग । स्नेह । स्वर । सङ्गम । निष्क । क्षेम । शूक । छत्र । पवित्र । यौवन । पानक । मूषिक । बल्कल । कुञ्ज । विहार । लोहित । विषाण । भवन । अरण्य । पुलिन । दृढ । आसन । ऐरावत । शूर्प । तीर्थ । लोमश । तमाल । लोह । दण्डक । शपथ । प्रतिसर । दारु । धनुस् । मान । तङ्क । वितङ्क । मव । सहस्र । ओदन । प्रवाल । शकट । अपराह्ण । नीड । शकल । कुणप । मुण्ड । पूत । मरु । लोमन । लिङ्ग । सीर । व्रत । ऋण । कडार । पूर्ण । पणव । विशाल । बुस्त । पुस्तक । पल्लव । निगड । खल । स्थूल । शार । नाल । प्रवर । कटक । कण्टक । छाल । कुमुद । पुराण । जाल । स्कन्ध । ललाट । कुङ्कुम । कुशल । विडङ्ग । पिण्याक । आर्द्र । हल । योध । बिम्ब । कुक्कुट । कूडप । खण्डल । पञ्चक । वसु । उद्यम । स्तन । स्तेन । सूत्र । कलह । पालक । वर्चस्क । कूर्च । तण्डक । तण्डुल । इत्यर्द्धर्चादयः ॥

२३—पैलादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५९ ॥

पैलादिप्रातिपदिकेभ्यो युवप्रत्ययस्य लुग्भवति । पीलाया अपत्यं पैलः । तस्य युवापत्यमिति फिञ् तस्य लुक् । पैलः पिता । पैलः पुत्रः । एवं शालङ्किः । इत्यादि ।

पैल । शालङ्कि । सात्यकि । सात्यकामि । दैवि । औदमज्जि । औदव्राजि । औदमेघि । औदबुद्धि । दैवस्थानि । पैङ्गलायनि । राणायनि । रौहक्षिति । भौलिङ्गि । औद्गाहमानि । औज्जिहानि । रागक्षिति । राणि । सौमनि । ऊहमानि । तद्राजाच्चाणः (१) आकृतिगणोऽयम् । इतिपैलादयः ॥

२४—न तौल्वलिभ्यः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६१ ॥

तौल्वल्यादिभ्यः परस्य युवप्रत्ययस्य लुङ् न भवति तुल्वलस्य गोत्रापत्यं तौल्वलिः तस्ययुवापत्यं तौल्वलायनः—

तौल्वलि । धारणि । रावणि । पारणि । दैलीपि । दैवलि । दैवमति । दैवयज्ञि । प्रावाहणि । मान्धातकि । आनुहारति । श्वाफल्कि । आनुमति । आहिंसि । आसुरि । आयुधि । नैमिषि । आसिबन्धकि । बैकि । पौष्करसादि । वैराक । वैलाकि वैहति । वैकर्णि । कारेणुपालि । कामालि । रान्धाकि । आसुराहति । आणाहति । पौष्कि । कान्दकि । दौषकगति । आन्तराहति । इति तौल्वल्यादयः ॥

(१) वङ्गानां राजा वाङ्गः । तस्य युवापत्यम् वाङ्गः । अङ्गस्यापत्यमाङ्गः पिता पुत्रो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२५ –यस्कादिभ्यो गोत्रे ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६३ ॥

यस्कादिभ्यः प्रातिपादिकेभ्यः परस्याऽस्त्रीलिङ्गस्य बहुवचनेवर्त्तमानस्य गोत्रप्रत्ययस्य लुग्भवति यदि तेनैव गोत्रप्रत्ययेन कृतं बहुत्वं भवेत्तदा । यस्कस्य गोत्रापत्यं यास्कः । यास्कौ । यस्काः । लभ्याः । तेनैवेति किम् । प्रियो यास्को येषां ते प्रिययास्काः अस्त्रियामिति किम् । यास्क्यः स्त्रियः । गोत्र इति किम् । यास्काश्छात्राः । :–

यस्क । लभ्य । दुह्य । अयःस्थूण । तृणकर्ण (१) । सदामत्त । कम्बलभार । अहिर्योग । कर्णाटक । पर्णाडक । पिण्डीजङ्घ । बकसक्थ (२) । वस्ति । कद्रु । विश्रि । कद्रु । अजबस्ति । मित्रयु (३) रक्षामुख । जङ्घारथ । मन्थक । उत्कास । कटुक । मन्थक । पुष्करसद् । विषपुट । उपरिमेखल । क्रोष्टुमान । क्रोष्टुपाद् । शीर्षमाय (४) । खरप (५) । पदक । वर्मक (६) भन्दन (७) । भडिल । भण्डिल । भडित । भण्डित (८) । इतियस्कादयः ॥

२६—न गोपवनादिभ्यः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६७ ॥

गोपवनादिप्रातिपादिकेभ्यः परस्य गोत्रप्रत्ययस्य बहुवचनविभक्तौ लुङ् न भवति यञञोश्चेति प्राप्तो लुक् प्रतिषिध्यते । गोपवनस्य गोत्रापत्यं गौपवनः । गौपवनौ । गौपवनाः । :–

गोपवन । शिग्रु । बिन्दु । भाजन । अश्व । अवतान । श्यामाक । श्वापर्ण । इत्यष्टौ बिदाद्यन्तर्गता गोपवनादयः ॥

२७–तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६८ ॥

तिकादिभ्यः कितवादिभ्यश्च परस्य गोत्रप्रत्ययस्य द्वन्द्वसमासे बहुवचनविभक्तौ लुग्भवति । तैकायनयश्च कैतवायनयश्चेत्यत्र तिकादिभ्यः फिञ् तस्य लुक् :—

(१) यस्कादिपञ्चभ्यः शिवादित्वादण् ॥
(२) सदामत्तादिसप्तभ्य इञ् ॥
(३) बस्त्यादिषड्भ्यो गृष्ट्यादित्वाड् ढञ् ॥
(४) रक्षामुखाद्येकादशभ्य इञ् ॥
(५) खरपशब्दान्नडादित्वात्फक् ॥
(६) पदकवर्मकाभ्यामिञ् ॥
(७) भन्दनशब्दाच्छिवादित्वादण् ॥
(८) भडिलादिचतुर्भ्योऽश्वादित्वात् फञ् ॥

For Private And Personal Use Only

तिककितवाः । वङ्खरभण्डीरथाः (१) उपकलमकाः (२) पफकनरकाः । बकनखश्वगुदपरिणद्धाः (३) । उब्जककुभाः (४) । लङ्कशान्तमुखाः (५) उरसलङ्कटाः (६) । भ्रष्टककपिष्ठलाः । कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः (७) । अग्निवेशदासेरकाः (८) ॥ इति तिककितवादयः ॥

२८–उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामद्वन्द्वे ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६९॥

उपकादिप्रातिपदिकेभ्यः परस्य गोत्रप्रत्ययस्य बहुवचनविभक्तौ द्वन्द्वे चाद्वन्द्वे च विभाषा लुग्भवति । अद्वन्द्वग्रहणं द्वन्द्वाधिकारनिवृत्त्यर्थम् । एतेषां मध्ये त्रयो द्वन्द्वास्तिककितवादिषु पठिताः । उपकलमकाः । भ्रष्टककपिष्ठलाः । कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः । तेभ्यः पूर्वसूत्रेणैव नित्यलुग्भवति । अद्वन्द्वेत्वनेन विकल्पः । उपकाः । औपकायनाः । लमकाः । लामकायनाः । शेषाणां द्वन्द्वेऽद्वन्द्वे च विकल्पः :–

उपक । लमक । भ्रष्टक । कपिष्ठल । कृष्णाजिन । कृष्णसुन्दर । पण्डारक । अण्डारक । गडुक । सुपर्यक । सुपिष्ट । मयूरकर्ण । खारीजङ्घ । शलाबल । पतञ्जल । कठेरणि । कुषीतक । काशकृत्स्न । निदाघ । कलशीकण्ठ । दामकण्ठ । कृष्णपिङ्गल । कर्णक । पर्णक । जटिलक । बधिरक । जन्तुक । अनुलोम । अर्द्धपिङ्गलक । प्रतिलोम । प्रतान । अनभित । चूडारक । उदङ्क । सुधायुक । अबन्धक । पदञ्चल । अनुपद । अपजग्ध । कमक । लेखाभ्र । कमन्दक । पिञ्जल । मसूरकर्ण । मदाघ । कदामत्त । इत्युपकादयः ॥

२९–भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः ॥ अ०॥३।१।१२॥

अच्व्यन्तेभ्यो भृशादिप्रातिपदिकेभ्यो भवत्यर्थे क्यङ् प्रत्ययो भवति हलन्तानां

(१) वाङ्खरयश्च भांडीरथयश्चेतीञ् ॥

(२) औपकायनश्च लामकायनश्चेति नडादित्वात् फक् ।

(३) पाफकयश्च नारकयश्च, बाकनखयश्च, श्वागुदपारिणद्धयश्च सर्वेभ्योऽत इञ् तस्य लुक् ॥

(४) औब्जयश्च, इञ् । काकुभाश्च, शिवादित्वादण् । तयोर्लुक् ॥

(५) लाङ्कयश्च शान्तमुखयश्च, इञ् तस्य लुक् ॥

(६) औरसायनश्च, तिकादित्वात् फिञ् । लाङ्कटयश्च, इञ् तयोर्लुक् ॥

(७) भ्राष्टकयश्च, कापिष्ठलयश्च । कार्ष्णाजिनयश्च कार्ष्णसुन्दरयश्च । अत इञ् तस्यलुक् ॥

(८) आग्निवेश्याच, गर्गादित्वाद् यञ् । दासेरकयश्च, अत इञ् तयोर्लुक् ।

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चान्त्यलोपः । अभृशो भृशो भवतीति भृशायते । सुमनायते । अच्वेरिति किम् । भृशीभवति । अत्र मा भूत् :—

भृश । शीघ्र । मन्द । चपल । पण्डित । उत्सुक । उन्मनस् । अभिमनस् । सुमनस् । दुर्मनस् । रहस् । रेहस् । शश्वत् । बृहत् । वेहत् । नृषत् । शुधि । अधर । ओजस् । वर्चस् । विमनस् । रभन् । हन् । रोहत् । शुचिस् । अजरस् । इति भृशादिः ॥

३०—लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३ ॥

अच्व्यन्तेभ्यो लोहितादिभ्यो डाजन्तेभ्यश्च भवत्यर्थे क्यष् प्रत्ययो भवति । अलोहितो लोहितो भवति लोहितायते। लोहितायति । अपटपटा पटपटा भवति पटपटायति पटपटायते:—

लोहित । नील । हरित । पीत । मद्र । फेन । मन्द । आकृतिगणत्वात् । वर्म्मन् । निद्रा । करुणा । कृपा । इति लोहितादयः ॥

३१—भविष्यति गम्यादयः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३ ॥

गम्यादयः शब्दा भविष्यति काले साधवो भवन्ति । ग्रामंगमी :—

गमी । आगामी । प्रस्थायी । प्रतिरोधी । प्रतिबोधी । प्रतियोधी । प्रतियोगी । प्रतियायी । आयायी । भावी । इति गम्यादयः ॥

३२—षिद्भिदादिभ्योऽङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०४ ॥

षिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च धातुभ्यः स्त्रियामङ् प्रत्ययो भवति । जॄष्-जरा । त्रपा । भिदादयः पठ्यन्ते :—

भिदा (१) । छिदा । विदा । क्षिपा । गुहा गिर्य्योषध्योः ॥ श्रद्धा । मेधा । गोधा । आरा । हारा । कारा । क्षिया । भारा । धारा । रेखा । लेखा । चूडा । पीडा । वपा । वसा । सृजा ॥ क्रपेःसंप्रसारणं च ॥ कृपा । भिदा, विदारणे ॥ छिदा, द्वैधीकरणे ॥ आरा, शास्त्र्यम् ॥ धारा प्रपाते । इति भिदादयः ॥

३३—वा०—संपदादिभ्यः क्विप् (२) ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

संपत् । विपत् । प्रतिपत् । आपत् । परिषत् । इति संपदादयः ॥

---

(१) भिदादिगणे येऽर्थनियमः स महाभाष्यकारेणैव कृतोऽस्ति । विदारणादन्यार्थे भित्तिरिति सर्वत्रार्थान्तरे क्तिन् ॥

(२) संपदादिगणपठितेभ्य एव स्त्रियां क्विप् प्रत्ययो भवति । संपदादिश्चाकृतिगणो विज्ञेयः । कृत्यल्युटो बहुलमिति बहुलवचनात् क्तिन्नपि भवति । संपत्तिः । विपत्तिः । इत्यादि ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३४-भीमादयोऽपादाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७४ ॥

भीमादयः शब्दा उणादिस्था अपादानकारके निपात्यन्ते :—

भीमः । भीष्मः । भयानकः । वरुः । चरुः । भूमिः । रजः । संस्कारः । संक्रन्दनः । प्रपतनः । समुद्रः । स्रुचः । स्रुक् । खलतिः ॥ इति भीमादयः ॥

३५-अजाद्यतष्टाप् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ४ ॥

अजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽकारान्ताच्च स्त्रियां टाप् प्रत्ययो भवति । अजा । देवदत्ता । अदितितपरकरणं तत्कालार्थम् । कीलालपाः, ब्राह्मणी । अत्र टाप् न भवति अजादिग्रहणं तु जात्यादिलक्षणस्य ङीषादेर्बाधनार्थम् :—

अजा । एडका । चटका । अश्वा । मूषिका (१) । बाला । होढा । पाका । वत्सा-मन्दा । विलाता । पूर्वापहरणा । अपरापहरणा (२) ॥ संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् ॥ संफला । (३) भस्त्रफला । अजिनफला । शणफला । पिण्डफला । सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यःपुष्पात् ॥ (४) सत्पुष्पा । प्राक्पुष्पा । प्रत्यक्पुष्पा । काण्डपुष्पा । प्रान्तपुष्पा । शतपुष्पा । एकपुष्पा ॥ शूद्राचामहत्पूर्वा जातिः ॥ (५) क्रुञ्चा । उष्णिहा । देवविशा (६) ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमा । (७) कोकिला । (८) मूलान्नञः । (९) अमूला । इत्यजादयः ॥

---

(१) अजादिभ्यः पञ्चभ्यो जातिलक्षणो यो ङीष् प्राप्तः स बाध्यते ॥

(२) बालादिभ्यः षड्भ्यो वयसि ङीप् प्राप्तः ॥

(३) आभ्यां टिल्लक्षणो ङीप् प्राप्तः ॥

(४) समादिभ्यः फलात् सदादिभ्यश्चपुष्पाद् बहुव्रीहौ यः पाककर्णेति सूत्रेण ङीष् प्राप्तः स बाध्यते ॥

(५) अमहत्पूर्वाच्छूद्रशब्दाज्जातौ टाप् । शूद्रा । पुंयोगे तु ङीषेव शूद्रस्य स्त्री शूद्री । अमहदिति किम् । महाशूद्री ॥

(६) क्रुञ्चादिभ्यास्त्रिभ्योऽप्राप्तष्टाब् विधिः ॥

(७) ज्येष्ठादिभ्यास्त्रिभ्यः पुंयोगे ङीष् प्राप्तोऽनेन बाध्यते ज्येष्ठस्य भार्या ज्येष्ठा ॥

(८) कोकिलशब्दाज्जातिलक्षणो ङीष् प्राप्तः ॥

(९) मूलशब्दाद् बहुव्रीहौ पाककर्णेति ङीष् प्राप्तः । नास्तिमूलमस्या सा अमूला

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३६– न षट्स्वस्रादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । १ । १० ॥

षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रीप्रत्ययो न भवति, सप्त । अष्ट । स्वसा । दुहिता । ननान्दा । याता । माता । तिस्रः । चतस्रः । इति स्वस्रादयः ॥

३७–षिद्गौरादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ४१ ॥

षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति । नर्त्तकी । खनकी । रजकी । गौरादिभ्यः । गौरी । मत्सी :–

गौर । मत्स्य । मनुष्य । शृङ्ग । हय । गवय । मुकय । ऋष्य । पुट । द्रुण । द्रोण । हरिण । कण । पटर । उकण । आमलक । कुवल । बदर । बिम्ब । तर्कार । शर्कार । पुष्कर । शिखण्ड । सुषम । सलन्द । गडुज । आनन्द । सृपाट । सृगेठ । आढक । शष्कुल । सूर्म । सुब । सूर्य । पूष । मूष । घातक । सकलूक । सल्लक । मालक । मालत । सात्वक । वेतस । अतस । पृस । मह । मठ । छेद । श्वन् । तक्षन् । अनडुही । अनडुवाही । एषण, करणे । देह । काकादन । गवादन । तेजन । रजन । लवण । पान । मेध । गौतम । आप । स्थूण । भौरि । भौलिक । भौलिङ्गि । औद्गाहमानि । आलिङ्गि । आपिच्छिक । आरट । टोट । नट । नाट । मूलाट । ज्ञातन । पातन । पावन । आस्तरण । अधिकरण । एत । अधिकार । आग्रहायणी । प्रत्यवरोहिणी । सेवन । सुमङ्गलात् संज्ञायाम् । सुन्दर । मण्डल । पट । पिण्ड । विटक । कुर्द । गूर्द । पाण्ट । लोफाण्ट । कन्दर । कन्दल । तरुण । तलुन । बृहत् । महत् । सौधर्म । रोहिणी, नक्षत्रे रेवती, नक्षत्रे । विकल । निष्कल । पुष्कल ॥ कटाच्छ्रोणिवचने ॥ पिङ्गल । भट्ट । दहन । कन्द । काकण । पिप्पल्यादयश्च । पिप्पली । हरीतकी । कोशातकी । शमी । करीरी । पृथिवी । क्रोष्ट्री । मातामह (१) । पितामह । इति गौरादयः ॥

३८—बह्वादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ४५ ॥

बह्वादिप्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां वा ङीष् प्रत्ययो भवति । बह्वी । बहुः ।

बहु । पद्धति । अङ्कति । अञ्चति । अंहति । वहति । शकटि ॥ शक्तिः शस्त्रे ॥ शारि । वारि । गति । अहि । कपि । मुनि । यष्टि ॥ इतः प्राण्यङ्गात् ॥ कृदिकाराद-

(१) अत्र डामहच् प्रत्ययस्य षित्वादेव ङीषि सिद्धे पुनः पाठेन षिल्लक्षणस्य ङीषोऽनित्यत्वं ज्ञाप्यते तेन दंष्ट्रा, इति सिद्धं भवति । पृथिवीशब्दे औणादिकः षिवन् प्रत्ययस्य षित्वान् ङीषि सिद्धे उणादीनामव्युत्पन्नत्वज्ञापनार्थः पाठः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्तिनः ॥ सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके (१) ॥ चण्ड । अराल । कमल । कृपाण । विकट । विशाल । विशंकट । भरुज । ध्वज ॥ चन्द्रभागान्नद्याम् ॥ चन्द्रभागी । कल्याण । उदार । पुराण । अहर् ॥ इति बह्वादयः ॥

३९—न क्रोडादिबह्वचः ॥ अ० ॥ ४ । १ । ५६ ॥

क्रोडाद्यन्ताद् बह्वजन्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो न भवति । स्वाङ्गादिति प्राप्तः प्रतिषिध्यते । शोभनक्रोडा । शोभनखुरा । पृथुजघना :—

क्रोड । खुर । बाल । शफ । गुद । घोण । नख । मुख । भग । गल । आकृतिगणोऽयम् । इति क्रोडादयः ॥

४०—शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ७३ ॥

शार्ङ्गरवादिभ्योऽञन्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीन् प्रत्ययो भवति । शार्ङ्गरवी । बैदी । जातिग्रहणमत्रानुवर्त्तते तेन जातिलक्षणो ङीषनेन बाध्यते न पुंयोगलक्षणः :—

शार्ङ्गरव । कापटव । गौगुलव । ब्राह्मण । गौतम । कामण्डलेय । ब्राह्मकृतेय । आनिचेय । आनिधेय । आशोकेय । वात्स्यायन । माञ्जायन । कैकसेय । काव्य । शैव्य । एहि । पर्य्येहि । आश्मरथ्य । औदपान । अराल । चण्डाल । वतण्ड । भोगवद्गौरिमतोः संज्ञायाम् ॥ भोगवती । गौरिमती ॥ नृनरयोर्वृद्धिश्च ॥ नारी । इति शार्ङ्गरवादयः ॥

४१—कौड्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ८० ॥

कौड्यादिप्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ष्यङ् प्रत्ययो भवति । अगुरूपोत्तमार्थ आरम्भः । कौड्या । लाड्या :—

कौडि । लाडि । व्याडि । आपिशलि । आपक्षिति । चौपयत । चैटयत । शैकयत । वैल्वयत । वैकल्पयत । सौधातकि ॥ सूतात् युवत्याम् ॥ सूत्या, युवतिः ॥ भोज, क्षत्रिये ॥ भोज्या, क्षत्रिया । भौरिकि । भौलिकि । शाल्मलि । शालास्थलि । कापिष्ठलि । गौकक्ष्य ॥ इति कौड्यादयः ॥

(१) इकारान्तात् प्राण्यङ्गवाचकान् ङीष् भवति । अङ्गुली । इकारान्तात् कृदन्तात् स्त्रियां ङीष् । कृषी । भूमी । वापी । केषांचिन्मते क्तिन्नधिकारस्थादिकारान्तमात्रादेव ङीष् न भवति । तदा कृषिः । वापिः । इत्येव ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४२–अश्वपत्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ८४ ॥

अश्वपत्यादिप्रातिपदिकेभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्वण् प्रत्ययो भवति। पत्युत्तरपदात्। प्राप्तस्य ण्यस्यापवादः । आश्वपतम् । शातपतम् :–

अश्वपति । शतपति । धनपति । गणपति । राष्ट्रपति। कुलपति। गृहपति। धान्यपति । पशुपति । धर्मपति। सभापति । प्राणपति । क्षेत्रपति । स्थानपति । यज्ञपति । धन्वपति । अधिपति । बन्धुपति । इत्यश्वपत्यादयः ॥

४३–उत्सादिभ्योऽञ् । अ० ॥ ४ । १ । ८६ ॥

उत्सादिभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्वञ् प्रत्ययो भवति । औत्सः । औदपानः । अणस्तदपवादानां च बाधकः :–

उत्स । उदपान । विकर । विनोद।महानद । महानस । महाप्राण । तरुण । तलुन । वष्कयासे । (१) ॥ धेनु । पृथिवी । पङ्क्ति । जगती । त्रिष्टुप् । अनुष्टुप् । जनपद । भरत । उशीनर । ग्रीष्म । पीलु । कुल । उदस्थान, देशे ॥ पृष, दंशे (२) ॥ भल्लकीय । रथन्तर । मध्यन्दिन । बृहत् । महत् । सत्वन्तु (३) । कुरु । पञ्चाल। इन्द्रावसान । उष्णिक् । ककुप् । सुवर्ण । सुपर्ण । देव । ग्रीष्मादच्छन्दसि (४) ॥ इत्युत्सादयः ॥

४४—बाह्वादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ९६ ॥

बाह्वादिशब्देभ्योऽपत्यसामान्ये इञ् प्रत्ययो भवति । बाहोरपत्यं बाहविः । सौमित्रिः । इत्यादि :—

बाहु । उपबाहु । विवाकु । शिवाकु । बटाकु । उपबिन्दु । । वृक । चूडाला । मूषिका । बलाका । भगला । छगला । ध्रुवका । धुवका । सुमित्रा । दुर्मित्रा । पुष्करसत् । अनुहरत् । देवशर्मन् । अग्निशर्मन् । कुनामन् । सुनामन् । पञ्चन् । सप्तन् । अष्टन् ॥ अमितौजसः सलोपश्च (५)॥ उदञ्चु । शिरस् । शराविन् । क्षेमवृद्धिन । शृङ्खला-

(१) वष्कयशब्दादसेऽर्थात् केवलादेवाञ् । तदन्तात्त्वणेव भवति ॥

(२) उदस्थानशब्दाद्देशार्थ एवाञ् । अन्यार्थेऽणेव भवति । एवमन्यत्रापि ॥

(३) अत्र सत् शब्दान्मतुप्–सत्वन्, तु, अव्ययम् । सत्वतोऽपत्यं सात्वताः ॥

(४) अत्र छन्दःशब्देन वृत्तं गृह्यते न तु वेदः । ततोऽन्यत्राञ् ॥

(५) अमितौजसोऽपत्यमामितौजिः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तोदिन् । खरनादिन् । नगरमर्दिन् । प्राकारमर्दिन् । लोमन् । अजीगर्त्त । कृष्ण । सलक । युधिष्ठिर । अर्जुन । साम्ब । गद । प्रद्युम्न । राम । उदङ्कः संज्ञायाम् ॥सम्भूयोऽम्भसोः सलोपश्च ॥ (१) आकृतिगणोऽयम् (२) ॥ इति बाह्वादयः ॥

४५–गोत्रेकुञ्जादिभ्यश्च्फञ् ॥अ० ॥ ४ । १ । ९८ ॥

गोत्रसंज्ञकेऽपत्ये वाच्ये कुञ्जादिभ्यश्च्फञ् प्रत्ययो भवति । इञोऽपवादः । कुञ्जस्य गोत्रापत्यं कौञ्जायन्यः । कौञ्जायन्यौ । कौञ्जायनाः । स्वार्थे ञ्यस्तस्य तद्राजत्वाद्बहुषु लुक् । गोत्र इति किम् । कुञ्जस्यानन्तरापत्यं कौञ्जिः :—

कुञ्ज । ब्रध्न । शङ्ख । भस्मन् । गण । लोमन् । शठ । शाक । शाकट । शुण्डा । शुभ । विपाश । स्कन्द । स्कम्भ । शुम्भा । शिव । शुभंया । इति कुञ्जादयः ॥

४६–नडादिभ्यः फक् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ९९ ॥

नडादिप्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये फक् प्रत्ययो भवति । नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः । चारायणः :—

नड । चर । बक । मुञ्ज । इतिक । इतिश । उपक । लमक ॥ शलङ्कुशलङ्कञ्च (३) ॥ सप्तल । वाजप्य । तिक । अग्निशर्मन् वृषगणे । प्राण । नर । सायक । दास । मित्र । द्वीप । पिङ्गर । पिङ्गल । किङ्कर । किङ्कल । कातर । कातल । काश्य । काश्यप । काव्य । अज । अमुष्य ॥ कृष्णरणौ ब्राह्मणवासिष्ठयोः (४) ॥ अमित्र । लिगु । चित्र । कुमार ॥ क्रोष्टु क्रोष्टञ्च (५) ॥ लोह । दुर्ग । स्तम्भ । शिंशपा । अग्र । तृण । शकट । सुमनस् । सुमत । मिमत । ऋक् । जत् । युगन्धर । हंसक । दण्डिन् । हस्तिन् । पञ्चाल । चमसिन् । सुकृत्य । स्थिरक । ब्राह्मण । चटक । बदर । अश्वक । खरप । कामुक । ब्रह्मदत्त । उदुम्बर । शोण । अलोह । दण्ड । एक । वानव्य । शावक । नाव्य । अन्वजत् । अन्तजन । इत्वरा । अशक । अश्वला । अध्वरादण्डय । इति नडादयः ॥

---

(१) सम्भूयसोऽपत्यं साम्भूयिः । आम्भिः ॥

(२) सूत्रस्थचकारेणात्राऽऽकृतिगणत्वं बोध्यते । तेन । जाम्बिः । ऐन्द्रशर्म्मिः । आजधेनविः । आजबन्धविः । औडुलोमिः । इत्यादिष्विञ् सिद्धो भवति ॥

(३) शलङ्कु शब्दस्य शलङ्कादेशः । शलङ्कोरपत्यं शालङ्कायनः ॥

(४) कृष्णस्यापत्यं कार्ष्णायनो ब्राह्मणः । राणायनो वासिष्ठः ॥

(५) क्रोष्टोरपत्यं क्रौष्टः ॥

For Private And Personal Use Only

४७-अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । १०४ ॥

विदादिप्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽञ् प्रत्ययो भवति । येऽत्र गणेऽनृषिवाचकास्ते-भ्यस्त्वनन्तरापत्य एव । विदस्य गोत्रापत्यं वैदः । पुत्रस्यानन्तरापत्यं पौत्रः । दौहित्रः :-

विद । उर्व । कश्यप । कुशिक । भरद्वाज । उपमन्यु । किलालप । किदर्भ । विश्वानर । ऋष्टिषेण । ऋतभाग । हर्यश्व । प्रियक । आपस्तम्ब । कूचवार । शरद्वत् । शुनक । धेनु । गोपवन । शिग्रु । बिन्दु । भाजन । अश्वावतान । श्यामाक । श्यमाक । श्यापर्ण । हरित । किन्दास । वह्यस्क । अर्कलूष । वध्योष । विष्णुवृद्ध । प्रतिबोध । रथन्तर । रथीतर । गविष्ठिर । निषाद । मठर । मृद । पुनर्भू । पुत्र । दुहितृ । ननान्दृ । परस्त्री,परशुंच (१) ॥ किता । सम्वक । शावली । श्यायक । अलस । इति विदादयः

४८-गर्गादिभ्यो यञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । १०५ ॥

गर्गादिभ्योऽन्तरे गोत्रापत्ये यञ् प्रत्ययो भवति । गार्ग्यः । अनन्तरापत्ये तु गार्गि-रित्येव :-

गर्ग । वत्स । वाजाऽसे (२) संकृति । अज । व्याघ्रपात् । विदभृत् । प्राचीनयोग । अगस्ति । पुलस्ति । रेभ । अग्निवेश । शङ्ख । शठ । धूम । अवट । चमस । धनञ्जय । मनस । वृक्ष । विश्वावसु । जनमान । लोहित । संशित । बभ्रु । मण्डु । मक्षु । अलिगु । शङ्कु । लिगु । गुलु । मन्तु । जिगीषु । मनु । तन्तु । मनायी । भूत । कथक । कष । तण्ड । वतण्ड । कपि । कत । कुरुकत । अनडुह् । कण्व । शकल । गोकक्ष । अगस्त्य । कुण्डिन । यज्ञवल्क । उभय । जात । विरोहित । वृषगण । रहूगण । शण्डिल । वण । कचुलुक । मुद्गल । मुसल । पराशर । जतूकर्ण । मन्त्रित । संहित । अश्मरथ । शर्कराक्ष । पूतिमाष । स्थूण । अररक । पिङ्गल । कृष्ण । गोलुन्द । उलूक । तितिक्ष । भिषज् । भडित । भण्डित । दल्भ । चिकित । देवहू । इन्द्रहू । एकलू । पिप्पलु । वृदग्नि । जमदग्नि । सुलोभिन् । उकत्थ । कुटीगु ॥ इति गर्गादयः ॥

४९-अश्वादिभ्यः फञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ११० ॥

अश्वादिभ्यो गोत्रापत्ये फञ् प्रत्ययो भवति । आश्वायनः । आश्मायनः । येऽस्मिन् गणेऽपत्यैकप्रत्ययान्ताः पठ्यन्ते तेषु सामर्थ्याद्यूनिप्रत्ययो विज्ञायते :-

(१) परस्त्रिया अपत्यं पारशवः ॥

(२) असेऽसमासे वाजशब्दाद्यञ् । सवाजस्यापत्यं सौवाजिः । अत्र यञ् न भवति ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अश्व । अश्मन् । शङ्ख । विद । पुट । रोहिण । खर्जूर । खर्जूल । पिञ्जूर । भडिल । भण्डिल । भडित । भण्डित । भण्डिक । प्रहृत । रामोद । क्षत्र । ग्रीवा । काश । गोलाङ्क्य । अर्क । स्वन । ध्वन । पाद । चक्र । कुल । पवित्र । गोमिन् । श्याम । धूम । धूम्र । वाग्मिन् । विश्वानर । कुट । वेश । आत्रेय । नत्त । तड । नड । ग्रीष्म । अर्ह । विशम्य । विशाला । गिरि । चपल । चुनम । दासक । वैल्य । धर्म । आनडुह्य । पुंसिजात । अर्जुन । शूद्रक । सुमनस् । दुर्मनस् । क्षान्त । प्राच्य । कित । काण । चुम्प । श्रविष्ठा । वीक्ष्य । पविन्दा । कुत्स । आतव । कितव । शिव । खदिर ॥ आत्रेय, भारद्वाजे । भरद्वाज, आत्रेये (१) ॥ पथ । कन्थु । श्रुव । सूनु । कर्कटक । रुक्ष । तरुक्ष । तलुक्ष । प्रचुल । विलम्ब । विष्णुज । इत्यश्वादयः ॥

५०–शिवादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ११२ ॥

शिवादिभ्यः सामान्यापत्येऽण् प्रत्ययो भवति । यथाप्राप्तानामिञादीनामणपवादानां च बाधकः । शिवस्यापत्यं शैवः–

शिव । प्रौष्ठ । प्रोष्ठिक । चण्ड । मण्ड । जम्भ । मुनि । सन्धि । भूरि । कुठार । अनभिम्लान । अनभिग्लान । ककुत्स्थ । कहोड । लेख । रोध । खञ्जन । कोहड । पिष्ट । हेहय । खञ्जार । खञ्जाल । सुरोहिका । पर्ण । कहूष । परिल । वतण्ड । तृण । कर्ण । क्षीरहृद । जलहृद । परिषिक । जटिलिक । गोफिलिक । बधिरिका । मञ्जीरक । वृष्णिक । रेख । आलेखन । विश्रवण । रवण । वर्त्तनाक्ष । पिटक । पिटाक । तृक्षाक । नभाक । ऊर्णनाभ । जरत्कारु । उत्क्षिपा । रोहितिक । आर्यश्वेत । सुपिष्ट । खर्जूरकर्ण । मसूरकर्ण । तूनकर्ण । मयूरकर्ण । खडरक । तक्षन् । ऋष्टिषेण । गङ्गा । विपाशा । यस्क । लह्य । द्रुघ ' अयःस्थूण । भलन्दन । विरूपाक्ष । भूमि । इला । सपत्नी ॥ द्व्यचो नद्याः ॥ त्रिवेणी, त्रिवणं च (२) कहूवय । कबोध । परल । ग्रीवाक्ष । गोभिलिक । राजल । तडाक । वडाक । इति शिवादयः ॥

५१–शुभ्रादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । १२३ ॥

शुभ्रादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति । यथा प्राप्तमिञादीनामपवादः । शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेय :–

(१) आत्रेयशब्दाद् भारद्वाजगोत्रे फञ् । आत्रेयायणो भारद्वाजः । भारद्वाज शब्दादात्रेयगोत्रे फञ् । भारद्वाजायन आत्रेयः ॥

(२) स्त्रीवाचकाद् द्व्यच इति सूत्रेण ढक् प्राप्तः स नदीवाचकान्मा भूत् । रेवाया अपत्यं रैवः । त्रिवेण्यास्त्रिवणादेशो विशेषः । त्रिवेण्या अपत्यं त्रैवणः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शभ्र । विष्टपुर । ब्रह्मकृत । शतद्वार । शतावर । शलाका । शालाचल । शलाकाभ्रू । लेखाभ्रू । विमातृ । विधवा । कृकसा । रोहिणी । रुक्मिणी । दिशा । शालूक । अजवस्ति । शकन्धि । लक्षणश्यामयोर्वसिष्ठे (१) ॥ गोधा । कृकलास । अणीव । प्रवाहण । भरत । भारत । भारम । मृकण्डु । मघष्टु । मकष्टु । कर्पूर । इतर । अन्यतर । आलीढ । सुदत्त । सुचक्षस् । सुनामन् । कद्रु । तुद । अकशाप । कुमारिका । किशोरिका कुवेणिका । जिह्माशिन । परिधि । वायुदत्त । ककल । खट्वर । अम्बिका । अशोका । शुद्धपिङ्गला । खडोन्मत्ता । अनुदृष्टि । जरतिन् । बलिवर्दिन् । विग्रज । वीज । श्वन् । अश्मन् । अश्व । अजिर । स्थूल । सृकण्डू । मकथु । यमष्टु । कष्टु । सृकण्ड । मृकण्ड । गुद् । रूद् । कुशेरिका । शकल । शबल । उग्र । अजिन ॥ इतिशुभ्रादयः ॥

५२–कल्याण्यादीनामिनङ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । १२६ ॥

कल्याण्यादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति तस्मिन् सति इनङादेशः । कल्याण्या अपत्यं काल्याणिनेयः । सौभागिनेयः (२) । :–

कल्याणी । सुभगा । दुर्भगा । बन्धकी । अनुदृष्टि । अनुसृष्टि । जरती । बलीवर्दी । ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमा । परस्त्री । इति कल्याण्यादयः ॥

५३–गृष्ट्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । १३६ ॥

गृष्ट्यादिप्रातिपादिकेभ्योऽपत्ये ढञ् प्रत्ययो भवति । अणादीनामपवादः । गृष्टेरपत्यं गार्ष्टेयः । :—

गृष्टि । हृष्टि । हलि । बलि । विश्रि । कुद्रि । अजवस्ति । मित्रयु । फालि । अलि । दृष्टि । इति गृष्ट्यादयः ॥

५४–रेवत्यादिभ्यष्ठक् ॥ अ० ॥ ४ । १ । १४६ ॥

रेवत्यादिभ्योऽपत्ये ठक् प्रत्ययो भवति । ढगादीनामपवादः । रेवत्या अपत्यं रैवतिकः । :–

रेवती । अश्वपाली । मणिपाली । द्वारपाली । वृकवञ्चिन् । वृकग्राह । कर्णग्राह । दण्डग्राह । कुक्कुटाक्ष । वृकबन्धु । चामरग्राह । ककुदाक्ष ॥ इति रेवत्यादयः ॥

---

(१) लक्षणस्यापत्यं लाक्षणेयो वसिष्ठः । श्यामाया अपत्यं श्यामेयो वसिष्ठः । मानुषी वाचकात् श्यामाशब्दादण् प्राप्तः सोऽनेन बाध्यते ॥

(२) कल्याण्यादिभ्यो ढक् तु सिद्ध आदेशार्थं वचनम् । हृद्भगसिन्ध्वन्त इत्युभयपदवृद्धिः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५५–कुर्वादिभ्यो ण्यः ॥ अ० ॥ ४ । १ । १५१ ॥

कुर्वादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ण्यः प्रत्ययो भवति। कुरोरपत्यं कौरव्यः। काव्यः। :-

कुरु । गर्ग । मङ्गुष । अजमारक । रथकार । वावदूक । सम्राजः क्षत्रिये (१) कवि । मति । वाक् । पितृमत् । इन्द्रजालि । दामोष्णीषि । गणकारि । कैशोरि । कापिञ्जलादि । कुट । शलाका । मुर । एरक । अभ्र । दर्भ । केशिनी। वेनाच्छन्दसि ॥ शूर्पणाय । श्यावनाय । श्यावरथ । श्यावपुत्र । सत्यंकार । वडभीकार । शङ्कु । शाक । पथिकारिन् । मूढ । शकन्धु । कर्त्तृ । हर्त्तृ । शाकिन् । इनपिण्डी । विस्फोटक । काक । स्फाराटक । शाकिन् । घातकि । धेनुजि । बुद्धिकार । वामरथस्य कण्वादिवत् स्वरवर्जम् (२) । इतिकुर्वादयः ॥

५६–तिकादिभ्यः फिञ् ॥ ॥ अ० । ४ । १ । १५४ ॥

तिकादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये फिञ् प्रत्ययो भवति । तिकस्यापत्यं तैकायनिः । कैतवायनिः । :–

तिक । कितव । संज्ञा । बाल । शिखा । उरस् । शाट्य । सैन्धव । यमुन्द । रूप्य । ग्राम्य । नील । अमित्र । गौकक्ष्य । कुरु । देवरथ । तैतिल । औरस । कौरव्य । भौरिकि । भौलिकि । चौपयति । चैटयत । शैकयता । क्षैतयत । ध्वाजवत । चन्द्रमस् । शुभ । गङ्गा । वरेण्य । सुयामन् । आरद्ध । वह्यका । खल्य । वृष । (३) । लोमक । उदन्य । यज्ञ । ऋष्य । भीत । जाजल । रस । लावक । ध्वजवद् । वसु । बन्धु आबन्धका । सुपामन् ॥ इति तिकादयः ॥

५७–वाकिनादीनां कुक्च ॥ अ० ॥ ४। १। १५८ ॥

वाकिनादिशब्देभ्योऽपत्ये फिञ् प्रत्ययो भवति । तत्सन्नियोगेन चैषां कुगागमः वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायनिः :–

(१) सम्राट्शब्दात् क्षत्रिये वाच्ये ण्यो भवति सम्राजोऽपत्यं साम्राज्यः क्षात्रियः ॥

(२) वामरथशब्दाण् ण्यप्रत्ययो भवति कण्वादिवच्च स्वरवर्जकार्यमतिदिश्यते । कण्वादयो गर्गाद्यन्तर्गतास्तेभ्यः शैषिकोऽण् यथा काण्व्यस्येमे छात्राः काण्वाः । एवं वामरथादपि शैषिकोऽण् वामरथस्य छात्रा वामरथाः । बहुवचने यञ्वण्ण्यस्याऽपि लुक्। वामरथाः । यञश्चेति ङीप् । वामरथी । इत्यादि स्वरस्त्वन्तोदात्त एव ॥

(३) फिञ् प्रत्ययसम्बन्धे वृषशब्दस्य यकारान्तत्वं महाभाष्ये कृतम् । वृषस्यापत्यं वार्ष्यायणिः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वाकिन । गारेध । कार्कटच । काक । लङ्का ॥ चर्मिवर्मिणोर्नलोपश्च (१) । इति वाकिनादयः ॥

५८–वा०–कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनम् ॥ ४।१।१७५॥

कम्बोजादिशब्देभ्योऽपत्ये तद्राजनि विहितस्य लुग्भवति कम्बोजस्यापत्यं तद्राजो वा कम्बोजः :–

कम्बोज । चोल । केरल । शक । यवन । इति कम्बोजादयः ॥

५९–न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । १।१७८॥

प्राच्यक्षत्रियवाचकेभ्यो भर्गादिभ्यो यौधेयादिभ्यश्चोत्पन्नस्य तद्राजप्रत्ययस्य लुङ् न भवति । अतश्चेति प्राप्तः प्रतिषिध्यते । प्राच्य । पञ्चालानां राज्ञी पाञ्चाली । वैदेही । भार्गी । यौधेयी :–

भर्ग । करूष । केकय । कश्मीर । साल्व । सुस्थाल । उरश । कौरव्य । इति भर्गादयः ॥ यौधेय । शौभ्रेय । शौक्रेय । ग्रावाणेय । वार्त्तेय । धार्त्तेय । त्रिगर्त्त । भरत । उशीनर । इति यौधेयादयः ॥

६०–भिक्षादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ३८ ॥

षष्ठीसमर्थभिक्षादिशब्देभ्यः समूहार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । अजादिबाधनार्थमणग्रहणम् । भिक्षाणां समूहो भैक्षम् । गार्भिणम् :–

भिक्षा । गर्भिणी । क्षेत्र । करीष । अङ्गार । चार्मिन् । धर्मिन् । चर्मन् । धर्मन् । सहस्र । युवति । पदाति । पद्धति । अथर्वन् । अर्वन् । दक्षिणा । भूत । विषय । श्रोत्र ॥ वृक्षादिभ्यः खण्डः (२) ॥ वृक्षखण्डः । वृक्ष । तरु । पादप । इति भिक्षादयः ॥

६१–खण्डिकादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ४५ ॥

खण्डिकादिभ्यः समूहार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति । खण्डिकानां समूहः खाण्डिकम् :–

खण्डिका । वडवा ॥ क्षुद्रकमालवात्सेनासंज्ञायाम् ॥ (३) भिक्षुक । शुक । उलूक । श्वन् । युग । अहन् । वरत्रा । हलबन्ध । इति खण्डिकादयः ॥

---

(१) चार्मिकायणिः । वार्मिकायणिः ॥

(२) खण्डशब्दःपुस्तकान्तरपठितो न सर्वत्र क्वचित्तु वृक्षादिभ्यः षण्डः । इति पाठः । वृक्षषण्डः ॥

(३) क्षुद्राश्च मालवाश्चेति क्षत्रियद्वन्द्वः । ततः पूर्वेणैवाञिसिद्धे गोत्रवुञ् बाधनार्थं वचनम् । क्षुद्रकमालवानां समूहः क्षौद्रकमालवी सेना । सेनासंज्ञेतिनियमार्थम् । अन्यत्राञ् न भवति । क्षौद्रकमालवकम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

६२-पाशादिभ्यो यः ॥ अ० ॥ ४ । २ । ४९ ॥

षष्ठीसमर्थपाशादिभ्यः समूहार्थे यः प्रत्ययो भवति । पाशानां समूहः पाश्या रज्जुः । तृण्या :-

पाश । तृण । धूम । वात । अङ्गार । पोत । बालक । पिटक । पिटाक । शकट । हल । नड । वन । पाटलका । गल । इति पाशादयः ॥

६३-राजन्यादिभ्यो वुञ् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ५३ ॥

राजन्यादिप्रातिपदिकेभ्यो विषयो देश इत्येतस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति । राजन्यानां विषयो देशः, राजन्यकः :-

राजन्य । देवयान । शालङ्कायन । जालन्धरायण । आत्मकामेय । अम्बरीषपुत्र । वसाति । वैलूवान । शैलूष । उदुम्बर । बैल्वबल । आर्जुनायन । संप्रिय । दाक्षि । ऊर्णनाभ । आप्रीत । अब्रीड । वैतिल । वात्रक (१) इति राजन्यादयः ॥

६४-भौरिक्याद्यैषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ ॥ अ० ॥ ४ । २ । ५४ ॥

विषयो देश इत्येतस्मिन् विषये षष्ठीसमर्थभ्यो भौरिक्यादिभ्य ऐषुकार्यादिभ्यश्च यथासंख्यंविधल्भक्तलौ प्रत्ययौ भवतः । अणोऽपवादः । भौरिकीणां विषयो देशः, भौरिकिविधः । ऐषुकारिभक्तः ॥

भौरिकि । भौलिकि । वैपेय । चैटयत । काणेय । वाणिजक । कालिज । वालिज्यक । शैकयत । वैकयत । इति भौरिक्यादयः ॥ ऐषुकारि । सारस्यायन । चान्द्रायण । द्व्याक्षायण । त्र्यायण । औडायन । जौलायन । खाडायन । सौवीर । दासमित्रि । दासमित्रायण । शौद्रायण । दाक्षायण । शयण्ड । तार्क्ष्यायण । शौभ्रायण । सायण्डि । शौण्डि । वैश्वमाणव । वैश्वधेनव । नद । तुण्डदेव । अलायत । औलालायत । शौण्ड । शयाण्ड । वैश्वदेव ॥ इत्यैषुकार्य्यादयः ॥

६५-क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ६० ॥

तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन् विषये क्रतुविशेषवाचिभ्य उक्थादिभ्यः सूत्रान्ताच्च प्रातिपदिकाट् ठक् प्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः । अग्निष्टोममधीते वेद वा आग्निष्टोमिकः वाजपेयिकः । औक्थिकः । वार्त्तिकसूत्रमधीते । वार्त्तिकसूत्रिकः । सांग्रहसूत्रिकः :-

(१) अयमाकृतिगणस्तेन मालवानां विषयो देशः । मालवकः । वैराटकः । त्रैगर्त्तकः । इत्यादयः शब्दाः सिद्धा भवन्ति ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उकथ । लोकायत । न्याय । न्यास । निमित्त । पुनरुक्त । निरुक्त । यज्ञ । चर्चा । धर्म । क्रमेतर । श्लक्ष्ण । संहिता । पद । क्रम । संघात । वृत्ति । संग्रह । गुणागुण । आयुर्वेद ॥ द्विपदी, ज्योतिषि (१) ॥ अनुपद । अनुकल्प । अनुगुण । इत्युकथादयः ॥

६६–क्रमादिभ्यो वुन् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ६१ ॥

तदधीते तद्वेदेत्यर्थेक्रमादिभ्यो वुन् प्रत्ययो भवति । क्रममधीतेक्रमकः । पदकः :–

क्रम । पद । शिक्षा । मीमांसा । सामन् । इति क्रमादयः ॥

६७–वसन्तादिभ्यष्ठक् ॥ ४ । २ । ६३ ॥

तदधीते तद्वेदेत्यस्मिन् विषये वसन्तादिप्रातिपदिकेभ्यष्ठक् प्रत्ययो भवति । वसन्तसहचरितो ग्रन्थो वसन्तस्तमधीते वेद वा स वासन्तिकः । वार्षिकः । एवं सर्वत्र :–

वसन्त । वर्षा । शरद् । हेमन्त । शिशिर । प्रथम । गुण । चरम । अनुगुण, अपर्वन् । अथर्वन् । ॥ इतिवसन्तादयः ॥

६८—संकलादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ७५ ॥

संकलादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकोऽञ् प्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः । पुष्कला अस्मिन् सन्तीति पौष्कलो देशः । सिकताया अदूरभवो ग्रामः सैकतः । यथासम्भवमर्थसंबन्धः :—

संकल । पुष्कल । उद्वय । उडुप । उत्पुट । कुम्भ । विधान । सुदत्त । सुदत्त । सुभूत । सुनेत्र । सुपिङ्गल । सिकता । पूतीकी । पूलास । कूलास । पलाश । निवेश । गवेश । गम्भीर । इतर । शर्मन् । अहन् । लोमन् । वेमन् । वरुण । बहुल । सद्योज । अभिषिक्त । गोभृत् । राजभृत् । गृह । भृत । भल्ल । माल । (वृत्) इति संकलादयः ॥

६९–सुवास्त्वादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ७७ ॥

सुवास्त्वादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकोऽण् प्रत्ययो भवति । अञोऽपवादः । सुवास्तोरदूरं नगरं, सौवास्तवम् । सौवास्तवी नदी :–

सुवास्तु । वर्णु । भण्डु । खण्डु । कण्डु । सेचालिन् । कर्पूरिन् । शिखण्डिन् । गर्त्त । कर्कश । शटीकर्ण । कृष्ण । कर्क । कर्कन्धूमती । गोह्य । गाहि । अहिसक्थ । (वृत्) इति सुवास्त्वादयः ॥

(१) द्विपदीं ज्योतिःशास्त्रमधीते जानाति वा स द्वैपदिकः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

७०–वुञ्छणकठजिलसेनिरढञ्ण्ययफक्फिञिञ्ञ्यकक्ठको ऽरीहणकृशाश्वर्श्यकुमुदकाशतृणप्रेक्षाश्मसखिसंकाशबलपक्षकर्णसुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ॥ च० ॥ ४ । २ । ८० ॥

अरीहणादिसप्तदशगणस्थप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिका वुञादयः सप्तदशैव प्रत्यया यथासंख्येन भवन्ति । आदिशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । यथासम्भवमर्थसम्बन्धः । अरीहणादिभ्यो वुञ् । शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः शैरीषकः । अरीहणानां निवासो देश आरीहणकः :–

अरीहण । द्रुघण । खदिर । सार । भगल । उलन्द । सांपरायण । क्रौष्ट्रायण । भास्त्रायण । मैत्रायण । त्रैगर्त्तायन । रायस्पोष । विपथ । उद्दण्ड । उदञ्चन । खाडायन । खण्ड । वीरण । काशकृत्स्न । जाम्बवन्त । शिंशपा । किरण । रैवत । बैल्व । वैमतायन । मैमतायण । सौसायन । शाण्डिल्यायन । शिरीष । बधिर । वैगर्त्तायण । गोमतायण । सौमतायण । खाण्डायण । विपाश । सुयज्ञ । जम्बु । सुशर्म्म । इत्यरीहणादयः ॥ कृशाश्वादिभ्यश्छण् काशाश्वीयः । अरिष्टेन निर्वृतमारिष्टीयम् :–

कृशाश्व । अरिष्ट । अरीश्व । वेश्मन् । विशाल । रोमक । शवल । कूट । रोमन् । वर्वर । सुकर । सूकर । प्रतर । सदृश । पुरग । सुख । धूम । अजिन । विनता । वनिता । अवनत । विकुशास । अरुस् । अवयास । अयावस् । मौद्गल्य । इति कृशाश्वादयः ॥ ऋश्यादिभ्यः कः ॥ न्यग्रोधानामदूरभवं वनं न्यग्रोधकम् :–

ऋश्य । न्यग्रोध । शिरा । निलीन । निवास । निधान । निवात । निबद्ध । विबद्ध । परिगूढ । उपगूढ । उत्तराश्मन् । स्थूलबाहु । खादिर । शर्करा । अनडुह् । परिवंश । वेणु । वीरण । खण्ड । परिवृत्त । कर्दम । अंशु । इति ऋश्यादयः ॥ कुमुदादिभ्यष्ठच् ॥ बल्वजाः सन्त्यस्मिन् स बल्वजिको देशः :–

कुमुद । शर्करा । न्यग्रोध । उत्कट । इत्कट । गर्त्त । बीज । अश्वत्थ । बल्वज । परिवाप शिरीष । यवाष । कूप । विकङ्कत । कण्टक । कङ्कट । संकट । पलाश । त्रिक । कत । दशग्राम । इति कुमुदादयः ॥ काशादिभ्य इलः । काशाः सन्ति यत्र स काशिलो देशः :–

काश । वाश । अश्वत्थ । पलाश । पीयूष । विश । विस । तृण । नर । चरण । कर्दम । कर्पूर । कण्टक । गूह । आवास । नड । वन । बधूल । बर्बर । इति काशादयः ॥ तृणादिभ्यः शः ॥ तृणानि यत्र सन्ति स तृणशो देशः :—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तृण । नड । बुस । पर्ण । वर्ण । चरण । अर्ण । जन । बल । लव । वन । इति तृणादयः ॥ प्रेक्षादिभ्य इनिः । प्रेक्षयानिर्वृत्तः प्रेक्षी :—

प्रेक्षा । हलका । फलका । बन्धुका । ध्रुवका । क्षिपका । न्यग्रोध । इर्कुट । बुधका । संकट । कूपका । कर्कटा । सुकटा । मङ्कट । सुक । महा । इति प्रेक्षादयः ॥ अश्मादिभ्योरः । अश्मना निर्वृत्तः, अश्मरः :—

अश्मन् । यूष । रुष । मीन । दर्भ । वृन्द । गुड । खण्ड । नग । शिखा । यूथ । रुष । नद । नख । कोट । पाम । इत्यश्मादयः ॥ सख्यादिभ्यो ढञ् । सखायः सन्त्यत्र साखेयो देशः :—

सखि । सखिदत्त । वायुदत्त । गोहित । गोहिल । भल्ल । पाल । चक्रपाल । चक्रवाल । छगल । अशोक । करवीर । सीकर । सकर । सरस । समल । चर्क । वक्रपाल । उशीर । सुरस । रोह । तमाल । कदल । सप्तल । इति सख्यादयः ॥

संकाशादिभ्यो ण्यः । सांकाश्यम् । काम्पिल्यस्यादूरभवो ग्रामः काम्पिल्यः :—

संकाश । काम्पिल्य । समीर । कश्मर । शूरसेन । सुपथिन् । सक्थच । यूप । अंश । राग । अश्मन् । कूट । मलिन । तीर्थ । अगस्ति । विरत । चिकार । विरह । नासिका । इति संकाशादयः ॥ बलादिभ्यो यः प्रत्ययः । बलेन निर्वृत्तो बल्यः :—

बल । वुल । तुल । डल । डुल । कवल । वन । कुल । इति बलादयः ॥ पक्षादिभ्यः फक् प्रत्ययः । पक्षेण निर्वृत्तः पाक्षायणः :—

पक्ष । तुष । अण्ड । कम्बलिक । चित्र । अश्मन् । अतिस्वन् ॥ पथिन्, पन्थच (१)॥कुम्भ । सरिज । सारिक । सरक । सलक । सरस । समल । रोमन् । लोमन् । हंसका । लोमक । सकण्डक । अस्तिबल । यमल । हस्त । सिंहक । इति पक्षादयः । कर्णादिभ्यः फिञ् प्रत्ययः । कर्णस्य निवासः कार्णायनिः :—

कर्ण । वसिष्ठ । अलुश । शल । डुपद । अनडुह्य पाञ्चजन्य । स्थिरा । कुलिश । कुम्भी । जीवन्ती । जित्व । आण्डीवत् । अर्क । लूष । स्फिक् । ज्ञावत् । इतिकर्णादयः ॥ सुतङ्गमादिभ्य इञ् प्रत्ययो भवति । सुतङ्गमेन निर्वृत्तः सौतङ्गमिः ।

सुतङ्गम । मुनिचित्त । विप्रचित्त । महापुत्र । श्वेत । गडिक । शुक्र । विग्र । बीजवापिन् । श्वन् । अर्जुन । अजिर । जीव । इति सुतङ्गमादयः॥ प्रगदिन्नादिभ्यो ञ्यः प्रत्ययो भवति । प्रगदिनो यत्र सन्ति स प्रागद्यो देशः :—

प्रगदिन् । मगदिन् । शरदिन् । कलिव । खडिव । गडिव । चूडार । मार्जार ।

(१) पथोऽदूरभवं वनं पान्थायतनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोविदार ॥ इति प्रगदिन्नादयः ॥ वराहादिभ्यः कक् प्रत्ययः। वराहाः सन्ति यत्र स वाराहको देशः । पालाशकः :—

वराह । पलाश । शिरीष । पिनद्ध । स्थूण । विदग्ध । विभग्न । बाहु । खदिर । शर्करा । विनद्ध । निवद्ध । विरुद्ध । मूल । इति वराहादयः ॥ कुमुदादिभ्यष्ठक् प्रत्ययो भवति । कुमुदाः सन्ति यस्मिन् देशे स कौमुदिको देशः :—

कुमुद । गोमथ । रथकार । दशग्राम । अश्वत्थ । शाल्मली । कुण्डल । मुनिस्थूल । कूट । मुचुकर्ण । कुन्द । मधुकर्ण । शुचिकर्ण । शिरीष । इति कुमुदादयः ॥

७१—वरणादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ८२ ॥

वरणादिप्रातिपदिकेभ्य उत्पन्नस्य चातुरर्थिकप्रत्ययस्य लुब् भवति वरणानामदूरभवं नगरं वरणाः :—

वरणाः । पूर्वगोदौ । पूर्वेणगोदौ । अपरेणगोदौ । आलिङ्ग्यायन । पर्णी । शृङ्गी । शल्मलयः । सदाण्वी । वणिकि । वणिक् । जालपद । मथुरा । उज्जयिनी । गया । तक्षशिला । उरशा । आकृत्या (१) । इति वरणादयः ॥

७२—मध्वादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ८६ ॥

मध्वादिशब्देभ्यश्चातुरर्थिको मतुप्प्रत्ययो भवति । मध्वस्मिन्नस्तीतिमधुमान् :—

मधु । विस । स्थाणु । मुष्टि । हृष्टि । इक्षु । वेणु । रम्य । ऋक्ष । कर्कन्धु । शमी । किरीर । हिम । किशरा । शर्प्पणा । मरुत् । मरुव । दार्वाघाट । शर । इष्टका । तक्षशिला । शक्ति । आसन्दी । आसुति । शलाका । आमिषी । खडा । वेटा । इति मध्वादयः ॥

७३—उत्करादिभ्यश्छः ॥ अ० ॥ ४ । २ । ९० ॥

उत्करादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकश्छः प्रत्ययो भवति । यथासम्भवमर्थसम्बन्धः । अर्काणामदूरभवो ग्रामः , अर्कीयः :—

उत्कर । संफल । संकर । शफर । पिप्पल । पिप्पलीमूल । अश्मन् । अर्क । पर्ण । सुपर्ण । खलाजिन । इडा । अग्नि । तिक । कितव । आतप । अनेक । पलाश । तृणव । पिचुक । अश्वत्थ । शकाक्षुद्र । भस्त्रा । विशाला । अवरोहित । गर्त्त । शाल ।

(१) अत्र सूत्रस्थचकारेणाकृतिगणत्वं बुध्यते । तेन कटुकवदर्य्या अदूरभवो ग्रामः कटुकबदरी । शिरीषाः । काञ्ची इत्यादिषु लुप् सिद्धो भवति ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अन्य । जन्या । अजिन । मञ्च । चर्म्मन् । उत्क्रोश । शान्त । खदिर । शूर्पणाय । श्यावनाय । नैव । बक । नितान्त । वृक्ष । इन्द्रवृक्ष । आर्द्रवृक्ष । अर्जुनवृक्ष । इत्युत्करादयः ॥

७४-नडादीनां कुक् च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ९१ ॥

नडादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकश्छः प्रत्ययो भवति तस्मिन् सति कुगागमश्च । यथासंभवमर्थसंबंधः । नडाः सन्ति यत्र तन्नडकीयं वनम् :—

नड । प्लक्ष । बिल्व । वेणु । वेत्र । वेतस । तृण । इक्षु । काष्ठ । कपोत । कुञ्चाया ह्रस्वत्वं च (१) ॥ तक्षन्नलोपश्च ॥ इति नडादयः ॥

७५-कत्त्र्यादिभ्यो ढकञ् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ९५ ॥

कत्त्र्यादिशब्देभ्यः शेषार्थे ढकञ् प्रत्ययो भवति । कत्त्रौ भवः कात्त्रेयकः :—

कत्त्रि । उम्भि । पुष्कर । पुष्कल । मोदन । कुम्भी । कुण्डिन । नगर । वञ्जी । भक्ति । माहिष्मती । चर्मण्वती । वर्मती । ग्राम । उख्या । कुल्याया यलोपश्च (२) ॥ इति कत्त्र्यादयः ॥

७६-नद्यादिभ्यो ढक् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ९७ ॥

नद्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैषिको ढक् प्रत्ययो भवति । नद्यां भवं नादेयम् :—

नदी । मही । वाराणसी । श्रावस्ती । कौशाम्बी । नवकौशाम्बी । काशफरी । खादिरी । पूर्वनगरी (३) । पावा । मावा । साल्वा । दार्वा । दाल्वा । वासेनकी । वडवाया-वृषे ॥ इति नद्यादयः ॥

७७-प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् ॥ अ० ॥ ४ ।२।११० ॥

प्रस्थोत्तरपदात् पलद्यादिभ्यः कोपधाच्च प्रातिपदिकादण् प्रत्ययो भवति शैषिकः । मद्रीप्रस्थे भवो माद्रीप्रस्थः । माहकीप्रस्थः । पलद्यां भवः पालदः । पारिषदः । कोपधात् । नैलीनकः :—

पलदी । परिषत् । यकृल्लोमन् । रोमक । कालकूट । पटच्चर । वाहीक । कल-

(१) कुञ्चाः सन्त्यस्मिन् तत् कुञ्चकीयं वनम् । तक्षकीयो ग्रामः ॥

(२) कुल्यायां भवः कौलेयकः । यकारलोपः ॥

(३) पूर्वनगर्यां भवः पौर्वनगरेयः । अत्र-पूः । वन । गिरि । इतिपाठान्तरम् । तदा-पौरेयम् । वानेयम् । गैरेयमिति विभक्तं रूपत्रयं सिध्यति ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कीट । मलकीट । कमलकीट । कमलभिदा । कमलकीर । बाहुकीट । नैतकी । परिखा । शूरसेन । गोमती । उदपान । पद्म । कललकीट । कललकीकटा । गोष्ठी । नैषिकी । नैकेती । सक्तुलोमन् । इति पलद्यादयः ॥

७८—कण्वादिभ्यो गोत्रे ॥ अ० ॥ ४ । २ । १११ ॥

गोत्रप्रत्ययान्तकण्वादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकोऽण् प्रत्ययो भवति । काण्व्यस्येमे काण्वाश्छात्राः । गर्गाद्यन्तर्गताः कण्वादयः । अतएवात्र न लिख्यन्ते ॥

७९—काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ॥ अ० ॥ ४ । २ । ११६ ॥

काश्यादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकौ ठञ्ञिठौ प्रत्ययौ भवतः । प्रत्यययोर्ञकारविपर्ययभेदात् स्त्रीप्रत्यये विशेषः । ठञन्तान् ङीप् ञिठान्तात् तु टाबेव भवति । काश्यां भवः काशिकः । काशिकी । काशिका :—

काशि । चेदि । वैदि । संज्ञा । संवाह । अच्युत । मोहमान । शकुलाद । हस्तिकर्षू । कुदामन् । कुनामन् । हिरण्य । करण । गोधाशन । भौरिकि । भौलिङ्गि । अरिन्दम । सर्वमित्र । देवदत्त । साधुमित्र । दासमित्र । दासग्राम । सौधावतान । युवराज । उपराज । सिन्धुमित्र । देवराज । आपदादिपूर्वपदान्तात् कालान्तात् ॥ आपत्कालिकी । आपत्कालिका । और्ध्वकालिकी । और्ध्वकालिका । तात्कालिकी । तात्कालिका । इतिकाश्यादयः ॥

८०—धूमादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । १२७ ॥

देशवाचिभ्यो धूमादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः धूमे भवो धौमकः :—

धूम । खण्ड । खडण्ड । शशादन । आर्जुनाद । दाण्डायनस्थली । माहकस्थली । घोषस्थली । माषस्थली । राजस्थली । राजगृह । सत्रासाह । भक्षास्थली । मद्रकूल । गर्त्तकूल । आञ्जीकूल । द्व्याहाव । त्र्याहाव । संहीय । वर्वर । वर्चगर्त्त । विदेह । आनर्त्त । माठर । पाथेय । घोष । शिष्य । मित्र । वल । आराज्ञी । धार्त्तराज्ञी । अवयात । तीर्थ । कूलात्सौवीरेषु ॥ समुद्रान्नावि मनुष्ये च (१) ॥ कुक्षि । अन्तरीप । द्वीप । अरुण । उज्जयिनी । दक्षिणापथ । साकेत । मानवल्ली । वल्ली । सुराज्ञी । इति धूमादयः ॥

(१) समुद्रशब्दान्नावि मनुष्ये च वाच्ये वुञ् । समुद्रे भवा सामुद्रिका नौः । सामुद्रिको मनुष्यः । अन्यत्र सामुद्रं जलम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

८१–कच्छादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । १३३ ॥

कच्छादिदेशवाचिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकोऽण् प्रत्ययो भवति । वुञादेरपवादः । कच्छे भवः काच्छः :—

कच्छ । सिन्धु । वर्णु । गन्धार । मधुमत् । कम्बोज । कश्मीर । साल्व । कुरु । रङ्कु । अणु । अण्ड । खण्ड । द्वीप । अनूप । अजवाह । विजापक । कुलून । इति कच्छादयः ॥

८२–गहादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । १३८ ॥

गहादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकश्छः प्रत्ययो भवति अणञोरपवादः । अन्तःस्थे भव अन्तःस्थीयः :—

गह । अन्तःस्थ । सम । विषम । मध्यमध्यमं चाण् चरणे (१) उत्तम । अङ्ग । वङ्ग । मगध । पूर्वपक्ष । अपरपक्ष । अधमशाख । उत्तमशाख । समानशाख । एकग्राम । एकवृक्ष । एकपलाश । इष्वग्र । इष्वनीक । अवस्यन्दी । अवस्कन्द । कामप्रस्थ । खाडायनि । खाण्डायनी । कावेराणि । कामवेरणि । शैशिरि । शौङ्गि । आसुरि । आहिंसि । आमित्रि । व्याडि । वैदजि । भौजि । आढ्यश्वि । आनृशंसि । सौवि । पारकि । अग्निशर्मन् । देवशर्मन् श्रौति । आरटकि । वाल्मीकि । क्षेमवृद्धिन् । उत्तर । अन्तर ॥ मुखपार्श्वतसोर्लोपः ॥ जनपरयोः कुक् च ॥ देवस्य च ॥ वेणुकादिभ्यश्छण्(२) इति गहादयः ॥

८३–सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १६ ॥

सन्धिवेलादिभ्य ऋतुभ्यो नक्षत्रेभ्यश्च कालवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शैषिकोऽण् प्रत्ययो भवति । ठञोऽपवादः । अणुग्रहणं वृद्धाच्छस्य बाधनार्थम् । सन्धिवेलायां जातः सान्धिवेलः । ग्रैष्मः । तैषः । पौषः :—

सन्धिवेला । सन्ध्या । अमावास्या । त्रयोदशी । चतुर्दशी । पञ्चदशी । पौर्णमासी ।

(१) अस्यैव सूत्रस्य शेषवार्त्तिकप्रमाणेन पृथिवीमध्यशब्दस्य मध्यमादेशश्चरणेऽभिधेये निवासलक्षणोऽण् प्रत्ययः । अन्यत्र तु छ एव । पृथिवीमध्ये निवास एषां ते माध्यमाश्चरणाः । चरणादन्यत्र । मध्ये भवो मध्यमीयः ॥

(२) मुखपार्श्वयोस्तसन्तयोरन्त्यलोपः । मुखतोभवं मुखतीयम् । पार्श्वतीयम् । जने भवो जनकीयः । परकीयः । देवो भक्तिरस्य देवकीयः । वेणुकादिराकृतिगणः । वेणुकदेशे भवो वैणुकीयः । वैरणकीयः । पालाशकीयः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रतिपत् ॥ संवत्सरात् फलपर्वणोः ॥ सांवत्सरं फलम् । सांवत्सरं पर्व ॥ इति सन्धिवेलादयः ॥

८४–दिगादिभ्यो यत् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ५४ ॥

सप्तमीसमर्थदिगादिप्रातिपदिकेभ्यो भवार्थे यत् प्रत्ययो भवति । अणश्छस्य चापवादः । दिशि भवं दिश्यम् :–

दिश । वर्ग । पूग । गण । पक्ष । धाय्या । मित्र । मेधा । अन्तर । पथिन् । रहस् । अलीक । उखा । साक्षिन् । आदि । अन्त । मुख । जघन (१) । मेघ । यूथ । उदकात्संज्ञायाम् (२) न्याय । वंश । अनुवंश । विश । काल । अप् । आकाश । इति दिगादयः ॥

८५–वा०–ञ्यप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम् ॥४।३।५९॥

अव्ययीभावसंज्ञकेभ्यः परिमुखादिप्रातिपदिकेभ्यो ञ्यप्रत्ययो भवति । नियमार्थं वार्त्तिकमिदम् । सूत्रेण सामान्याऽव्ययीभावाद् ञ्यः प्राप्तो नियम्यते । परिमुखं भवं पारिमुख्यम् । पारिहनव्यम् । नियमादिह न भवति । उपकूलं भवमौपकूलम् :–

परिमुख । परिहनु । पर्योष्ठ । पर्युलूखल । औपमूल । खल । परिसीर । अनुसीर । उपसीर । उपस्थल । उपकलाप । अनुपथ । अनुखड्ग । अनुतिल । अनुशीत । अनुमाष । अनुयव । अनुयूप । अनुवंश । अनुस्वङ्ग । इति परिमुखादयः ॥

८६–वा०–अध्यात्मादिभ्यश्च ॥ ४ । ३ । ६० ॥

अध्यात्मादिभ्यो भवार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । अध्यात्मं भवमाध्यात्मिकम् :—

अध्यात्म । अधिदेव । अधिभूत । आकृतिगणोऽयम् । इत्यध्यात्मादयः ॥

८७–अण् ऋगयनादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ७३ ॥

षष्ठीसप्तमीसमर्थेभ्य ऋगयनादिप्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति । ऋगयने भवमार्गयनः । तस्य व्याख्यानो वा । अण्ग्रहणं बाधकबाधनार्थम् वास्तुविद्याया व्याख्यानो ग्रन्थो वास्तुविद्यः । अत्र छप्रत्ययो माभूत् :–

(१) मुखजघनशब्दाभ्यां शरीरावयवत्वादेव यति सिद्धे पुनरत्र दिगादिषु पाठोऽशरीरावयवार्थः । सेनामुखे भवः सेनामुख्यम् । सेनाजघन्यम् । सेनाया अग्रपश्चाद्भागौ गृह्येते । तदन्तविधिना यत् ॥

(२) उदके भवा उदक्या रजस्वला । संज्ञाग्रहणादिह न भवति । उदके भव औदको मत्स्यः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऋगयन। पदव्याख्यान। छन्दोमान। छन्दोभाषा। छन्दोविचिति। न्याय। पुनरुक्त। व्याकरण। निगम। वास्तुविद्या। अङ्गविद्या। क्षत्रविद्या। उत्पात। उत्पाद। संवत्सर। मुहूर्त्त। निमित्त। उपनिषद्। शिक्षा। छन्दोविजिनी। न्याय। निरुक्त। विद्या। उद्याव। भिक्षा। इति ऋगयनादयः॥

८८–शुण्डिकादिभ्योऽण्॥ अ०॥ ४। ३। ७६॥

पञ्चमीसमर्थशुण्डिकादिप्रातिपदिकेभ्य आगतार्थेऽण् प्रत्ययो भवति। शुण्डिकादागतः शौण्डिकः :–

शुण्डिक। कृकण। स्थण्डिल। उदपान। उपल। तीर्थ। भूमि। तृण। पर्ण। इति शुण्डिकादयः॥

८९–शण्डिकादिभ्यो ञ्यः॥ अ०॥ ४। ३। ९२॥

प्रथमासमर्थशण्डिकादिप्रातिपदिकेभ्योऽभिजनेऽभिधेये ञ्यः प्रत्ययो भवति शण्डिकोऽभिजनोऽस्य स शाण्डिक्यः :—

शण्डिक। सर्वकेश। सर्वसेन। शक। सट। रक। शङ्ख। बोध। इति शण्डिकादयः॥

९०–सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ॥ अ०॥ ४। ३। ९३॥

प्रथमासमानाधिकरणेभ्यः सिन्ध्वादिभ्यस्तक्षशिलादिभ्यश्चाभिजनेऽर्थे यथासंख्यमणञौ प्रत्ययौ भवतः। सिन्धुरभिजनोऽस्य स सैन्धवः। तक्षशिलाऽभिजनोऽस्य स ताक्षशिलः। प्रत्ययभेदः स्वरभेदार्थः :–

सिन्धु। वर्णु। गन्धार। मधुमत्। कम्बोज। कश्मीर। साल्व। किष्किन्धा। गब्दिका। उरस। दरत्। कुलून। दिरसा। इति सिन्ध्वादयः॥

तक्षशिला। वत्सोद्धरण। कौमेदुर। काण्डवारण। ग्रामणी। सरालक। कंस। किन्नर। संकुचित। सिंहकोष्ठ। कर्णकोष्ठ। बर्बर। अवसान। इतितक्षशिलादयः॥

९१–शौनकादिभ्यश्छन्दसि॥ अ०॥ ४। ३। १०६॥

तृतीयासमर्थशौनकादिप्रातिपदिकेभ्यश्छन्दसि वेदे प्रोक्तार्थे णिनिः प्रत्ययो भवति। छाणोरपवादः। शौनकेन प्रोक्तमधीयते, शौनकिनः। वाजसनेयिनः। छन्दसीति किम्। शौनकीया शिक्षा। अत्र छन्द एव भवति :—

शौनक। वाजसनेय। साङ्गरव। शाङ्गरव। सांपेय। शाखेय। खाडायन। स्कन्द।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्कन्ध । देवदत्तशठ । रज्जुकण्ठ । रज्जुभार । कठशाड । कशाय । तलक्कार । पुरुषासक । अश्वपेय । स्कम्भ । इति शौनकादयः ॥

९२–कुलालादिभ्यो वुञ् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ११८ ॥

तृतीयासमर्थकुलालादिप्रातिपदिकेभ्यो वुञ् प्रत्ययो भवति । कृतमित्येतस्मिन्नर्थे संज्ञायां गम्यमानायाम् । कुलालेन कृतं कौलालकम् । वारुडकम् :–

कुलाल । वरुड । चण्डाल । निषाद । कर्मार । सेना । सिरिध्र । सेन्द्रिय । देवराज । परिषत् । बधू । रुरु । ध्रुव । रुद्र । अनडुह् । ब्रह्मन् । कुम्भकार । श्वपाक । इति कुलालादयः ॥

९३–बिल्वादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ११६ ॥

षष्ठीसमर्थबिल्वादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति बिल्वस्य विकारोऽवयवो वा बैल्वः :–

बिल्व । ब्रीहि । काण्ड । मुद्ग । मसूर । गोधूम । इक्षु । वेणु । गवेधुका (१) कर्पासी । पाटली । कर्कन्धू । कुटीर ॥ इति बिल्वादयः ॥

९४–पलाशादिभ्यो वा ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १४१ ॥

पलाशादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरञ् प्रत्ययो भवति । पलाशस्य विकारः पालाशम् । खादिरम् :–

पलाश । खदिर । शिंशपा । स्यन्दन । करीर । शिरीष । यवास । विकङ्कत । इति पलाशादयः ॥

९५–नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १४४ ॥

वृद्धेभ्यःशरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भक्ष्याच्छादनयोर्विकारावयवयोर्भाषायां विषये नित्यं मयट् प्रत्ययो भवति । वृद्ध–आम्रमयम् । शालमयम् । शरमयम् । दर्भमयम्:–

शर । दर्भ । मृत् । कुटी । तृण । सोम । वल्वज । इति शरादयः ॥

९६—तालादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १५२ ॥

तालादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरण् प्रत्ययो भवति । तालस्य विकारः तालं धनुः । अन्यत्र तालमयम् । वृद्धत्वान्मयट् :–

(१) अस्मात्कोपधाच्चेत्यणि सिद्धे पुनःपाठो मयड्बाधनार्थः एतस्मिन् पक्षेऽपि मयण् मा भूदिति ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तालाद्धनुषि । बार्हिण । इन्द्रालिश । इन्द्रादृश । इन्द्रायुध । चाप । श्यामाक । पीयुक्षा ॥ इति तालादयः ॥

९७—प्राणिरजतादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १५४ ॥

प्राणिवाचिभ्यो रजतादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरञ् प्रत्ययो भवति। कपोतस्य विकारः कापोतम् । राजतम् :—

रजत । सीस । लोह । उदुम्बर । नीच । नील । दारु । रोहितक । बिभीतक । कपीत । दारु । तीव्रदारु । त्रिकण्टक । कण्टकार । इति रजतादयः ॥

९८—प्लक्षादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १६४ ॥

प्लक्षादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवत्वेन विवक्षिते फलेऽभिधेयेऽण् प्रत्ययो भवति। प्लक्षस्य विकारः प्लाक्षम् नैयग्रोधम् :—

प्लक्ष । न्यग्रोध । अश्वत्थ । इङ्गुदी । शिग्रु । कर्कन्धु । कर्कन्तु । ऋक्रतु । बृहती । काक्ष । तुरुरु ॥ इति प्लक्षादयः ॥

९९—हरीतक्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १६७ ॥

हरीतक्यादिप्रातिपदिकेभ्यः फलेऽभिधेये प्रत्ययस्य लुब् भवति । लुकि प्राप्ते लुपो विधानं युक्तवद्भावार्थम् । हरीतक्याः फलं हरीतकी । हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः (१) :—

हरीतकी । कोशातकी । नखरजनी । नखररजनी । शष्कण्डी । शाकण्डी । दाडी । दोडी । दडी । श्वेतपाकी । अर्जुनपाकी । काला । द्राक्षा । ध्वाङ्क्षा । गर्गरिका । कण्टकारिका । शेफालिका ॥ इति हरीतक्यादयः ॥

१००—पर्पादिभ्यः ष्ठन् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १० ॥

पर्पादिभ्यश्चरतीत्यर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति । षकारो ङीषर्थः । पर्पेण चरति, पार्पिकः । पर्पिकी :—

पर्प । अश्व । अश्वत्थ । रथ । जाल । न्यास । व्याल ॥ पादः पच्च ॥ पदिकः ॥ इति पर्पादयः ॥

(१) हरीतक्यादिषु व्यक्तिर्भवति युक्तवद्भावेनेति वार्त्तिकेन लिङ्गस्यैवयुक्तवद्भावो न तु वचनस्य ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१०१–वेतनादिभ्यो जीवति ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १२ ॥

तृतीयासमर्थवेतनादिप्रातिपदिकेभ्यो जीवतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । वेतनेन जीवति, वैतनिकः—

वेतन । वाह । अर्द्धवाह । धनुर्दण्ड (१) । जाल । वेस । उपवेस । प्रेषण उपस्ति । सुख । शय्या । शक्ति । उपनिषत् । उपवेष । स्रक् । पाद । उपस्थान । इति वेतनादयः ॥

१०२–हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १५ ॥

तृतीयासमर्थोत्सङ्गादिप्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । उत्सङ्गेन हरति, औत्सङ्गिकः :–

उत्सङ्ग । उडुप । उत्पत । पिटक । उडप । पिटाक । इत्युत्सङ्गादयः ॥

१०३–भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १६ ॥

भस्त्रादितृतीयासमर्थप्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्यर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति । भस्त्रया हरति, भस्त्रिकः , भस्त्रिकी :--

भस्त्रा । भरट । भरण । भारण । शीर्षभार । शीर्षेभार । अंसभार । अंसेभार । इति भस्त्रादयः ॥

१०४–निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १९ ॥

अक्षद्यूतादितृतीयासमर्थप्रातिपदिकेभ्यो निर्वृत्तेऽर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । अक्षद्यूतेन निर्वृत्तम्, आक्षद्यूतिकं वैरम् :--

अक्षद्यूत । जानुप्रहृत । जङ्घाप्रहृत । पादस्वेदन । कण्टकमर्दन । गतागत । यातोपयात । अनुगत । इत्यक्षद्यूतादयः ॥

१०५—अण् महिष्यादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ४ । ४८ ॥

षष्ठीसमर्थमहिष्यादिप्रातिपदिकेभ्यो धर्म्यमित्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति । महिष्या धर्म्यं माहिषम् :--

महिषी । प्रजावती । प्रलेपिका । विलेपिका । अनुलेपिका । पुरोहित । मणिपाली अनुचारक । होतृ । यजमान । इति महिष्यादयः ॥

---

(१) अत्र संघातविगृहीतयोर्ग्रहणं भवति । धनुर्दण्डेन जीवति धानुर्दण्डिकः । धनुषा जीवति धानुष्कः । दाण्डिकः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१०६—किशरादिभ्यः ष्ठन् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । ५३ ॥

प्रथमासमानाधिकरणकिशरादिप्रातिपदिकेभ्यः पण्यमित्यर्थे ष्ठन्प्रत्ययो भवति । गन्धविशेषवाचकाः किशरादयः । किशराः पण्यमस्य, किशरिकः । किशरिकी :—

किशर । नरद । नलद । सुमङ्गल । तगर । गुग्गुल । उशीर । हरिद्रा । हरिद्रायणी ॥ इति किशरादयः ॥

१०७—छत्रादिभ्यो णः ॥ ४ । ४ । ६२ ॥

प्रथमासमानाधिकरणछत्रादिप्रातिपदिकेभ्यः शीलमित्यर्थे णः प्रत्ययो भवति । इव शब्दस्यात्र लोपो द्रष्टव्यः । छत्रमिव शीलमस्य स छात्रः शिष्यः । छत्रवद्गुरुरत्तकः :—

छत्र । बुभुक्षा । शिक्षा । पुरोरु । स्था (१) । चुरा । उपस्थान । ऋषि । कर्मन् । विश्वधा । तपस् । सत्य । अनृत । शिविका । इति छत्रादयः ॥

१०८-प्रतिजनादिभ्यः खञ् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । ९९ ॥

सप्तमीसमर्थप्रतिजनादिप्रातिपादिकेभ्यः साधुरित्यस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति । प्रतिजने साधुः, प्रातिजनीनः । जने जने साधुरित्यर्थ : :—

प्रतिजन । इदंयुग । संयुग । समयुग । परयुग । परकुल । परस्यकुल । अमुष्यकुल । सर्वजन । विश्वजन । पञ्चजन । महाजन । इति प्रतिजनादयः ॥

१०९—कथादिभ्यष्ठक् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १०२ ॥

सप्तमीसमर्थकथादिप्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । कथायां साधुः काथिकः :—

कथा । विकथा । वितण्डा । कुष्टचित् । जनवाद । जनेवाद । वृत्ति । सद्गृह । गुण । गण । आयुर्वेद । इति कथादयः ॥

११०—गुडादिभ्यष्ठञ् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १०३ ॥

सप्तमीसमर्थगुडादिप्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । गुडे साधुः, गौडिक इक्षुः :—

गुड । कुल्माष । सक्तु । अपूप । मांसौदन । इक्षु । वेणु । संग्राम । संघात । प्रवास । निवास । उपवास । इति गुडादयः ॥

(१) अत्र स्थग्रहणेन सोपसर्गस्य ग्रहणमिष्यते । आस्था शीलमस्य स, आस्थः । सांस्थः । आवस्थः ॥

For Private And Personal Use Only

११९-उगवादिभ्यो यत् ॥ अ० ॥ ५ । १ । २ ॥

उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति । शङ्कवे हितं शङ्कव्यम् दारु । गवे हितं गव्यम् :-

गो । हविस् । बर्हिस् । खट । अष्टका । युग । मेधा । स्रक् ॥ नाभि नभं च ॥ शुनः संप्रसारणं वाच दीर्घत्वं तत्सनियोगेन चान्तोदात्तत्वम् (१) ॥ शुन्यम् । शून्यम् ॥ ऊधसोऽनङ् च ॥ ऊधन्यः । कूपः । उदर । खर । स्खद । अक्षर । विष । स्कन्द । अध्वा । इति गवादयः ॥

११२-विभाषा हविरपूपादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । ४ ॥

हविर्विशेषवाचिभ्योऽपूपादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु विभाषा यत् प्रत्ययो भवति । पक्षे छः । पुरोडाशाय हिताः पुरोडाश्याः पुरोडाशीया वा तण्डुलाः । अपूपेभ्यो हितं, अपूप्यम् । अपूपीयम् :-

अपूप । तण्डुल । अभ्यूष । अभ्योष । पृथुक । अभ्येष । अर्गल । मुसल । सूप । कटक । कर्णवेष्टक । किरव ॥ अन्नविकारेभ्यश्च (२) ॥ यूप । स्थूणा । पीप । अश्व । पत्र । कट । अयःस्थूण । ओदन । अवोष । प्रदीप । इत्यपूपादयः ॥

११३-असमासे निष्कादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । २० ॥

असमस्तेभ्यो निष्कादिप्रातिपदिकेभ्य आर्हीयेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति । निष्कं परिमाणमस्य तन्नैष्किकम् । असमासे किम् । परमनैष्किकम् । अत्र ठञ्स्वरे भेदः :-

निष्क । पण । पाद । माष । वाहद्रोण । षष्टि । इति निष्कादयः ॥

११४-गोद्व्यचोऽसङ्ख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् ॥ अ० ॥ ५ । १ । ३९ ॥

संख्यापरिमाणाश्वादि विवर्जिताद् गोशब्दाद् द्व्यचश्च प्रातिपदिकाद्यत् प्रत्ययो भवति । तस्य निमित्तं संयोगोत्पाताविव्यर्थे । गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा गव्यः । द्व्यच्-धनस्यनिमित्तं संयोग उत्पातो वा । धन्यम् । स्वर्ग्यम् । यशस्यम् । आयुष्यम् । संख्या

---

(१) नाभये हितो नभ्योऽक्षः । नभ्यमञ्जनम् । यस्तु शरीरावयववाची नाभि शब्दस्ततः शरीरावयवादिति यति कृते नाभये हितं नाभ्यम् तैलमिति भवति । चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वान्नस्तद्धित इति लोपो न भवति ॥

(२) अन्नविकारवाचिभ्यो यत् प्रत्ययो भवति । शष्कुलीभ्यो हितं शष्कुल्यम् । सूप्यम् । ओदन्यम् ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पञ्चानां निमित्तं पञ्चकम् । परिमाण — प्रास्थिकम् । अश्वादिः — आश्विकम् । सर्वत्र यत् न भवति :—

अश्व । अश्मन् । गण । ऊर्णा । उमा । वसु । वर्ष । भङ्ग । इत्यश्वादयः ॥

११५– तद्धरतिवहत्यावहतिभाराद्वंशादिभ्यः ॥ अ०॥५।१।५०॥

द्वितीयासमर्थाद् वंशादिभ्यः परस्माद् भारशब्दाद्धरत्यादिषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति । वंशभारं हरति वहत्यावहति वा, वांशभारिकः । कौटजभारिकः । भारादिति किम् । वंशं हरति । वंशादिभ्य इति किम् । व्रीहिभारं हरति । अत्र मा भूत् :–

वंश । कुटज । बल्वज । मूल । अक्ष । स्थूणा । अश्मन् । अश्व । इक्षु । खट्वा । इति वंशादयः ॥

११६—छेदादिभ्यो नित्यम् ॥ अ० ॥ ५ । १ । ६४ ॥

द्वितीयासमर्थछेदादि प्रातिपदिकेभ्यो नित्यमर्हतीत्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । छेदनं नित्यमर्हति । छैदिकः :—

छेद । भेद । द्रोह । दोह । वर्त । कर्ष । संप्रयोग । विप्रयोग । प्रेषण । संप्रश्न । विप्रकर्ष । विराग विरंगं च । वैरङ्गकः । इति छेदादयः ॥

११७—दण्डादिभ्यो यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । ६६ ॥

द्वितीयासमर्थदण्डादिप्रातिपदिकेभ्योऽर्हतीत्यर्थे यः प्रत्ययो भवति । दण्डमर्हति. दण्ड्यः :–

दण्ड । मुसल । मधुपर्क । कशा । अर्घ । मेधा । मेघ । युग । उदक । वध । गुहा । भाग । इभ । इति दण्डादयः ॥

११८– व्युष्टादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ५ । १ । ९७ ॥

सप्तमीसमर्थव्युष्टादिप्रातिपदिकेभ्यो दीयते कार्यमित्येतयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति । व्युष्टे दीयते कार्यं वा वैयुष्टम् :–

व्युष्ट । नित्य । निष्क्रमण । प्रवेशन । तीर्थ । संभ्रम् । आस्तरण । संग्राम । संघात । अग्निपद । पीलुमूल । प्रवास । उपसंक्रमण । दीर्घ । उपवास । इति व्युष्टादयः ॥

११९– तस्मै प्रभवति संतापादिभ्यः ॥ अ०॥५।१।१०१॥

चतुर्थीसमर्थसन्तापादिप्रातिपदिकेभ्यः प्रभवतीत्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । सन्तापाय प्रभवति, सान्तापिकः :–

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सन्ताप । संनाह । संग्राम । संयोग । संपराय । संपेष । निष्पेष । निसर्ग । असर्ग । विसर्ग । उपसर्ग । उपवास । प्रवास । संघात । संमोदन । सक्तु ॥ मांसौदनाद्विगृहीतादपि । मांसौदनिकः । मांसिकः । औदनिकः ॥ निर्घोष । सर्ग । संपात । संवाद । संवेशन । इति संतापादयः ॥

१२०–अनुप्रवचनादिभ्यश्छः ॥ अ० ॥ ५ । १ । १११ ॥

प्रथमासमानाधिकरणानुप्रवचनादिप्रातिपदिकेभ्यः प्रयोजनमित्यर्थे छः प्रत्ययो भवति अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य, अनुप्रवचनीयम् :—

अनुप्रवचन । उत्थापन । प्रवेशन । अनुप्रवेशन । उपस्थापन । संवेशन । अनुवेशन । अनुवचन । अनुवादन । अनुवासन । आरम्भण । आरोहण । प्ररोहण । अन्वारोहण । इत्यनुप्रवचनादयः ॥

१२१–पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२२॥

षष्ठीसमर्थेभ्यः पृथ्वादिप्रातिपदिकेभ्यो भावेऽर्थे इमनिच् प्रत्ययो वा भवति । वा वचनमणादेः समावेशार्थम् । पृथोर्भावः प्रथिमा । पार्थवम् । पृथुत्वम् । पृथुता :—

पृथु । मृदु । महत् । पटु । तनु । लघु । बहु । साधु । वेणु । आशु । बहुल । गुरु । दण्ड । ऊरु । खण्ड । चण्ड । बाल । अकिंचन । होड । पाक । वत्स । मन्द । स्वादु । ह्रस्व । दीर्घ । प्रिय । वृष । ऋजु । क्षिप्र । क्षुद्र । इति पृथ्वादयः ॥

१२२–वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ॥ अ० ॥५।१।१२३ ॥

वर्णविशेषवाचिभ्यो दृढादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे ष्यञ् चादिमनिच्प्रत्ययो भवति । शुक्लस्य भावः शौक्ल्यम् । शुक्लिमा । शुक्लत्वम् । शुक्लता । दार्ढ्यम् । द्रढिमा । दृढत्वम् । दृढता :—

दृढ । परिवृढ । भृश । कृश । वक्र । आम्र । लवण । ताम्र । अम्ल । शीत । उष्ण । जड । बधिर । पण्डित । मधुर । मूर्ख । मूक । वेर्यातलाभमतिमनःशारदानाम् ॥ समो मतिमनसोर्जवने (१) ॥ बाल । तरुण । मन्द । स्थिर । बहुल । दीर्घ । मूढ । आक्रुष्ट । इति दृढादयः ॥

१२३–गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥अ०॥ ५ । १ । १२४ ॥

(१) वेः परेभ्यो यातादिभ्यः ष्यञ् । वैयात्यम् । वैलाभ्यम् । वैमत्यम् । वैमनस्यम् ॥ वैशारद्यम् । समः पराभ्यां मतिमनोभ्यां वेगेऽर्थे ष्यञ् । साम्मत्यम् । साम्मनस्यम् ॥

For Private And Personal Use Only

गुणवचनेभ्यो ब्राह्मणादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चाभिधेये ष्यञ् प्रत्ययो भवति । जडस्यभावः कर्म वा जाड्यम् । ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा ब्राह्मण्यम् :—

ब्राह्मण । वाडव । माणव । चोर । मूक । आराधय । विराधय । अपराधय । उपराधय । एकभाव । द्विभाव । त्रिभाव । अन्यभाव । समस्थ । विषमस्थ । परमस्थ । मध्यमस्थ । अनीश्वर । कुशल । कपि । चपल । क्षेत्रज्ञ । निपुण । अर्हतो नुम् च ॥ आर्हन्त्यम् । संवादिन् । संवेशिन् । बहुभाषिन् । बालिश । दुष्पुरुष । कापुरुष । दायाद । विशसि । धूर्त । राजन् । संभाषिन् । शीर्षघातिन् । अधिपति । आलस । पिशाच । पिशुन । विशाल । गणपति । वनपति । नरपति । गडुल । नील । निवात । विष । सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे (१) ॥ चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च ॥ चातुर्वैद्यम् । स्वभाव । निवातिन् । विवातिन् । राजपुरुष । विशस्ति । विशाल । विशात । विभात । नयात । सुहित । दीन । विदग्ध । उचित । समग्र । शली । तत्पर । इदम्पर । यथातथा । पुरस् । पुनः । पुनर् । अभीक्ष्ण । तरतम । प्रकाम । यथाकाम । निष्कुल । स्वराज । महाराज । युवराज । सम्राज् । अविदूर । अपिशुन । अनृशंस । अयथातथ । अयथापुर । स्वधर्म । अनुकूल । परिमण्डल । विश्वरूप । ऋत्विज् । । उदासीन । ईश्वर । प्रतिभू । साक्षि । मानुष । आस्तिक । नास्तिक । युगपत् । पूर्वापर । उत्तराधर । इति ब्राह्मणादयः ॥

१२४–वा०–चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम् ॥अ०॥ ५ । १ । १२४ ॥

चत्वार एव वर्णाश्चातुर्वर्ण्यम् । चातुराश्रमम् :–

चतुर्वर्ण । चतुराश्रम । त्रिलोक । त्रिस्वर । षड्गुण । सेना । सन्निधि । समीप । उपमा । सुख । इति चतुर्वर्णादयः ॥

१२५–पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२८॥

षष्ठीसमर्थेभ्यः पत्यन्तेभ्यः पुरोहितादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोर्यक् प्रत्ययो भवति । सेनापतेर्भावः कर्म, सा सैन्यापत्यम् । प्राजापत्यम् । पुरोहितस्य भावः कर्म वा, पौरोहित्यम् :–

(१) सर्वे एव वेदाः सार्ववेद्यम् । सार्वलोक्यम् । सार्वराज्यम् । सार्वगुण्यम् । आकृतिगणोऽयम् ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुरोहित । राजन् । संग्रामिक । एषिक । वर्मित । खण्डिक । दण्डिक । छत्रिक । मिलिक । पिण्डिक । बाल । मन्द । स्तनिक । चण्डितिक । कृषिक । पूतिक । पत्रिक । प्रतिक । अजानिक । सलनिक । सूचिक । राकर । सूचक । पाण्डिक । सारथिक । जालिक सूतिक । अञ्जलिक । शर्मिक । चर्मिक । कार्मिक । शीलिक । मूलिक । तितिका । तिथ्विक । अज्जतिका । ऋषिक । पुत्रक । पथिका । प्रचिक । प्रविक । परिलक । पूजनिक ॥ राजाऽसे (१) । मूचिक । स्वरिक । चण्डिक ॥ इति पुरोहितादयः ॥

१२६–प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२९ ॥

प्राणभृज्जातिभ्यो वयोवचनेभ्यः उद्गात्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोरञ् प्रत्ययो भवति । अश्वस्य भावः कर्म वा, आश्वम् । औष्ट्रम् । कौमारम् । कैशोरम् । औद्गात्रम् :—

उद्गातृ । उन्नेतृ । प्रतिहर्त्तृ । रथगणक । पक्षिगणक । पत्रिगणक । सुष्ठु । दुष्ठु । अध्वर्यु । वधू ॥ सुभग मंत्रे (२) ॥ प्रशास्तृ । होतृ । पोतृ । कर्त्तृ । इत्युद्गात्रादयः ॥

१२७–हायनान्तयुवादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ५ । १ । १३० ॥

हायनान्तेभ्यो युवादिभ्यश्च षष्ठीसमर्थप्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति । द्विहायनस्य भावः कर्म वा, द्वैहायनम् । यूनो भावः कर्म वा यौवनम् :—

युवन् । स्थविर । होतृ । यजमान । कमण्डलु ॥ पुरुषाऽसे (३) ॥ सुहृत् । यातृ । श्रवण । कुस्त्री । सुस्त्री । सुहृदय । सुभ्रातृ । वृषल । दुर्भ्रातृ ॥ हृदयाऽसे (४) ॥ क्षेत्रज्ञ । कुतक । परिव्राजक । कुशल । चपल । निपुण । पिशुन । सब्रह्मचारिन् । कुतूहल । अनृशंस । भ्रातृ । कुचुक । कन्दुक । दुःस्त्री । दुर्हृदय । दुर्हृत् । मिथुन । कुलली । महस् । कतक । कितव । पोत ॥ इति युवादयः ॥

१२८–द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । १ । १३३ ॥

द्वन्द्वसंज्ञकेभ्यो मनोज्ञादिभ्यश्च षष्ठीसमर्थप्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोरर्थयोर्वुञ् प्र-

(१) राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम् । समासे तु ब्राह्मणादित्वात्ष्यञ् सौराज्यम् ॥

(२) सुभगस्य भावः सौभगो मंत्रः ॥

(३) पुरुषस्य भावः कर्म पौरुषम् सुपुरुषत्वमिति समासे ॥

(४) हार्दयम् । समासे तु परमहृदयत्वमित्येव ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्ययो भवति । गोपालपशुपालानां भावः कर्म वा, गौपालपशुपालिका । शैष्योपाध्यायिका । मनोज्ञस्य भावः कर्म वा, मानोज्ञकम् :–

मनोज्ञ । कल्याण । प्रियरूप । छान्दस । छात्र । मेधाविन् । अभिरूप । आढ्य । कुलपुत्र । श्रोत्रिय । चोर । धूर्त्त । वैश्वदेव । युवन् । ग्रामपुत्र । ग्रामखण्ड । ग्रामकुमार । अमुष्यपुत्र । अमुष्यकुल । शतपुत्र । कुशल । बहुल । अवश्य । अहोपुरुष ॥ इति-मनोज्ञादयः ॥

१२९—तस्य पाकमूलेपील्वादिकर्णादिभ्यः कुणञ्जाहचौ ॥ अ० ॥ ५ । २ । २४ ॥

पील्वादिभ्यः कर्णादिभ्यश्च षष्ठीसमर्थप्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं पाकमूलयोरर्थयोः कुणञ्जाहचौ प्रत्ययौ भवतः । पीलूनां पाकः पीलुकुणः । कर्णस्य मूलं, कर्णजाहम् :–

पीलु । कर्कन्धु । शमी । करीर । कुवल । बदर । अश्वत्थ । खदिर । इति पील्वादयः॥

कर्ण । अक्षि । नख । मुख । मख । केश । पाद । गुल्फ । भ्रूभङ्ग । दन्त । ओष्ठ । पृष्ठ । अङ्गुष्ठ ॥ इति कर्णादयः॥

१३०—तदस्य संजातं तारकादिभ्यइतच् ॥ अ०॥५।२।३६॥

प्रथमासमर्थेभ्यस्तारकादिप्रातिपादिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे इतच् प्रत्ययो भवति । तारकाः संजाता अस्य, तारकितं नभः । पुष्पितो वृक्षः संजातग्रहणप्रकृतिविशेषणम् :–

तारका । पुष्प । मुकुल । कण्टक । पिपासा । सुख । दुःख । ऋजीष । कुड्मल । सूचक । रोग । विचार । तन्द्रा । वेग । पुक्षा । श्रद्धा । उत्कण्ठ । भर । द्रोह । गर्भादप्राणिनि (१) ॥ फल । उच्चार । स्तवक । पल्लव । खण्ड । धेनुष्या । अभ्र । अङ्गारक । अङ्गार । वर्णक । पुलक । कुवलय । शैवल । गर्व । तरङ्ग । कल्लोल । पण्डा । चन्द । स्तवक । मुद्रा । राग । हस्त । कर । सीमन्त । कर्दम । कज्जल । कलङ्क । कुतूहल । कन्दल । आन्दोल । अन्धकार । कोरक । अङ्कुर । रोमाञ्च । हर्ष । उत्कर्ष । क्षुधा । ज्वर । गोर । दोह । शास्त्र । मुकुर । तिलक । बुभुक्षा । निद्रा । तारकादिराकृतिगणः ॥ इति तारकादयः ॥

१३१—विमुक्तादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ५ । २ । ६१ ॥

(१) गर्भिताः शालयः । अप्राणिनीतिवचनाद् गर्भिणी भार्या । इत्यत्रेतच्न भवति॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अध्यायानुवाकयोरभिधेययोर्विमुक्तादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थेऽण् प्रत्ययो भवति। विमुक्तं वर्त्ततेऽस्मिन् स वैमुक्तोध्यायोऽनुवाको वा। दैवासुरः :—

विमुक्त। देवासुर। वसुमत्। सत्वत्। उपसत्। दशार्हपयस। हविर्धान। मित्री सोमापूषन्। अग्नाविष्णू। वृत्रहति। इडा। रक्षोऽसुर। सदसत्। परिषादक्। वसु। मरुत्वत्। पत्नीवत्। महीयल। सत्वत् (१)। दशार्ह। वयस्। पतत्रि। सोम। महित्री। हेतु। अस्यहत्य। दशार्ण। उर्वशी। सुपर्ण। इति विमुक्तादयः॥

१३२—गोषदादिभ्यो वुन्॥ अ०॥ ५। २। ६२॥

अध्यायानुवाकयोरभिधेययोर्गोषदादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे वुन् प्रत्ययो भवति। गोषदशब्दो ऽस्मिन्नस्ति, गोषदकोऽध्यायोऽनुवाको वा। इषेत्वकः :—

गोषद। इषेत्वा। मातरिश्वन्। देवस्यत्वा। देवीरापः। कृष्णोऽस्याखरेष्ठः। दैवीधियम्। रक्षोहण। अञ्जन। प्रभूत। प्रतूर्त्त। दृशान। युञ्जान। सहस्रशीर्षा। वातस्पते। कृशास्व। स्वाहाप्राण। प्रसुस्त॥ इति गोषदादयः॥

१३३—आकर्षादिभ्यः कन्॥ अ०॥ ५। २। ६४॥

आकर्षादिभ्यः सप्तमीसमर्थप्रातिपदिकेभ्यः कुशल इत्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति। आकर्षे कुशल आकर्षकः :—

आकर्ष। त्सरु। पिपासा। पिचण्ड। अशनि। अश्मन्। निचय। चय। जय। आचय। अय। नय। निपाद। गद्गद। दीप। ह्रद। ह्राद। ह्लाद। शकुनि। पिशाच। पिण्ड॥ इत्याकर्षादयः॥

१३४—रसादिभ्यश्च॥ अ०॥ ५। २। ९५॥

प्रथमासमानाधिकरणरसादिप्रातिपदिकेभ्योऽस्यास्त्यस्मिन्नित्यर्थे मतुप् प्रत्ययो भवति। रसादिगुणवाचकेभ्योऽन्येमत्वर्थीयाः प्रत्यया माभूवन्निति सूत्रारम्भः। रूपिणी कन्येत्यत्र तु शोभापरत्वं रूपस्य। रसोऽस्मिन्नस्तीति, रसवान्। रूपवान् : —

रस। रूप। गन्ध। स्पर्श। शब्द। स्नेह। गुणात् एकाच (२)॥ इतिरसादयः॥

---

(१) सत्वदिति शब्दोऽस्मिन् गणे द्विवारं पठ्यते। यद्येकस्तालव्यादिर्भवेत्तदा तु युक्त मन्यथा प्रामादिकः पाठः॥

(२) अत्र गुणशब्दो। रसादीनां विशेषणम्। एकाच् शब्दादपि मतुप् भवति मत्वतइनिठनौ। स्ववान्। खवान्॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१३५–सिध्मादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ९७ ॥

सिध्मादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे विकल्पेन लच् प्रत्ययो भवति । सिध्मोऽस्यास्तीति सिध्मलः । सिध्मवान् । अत्र पक्षे मतुब्विष्यते नत्वत इनिठनौ :–

सिध्म । गडु । मणि । नाभि । जीव । निष्पाव । पांसु । सक्तु । हनु । मांस । परशु ॥ पार्ष्णिधमन्योर्दीर्घश्च ॥ पार्ष्णीलः । धमनीलः । पर्ण । उदक । प्रज्ञा । मण्ड । पार्श्व । गण्ड । ग्रन्थि । वातदन्तबललाटगलानामूङ् च ॥ वातूलः । दन्तूलः । बलूलः । ललाटूलः । गलूलः ॥ जटाघटाकालाः क्षेपे ॥ जटालः । घटालः । कालालः । सक्थि । कर्ण । स्नेह । शीत । श्याम । पिङ्ग । पित्त । शुष्क । पृथु । मृदु । मञ्जु । पत्र । चटु । कपि । कण्डु । संज्ञा । क्षुद्रजन्तूपतापाच्चेष्यते । क्षुद्रजन्तुः । यूकालः । मक्षिकालः । उपतापविचर्चिकालः । विपादिकालः । मूर्च्छालः । इति सिध्मादयः ॥

१३६–लोमादिपामादि पिच्छादिभ्यः शनेलचः ॥ अ० ॥ ५ । २ । १०० ॥

लोमादिभ्यः पामादिभ्यः पिच्छादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे यथासंख्यं श, न, इलच् इत्येते प्रत्यया भवन्ति । लोमान्यस्य सन्तीतिलोमशः । लोमवान् । पाम विद्यतेऽस्य स पामनः । पामवान् । पिच्छमस्यास्तीति पिच्छिलः । पिच्छलवान् :—

लोमन् । रोमन् । बलुगु । बभ्रु । हरि । कपि । शुनि । तरु । इति लोमादयः । पामन् । वामन् । हेमन् । श्लेष्मन् । कद्रु । बलि । श्रेष्ठ । पलल । सामन् । अङ्गात्कल्याणे ॥ शाकीपलालीदद्र्वा ह्रस्वत्वं च ॥ विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः ॥ लक्ष्म्या अच्च (१) ॥ इति पामादयः ॥ पिच्छ । उरस् । ध्रुवका । क्षुवका । जटाघटाकालात् क्षेपे (२) ॥ वर्ण । उदक । पङ्क । प्रज्ञा । इति पिच्छादयः ॥

१३७–व्रीह्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ११६ ॥

प्रथमासमानाधिकरणव्रीह्यादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इनिठनौ प्रत्ययो भवतः व्रीहयोऽस्य सन्तीति व्रीही । व्रीहिकः । व्रीहिमान् :—

(१) अङ्ग शब्दात्कल्याणे नः प्रत्ययः । कल्याणकरमंगं शरीरमस्याः सा, अङ्गना । शाकिनः । पलालिनः । दद्रुणः । विषु–अच् इत्यवस्थायां नः प्रत्ययस्तदैवोत्तरपदस्याज् भागस्य लोपः । विष्वगस्यास्तीति विषुणः । लक्ष्मी अस्यास्तीति लक्ष्मणः ।

(२) कुत्सिता जटा अस्य सन्तीति जटिलः । एवं घटिलः । कालिलः ॥

For Private And Personal Use Only

व्रीहि । माया । शिखा । मेखला । संज्ञा । बलाका । मालग वीणा । वडवा । अष्टका । पताका । कर्मन् । चर्मन् । हंसा (१) । यवखद । कुमारी । नौ (२) । शीर्षान्नञः ॥ अशीर्षी अशीर्षिका । इति व्रीह्यादयः ॥

१३८—तुन्दादिभ्य इलच्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ११७ ॥

तुन्दादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इलच्चकारादिनिठनौ मतुप् च प्रत्यया भवन्ति तुन्दोऽस्यास्तीति तुन्दिलः । तुन्दी । तुन्दिकः । तुन्दवान् :—

तुन्द । उदर । पिचण्ड । घट । यव । व्रीहि । स्वाङ्गाद्विवृद्धौ च (३) ॥ इति०

१३९—अर्श आदिभ्योऽच् ॥ अ०॥ ५ । २ । १२७ ॥

अर्श आदि प्रातिपदिकेभ्योमत्वर्थेऽच् प्रत्ययो भवति । अर्शांस्यस्य विद्यन्ते स, अर्शसः :—

अर्शस् । उरस् । तुन्द । चतुर । पलित । जटा । घटा । अभ्र । कर्दम । आम । लवण । स्वाङ्गाद्धीनात् ॥ वर्णात् (४) ॥ आकृतिगणोयम् । इत्यर्श आदयः ॥

१४०—सुखादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । १३१ ॥

सुखादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इनिः प्रत्ययो भवति । मतुबादीनामपवादः । सुखमस्यास्तीति सुखी । दुःखी :—

सुख । दुःख । तृप्त । कृच्छ्र । आस्र । अलीक । करुणा । कृपण । सोढ । प्रमीप । शील । हल ॥ माला क्षेपे (५) ॥ प्रणय । इति सुखादयः ॥

१४१—पुष्करादिभ्यो देशे ॥ अ० ॥ ५ । २ । १३५ ॥

पुष्करादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे देशेऽभिधेये इनिः प्रत्ययो भवति । पुष्करोऽस्मिन्निति पुष्करी देशः । पद्मी वा । देश इति किम् । पुष्करवान् हस्ती :—

(१) सिखादिभ्य इनिरेवेष्यते नतु ठक् ॥

(२) यवखदादिभ्यष्ठगेवेष्यते शेषादुभयम् ॥

(३) विवृद्ध्युपाधिभूतात् स्वाङ्गवाचिनः प्रातिपदिकादिलच् । दीर्घा नासिकाऽस्यास्तीति नासिकिलः । लम्बौकर्णौ यस्य स कर्णिलः । ओष्ठिलः ॥

(४) हीनशब्दात्परस्मात् स्वाङ्गादजेव स्यान्नतु मतुबादिः । अक्षिभ्यां हीनो हीनाक्षः । हीनहस्तः । हीनबाहवः । वर्णादिति श्वेतादेर्ग्रहणंनत्वकारादेः । श्वेतो वर्णोऽस्यास्तीति श्वेतः । नीलः । कालः । पीतः हरितः । इत्यादि ॥

(५) कुत्सिता मालाऽस्यास्तीति माली । मतुम्माभूत् प्रणयी ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुष्कर । पद्म । उत्पल । तमाल । कुमुद । नड । कपित्थ । बिस । मृणाल । कर्दम । शालूक । विगर्ह । करीष । शिरीष । यवास । प्रवास । हिरण्य । कैरव । कल्लोल । तरङ्ग । वयस । इति । पुष्करादयः ॥

१४२–बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥५ ।२।१३६॥

बलादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे विकल्पेन मतुप् पक्ष इनिः ठक् तु न भवति । बलमस्यास्तीति बलवान् । बली :—

बल । उत्साह । उद्भाव । उद्वास । उद्वाम । शिखाबल । वृगमूल । दंश । कुल आयाम । व्यायाम । उपयाम । आरोह । अवरोह । परिणाह । युद्ध ॥ इति बलादयः

१४३–देवपथादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०० ॥

देवपथादिप्रातिपदिकेभ्यो इवार्थे प्रतिकृतौ संज्ञायां च विहितस्य कन् प्रत्ययस्य लुब् भवति । देवपथस्येव प्रतिकृतिः, देवपथः । हंसपथः :—

देवपथ । हंसपथ । वारिपथ । जलपथ । राजपथ । शतपथ । सिंहगति । उष्ट्रग्रीवा । चामरज्जु । रज्जु । हस्त । इन्द्र । दण्ड । पुष्प । मत्स्य । रथपथ । शङ्कुपथ । सिंहपथ । आकृतिगणोऽयम् । इति देवपथादयः ॥

१४४–शाखादिभ्यो यत् ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०३ ॥

शाखादिप्रातिपदिकेभ्यो इवार्थे यत् प्रत्ययो भवति । शाखेव शाख्यः । मुख्यः :–

शाखा । मुख । जघन । शृङ्ग । मेघ । चरण । स्कन्ध । शिरस् । उरस् । अग्र । शरण । इति शाखादयः ॥

१४५–शर्करादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०७ ॥

शर्करादिप्रातिपदिकेभ्यो इवार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । शर्करेव, शार्करम् :–

शर्करा । कपालिका । पिष्टिका । कनिष्ठिक । कपिष्ठिक । पुण्डरीक । शतपत्र । गोलोमन् । गोपुच्छ । नरालि । नकुल । सिकता । इति शर्करादयः ॥

१४६–अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक् ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०८ ॥

अङ्गुल्यादिप्रातिपदिकेभ्यः इवार्थे ठक् प्रत्ययो भवति । अङ्गुलिरिवाङ्गुलिकः :–

अङ्गुलि । भरुज । बभ्रु । वल्गु । मण्डर । मण्डल । शष्कुल । कपि । उदश्वित् । गाणी । उरस् । शिखा । कुलिश । इत्यङ्गुल्यादयः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१४७—दामन्यादित्रिगर्त्तषष्ठाच्छः ॥ अ० ॥ ५ । ३ । ११६ ॥

दामन्यादिभ्यस्त्रिगर्त्तषष्ठेभ्यश्चायुधजीविसंघवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे छः प्रत्ययो भवति । त्रिगर्त्तः षष्ठो येषां ते त्रिगर्त्तषष्ठाः । दामन्येवदामनीयः । दामनीयौ । दामन्यः । तद्राजत्वाद् बहुवचने लुक् । त्रिगर्त्तषष्ठाः । कौण्डोपरथएव, कौण्डोपरथीयः । अन्यत्पूर्ववत् । दाण्डकि । कौष्टकि । जालमानि । ब्रह्मगुप्त । जानकि । इति त्रिगर्त्तषष्ठाः । अत्र जानकिरित्यस्यैव त्रिगर्त्तइति नामान्तरम्:—

दामनी । औलपि । आकिदन्ती । काकरन्ति । काकदन्ति । शत्रुन्तपि । सार्वसेनि । बिन्दु । मौञ्जायन । उलभ । सावित्रीपुत्र । अच्युतन्ति । कोकतन्ती । तुलभ । देववापि । औतकी । अपच्युतकी । कर्की । पिण्ड ॥ इति दामन्यादयः ॥

१४८—पर्श्वादियौधेयादिभ्यामणञौ ॥ अ० ॥ ५ । ३ । ११७ ॥

पर्श्वादिभ्यो यौधेयादिभ्य श्चायुधजीविसंघवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽणञौ प्रत्ययौ यथासंख्यं भवतः । पर्शुरेव, पार्शवः । यौधेयः :—

पर्शु । असुर । रक्षस् । वाल्हीक । वयस् । मरुत् । दशार्ह । पिशाच । विशाल । अशनि । कार्षापण । सत्वत् । वसु । इति पर्श्वादयः ॥

यौधेय । कौशेय । क्रौशेय । शौक्रेय । शौभ्रेय । धार्तेय । वार्तेय । जाबालेय । त्रिगर्त्त । भरत । उशीनर । इति यौधेयादयः ॥

१४९—स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ॥ अ० ॥ ५ । ४ । ३ ॥

स्थूलादिप्रातिपदिकेभ्यःप्रकारवचनेद्योत्येकन् प्रत्ययो भवति । स्थूलप्रकारः, स्थूलकः :—

स्थूल । अणु । माष । इषु ॥ कृष्णतिलेषु ॥ यवव्रीहिषु ॥ इक्षुतिलपाद्यकालवदाताः सुरायाम् ॥ गोमूत्र आच्छादने ॥ सुराया अहौ ॥ जीर्णशालिषु । पत्रमूले समस्तव्यस्ते (१) कुमारी पुत्र । कुमार । श्वशुर । मणि ॥ इति स्थूलादयः ॥

१५०—यावादिभ्यः कन् ॥ अ० ॥ ५ । ४ । २९ ॥

यावादिप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति । याव एव, यावकः :—

याव । मणि । अस्थि । चण्ड । पीतस्तम्ब । ऋतावुष्णशीते । पशौ लूनवियाते

(१) कृष्ण प्रकाराः कृष्णकास्तिलाः । यवका व्रीहयः । इक्षुका । तिलका । पाद्यका । कालका । अवदातका वासुरा । मूत्रकमाच्छादनम् । सुराकः सर्पः । जीर्णकाः शालयः । पत्रकं समस्तम् । मूलकं व्यस्तम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अणुनिपुणे । पुत्रकृत्रिमे ॥ स्नात वेदसमाप्तौ ॥ शून्यरिक्ते । दानकुत्सिते ॥ तनुसूत्रे ॥ (१) । ईयसश्च ॥ श्रेयस्कः । ज्ञात । कुमारीक्रीडनकानिच । इति यावादयः ॥

१५१-विनयादिभ्यष्ठक् ॥ अ० ॥ ५ । ४ । ३४ ॥

विनयादिप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति । विनय एव, वैनयिकः :--

विनय । समय । उपायाद्ध्रस्वत्वं च । औपयिकः । सङ्गति । कथंचित् । अकस्मात् । समयाचार । उपचार । समाचार । व्यवहार । सम्प्रदान । समुत्कर्ष । समूह । विशेष । अत्यय । अस्थि । कण्डु । इति विनयादयः ॥

१५२-प्रज्ञादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ४ । ३८ ॥

प्रजानातीति प्रज्ञः । प्रज्ञादिप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । प्रज्ञ एव प्राज्ञः । प्राज्ञी स्त्री । यस्यास्तु प्रज्ञा विद्यते सा प्राज्ञा भवति :--

प्रज्ञ । वणिक् । उशिक् । उष्णिक् । प्रत्यक्ष । विद्वस् । विदन् । षोडन् । षोडश । विद्या । मनस् । श्रोत्रशरीरे । श्रौत्रम् । जुह्वत् । कृष्णमृगे । कार्ष्णः । चिकीर्षत् । चोर । शत्रु । योध । वक्षस् । चक्षुस् । धूर्त । वसु । एनस् । मरुत् । क्रुञ्च् । राजा । सत्वन्तु । दशार्ह । वयस् । आतुर । असुर । रक्षस् । पिशाच । अशनि । कार्षापण । देवता । बन्धु ॥ इति प्रज्ञादयः ॥

१५३-द्विदण्ड्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १२८ ॥

द्विदण्ड्यादिशब्देषु बहुव्रीहिसमासे समासान्त इच् प्रत्ययो निपात्यते । द्वाभ्यां दण्डाभ्यां हन्यतेऽसौ द्विदण्डि । अव्ययीभावसमासे परिगणनमतोऽव्ययत्वम् । एवं द्विमुसलि :--

द्विदण्डि । द्विमुसलि । उभाञ्जलि । उभयाञ्जलि । उभाकर्णि । उभयाकर्णि । उभादन्ति । उभयादन्ति । उभाहस्ति । उभयाहस्ति । उभापाणि । उभयापाणि । उभाबाहु । उभयाबाहु (२) । एकपदि । प्रोष्ठपदि । आढ्यपदि । सपदि । निकुच्यकर्णि । संहतपुच्छि ॥ इति द्विदण्ड्यादयः ॥

---

(१) उष्णकः, शीतको वा ऋतुः । नूनकः, वियातको वा पशुः । अणुको निपुणः । पुत्रकः कृत्रिमः । स्नातको वेदपारगः । शून्यकं रिक्तम् । कुत्सितं दानं दानकम् । तनुकं सूत्रम् ॥

(२) अत्रोभयत्र निपातनादिच्प्रत्ययस्य लोपः । प्रत्ययलक्षणेन चाव्ययीभावसंज्ञा भवत्येव । अत्रापि केचिच्छब्दाततपुरुषसमासान्ता निपात्यन्ते । तेऽर्थसङ्गत्या ज्ञेयाः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१५४–पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ॥ अ०॥५।४।१३८॥

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपो बहुव्रीहौ । व्याघ्रपादाविव पादावस्य, स व्याघ्रपात् । अहस्त्यादिभ्य इति किम् । हास्तिपादः :—

हास्तिन् । कटोल । गण्डोल । गण्डोलक । महिला । दासी । गणिका । कुसूल । इति०

१५५–कुम्भपदीषु च ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १३९ ॥

कुम्भपदीप्रभृतयः कृतपादसमासान्तलोपः समुदायाबहुव्रीहौ समासेनिपात्यन्ते :—

कुम्भपदी । शतपदी । अष्टापदी । जालपदी । एकपदी । मालापदी । मुनिपदी । गोधापदी । गोपदी । कलशीपदी । घृतपदी । दासीपदी । निष्पदी । आर्द्रपदी । कुणपदी । कृष्णपदी । द्रोणपदी । द्रुपदी । शकृत्पदी । सूपपदी । पञ्चपदी । अर्वपदी । स्तनपदी । स्थूलपदी । सूत्रपदी । कलहंसपदी । द्विपदी । विष्णुपदी । सुपदी । सूकरपदी । सूचीपदी । इति कुम्भपदीप्रभृतयः ॥

१५६–उरः प्रभृतिभ्यः कप् ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १५१ ॥

उरः प्रभृत्यन्ताद्बहुब्रीहेः समासान्तः कप् प्रत्ययो भवति । व्यूढमुरोऽस्य स व्यूढोरस्कः । प्रियसर्पिष्कः :-

उरस् । सर्पिस् । उपानह् । पुमान् । अनड्वान् । नौः । पयः । लक्ष्मीः । दधि । मधु । शालिः ॥ अर्थान्नञः अनर्थकः । इत्युरः प्रभृतयः ॥

१५७-उञ्छादीनाञ्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६० ॥

उञ्छादीनां शब्दानामन्त उदात्तः स्वरो भवति :—

उञ्छ । म्लेच्छ । जञ्ज । जल्प । जप । व्यध । वध ॥ युगकालविशेषे रथाद्युपकरणे च ॥ गरो दूष्येऽबन्तः ॥ वेगवेदचेष्टबन्धाः करणे ॥ स्तुयुद्रुवश्छन्दसि । परिष्टुत् । संयुत् । परिद्रुत् ॥ वर्त्तनिः स्तोत्रे ॥ श्वभ्रेदरः ॥ साम्बतापौ भावगर्हायाम् ॥ उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र ॥ भक्षमन्थभोगदेहाः ॥ इत्युञ्छादयः ॥

१५८–वृषादीनाञ्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । २०३ ॥

वृषादीनामादिरुदात्तो भवति :—

वृषः । जनः । ज्वरः । ग्रहः । हयः । । गयः । नयः । तयः । पयः । वेदः । अंशः । दवः । सूदः । गुहा ॥ शमरणौ संज्ञायां संमतौ भावकर्मणोः ॥ मंत्रः । शान्तिः । कामः । यामः । आरा । धारा । कारा । वहः । कल्पः । पादः ॥ आकृतिगणोऽयम् । अविहितलक्षणमाद्युदात्तत्वं वृषादिषु द्रष्टव्यम् ॥ इति वृषादयः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१५९—कार्तकौजपादयश्च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ३७ ॥

कृतद्वन्द्वसमासाः कार्त्तकौजपादयः शब्दाः पूर्वपदप्रकृतिस्वरा भवन्ति । कृतस्यापत्यं कार्त्तः । कुजपस्यापत्यम् कौजपः । कार्त्तश्च कौजपश्च :—

कार्त्तकौजपौ । सावर्णिमाण्डूकेयौ । आवन्त्यश्मकाः । पैलश्यापर्णेयाः । पैलश्यापर्णेयौ । कपिश्यापर्णेयाः । शैतिकाक्षपांचालेयाः । कटुकवार्चालेयौ । शाकलशुनकाः । शाकलसणकाः । शुनकधात्रेयाः । सणकबाभ्रवाः । आर्चाभिमौद्गलाः । कुन्तिसुराष्ट्राः । चिन्तिसुराष्ट्राः । तण्डवतण्डाः । गर्गवत्साः । अविमत्तकामविद्धाः । बाभ्रवशालङ्कायनाः । बाभ्रवदानच्युताः । कठकालापाः । कठकौथुमाः । कौथुमलौकाक्षाः । स्त्रीकुमारम् । मौदपैप्यलादाः । मौदपैप्यलादाः । द्विःपाठः समासान्तोदात्तार्थ.। वत्सजरत् । सौश्रुतपार्थवाः । जरामृत्यू । याज्यानुवाक्ये ॥ इति कार्तकौजपादयः ॥

१६०—कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपापारेवडवातैतिलकद्रूः पण्यकम्बलोदासीभाराणाञ्च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ४२ ॥

कुरुगार्हपत , रिक्तगुरु, असूतजरती, अश्लीलदृढरूपा, पारेवडवा, तैतिलकद्रू, पण्यकम्बल इत्येषां समासानां दासीभारादीनां च पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति । कुरूणां गार्हपतं कुरुगार्हपतम् । रिक्तो गुरुः रिक्तगुरुः । असूता जरती, असूतजरती । अश्लीला दृढरूपा अश्लीलादृढरूपा । दास्या भारो दासीभारः :—

दासीभारः । देवहूतिः । देवजूतिः । देवसूतिः । देवनीतिः । वसुनीतिः । ओषधिः। चन्द्रमाः । अविहितलक्षणः पूर्वपदप्रकृतिस्वरो दासीभारादिषु द्रष्टव्यः ॥

१६१—युक्तारोह्यादयश्च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८१ ॥

युक्तारोह्यादिषु पूर्वपदमाद्युदात्तं निपात्यते :—

युक्तारोही । आगतरोही । आगतयोधी । आगतवञ्ची । आगतनर्दी । आगतप्रहारी । आगतमत्स्या । क्षीरहोता । भगिनीभर्त्ता । ग्रामगोधुक् । अश्वत्रिरात्रः । गर्गत्रिरात्रः । व्युष्टात्रिरात्रः । शणपादः । समपादः । एकशितिपात् ॥ पात्रेसम्मितादयश्च ॥ इति०

१६२—घोषादिषु च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८५ ॥

घोषादिषु चोत्तरपदेषु परेषु पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति :—

For Private And Personal Use Only

दाक्षिघोषः । दाक्षिकटः । दाक्षिपल्वलः । दाक्षिवल्लभः । दाक्षिहृदः । दाक्षिबदरी । दाक्षिपिङ्गलः । दाक्षिपिशङ्गः । दाक्षिशालः । दाक्षिरक्षः । दाक्षिशिल्पी । दाक्ष्यश्वत्थः । कुन्दतृणम् । दाक्षिशाल्मली । आश्रयमुनिः । शाल्मलिमुनिः । दाक्षिपुंसा । दाक्षिकूटः । इति घोषादयः ॥

१६३–प्रस्थेऽवृद्धमकर्क्यादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८७॥

प्रस्थ उत्तरपदेकर्क्यादिरहितमवृद्धं पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति । इन्द्रप्रस्थः । कुण्डप्रस्थः। अवृद्धमिति किम् । दाक्षिप्रस्थः । अकर्क्यादीनामिति किम् । कर्कीप्रस्थः :—

कर्की । मघी । मकरी । कर्कन्धू । शमी । करीर । कटुक । कुरल । कवल । बरद ॥ इति०

१६४–मालादीनां च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८८ ॥

प्रस्थ उत्तरपदे मालादय आद्युदात्ता भवन्ति । मालाप्रस्थः । शालाप्रस्थः :–

माला । शाला । शोणा । द्राक्षा । क्षौमा । क्षामा । काञ्ची । एक । काम । इति०

१६५–क्रत्वादयश्च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ११८ ॥

सोरुत्तरपदस्थाः क्रत्वादयो बहुब्रीहौ समासे आद्युदात्ता भवन्ति । सुक्रतुः :–

क्रतु । दृशीक । प्रतीक । प्रपूर्त्ति । हव्य । भग । इति क्रत्वादयः ॥

१६६–आदिश्चिहणादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १२५ ॥

कन्थान्ते नपुंसके तत्पुरुषेचिहणादिपूर्वपदानामादिरुदात्तोभवति । चिहणकन्थम् :–

चिहण । मडर । मडुर । वैतुल । पटत्क । वैडालिकर्णः । वैतालिकर्णिः । कुक्कुट चित्कण । चिक्कण ॥ इति चिहणादयः ।

१६७– चूर्णादीन्यप्राणिषष्ठ्याः ॥ अ० ॥६।२।१३४॥

तत्पुरुषसमासेऽप्राणि वाचिनः षष्ठ्यन्तात्पराणि चूर्णादीन्यूत्तरपदानि आद्युदात्तानि भवन्ति । मुद्गस्य चूर्णं मुद्गचूर्णम् :–

चूर्ण । करिप । करिव । शाकिन । शाकट । द्राक्षा । तूस्त । कुन्दम् । दलप । चमसी । चक्कन । चकन । चौल ॥ इति चूर्णादीनि ॥

१६८–उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥ अ० ॥ ६। २ । १४०

वनस्पत्यादिषु समासेषूभे पूर्वोत्तर पदे युगपत्प्रकृतिस्वरे भवतः :–

वनस्पतिः । बृहस्पतिः । शचीपतिः । तनूनपात । नराशंसः । शुनःशेपः । शण्डा-

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मर्को । तृष्णावरूत्री । बम्बाविश्ववयसौ । मर्मृत्युः । इति वनस्पत्यादयः ॥

१६९–संज्ञायामनाचितादीनाम् ॥अ०॥ ६ । २ । १४६ ॥

संज्ञायां विषये गतिकारकोपपदात्परंक्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति । आचितादीन् वर्जयित्वा संभूतः । धनुष्खाता । अनाचितादीनामिति किम् :—

आचितम् । पर्य्याचितम् । आस्थापितम् । परिगृहीतम् । निरुक्तम् । प्रतिपन्नम् । प्रश्लिष्टम् । उपहतम् । उपस्थितम् । संहिताऽगवि ॥ इत्याचितादयः ॥

१७०–प्रवृद्धादीनां च ॥अ०॥ ६ । २ । १४७ ॥

प्रवृद्धादिशब्दानांक्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति । प्रवृद्धंयानम् :—

प्रवृद्धो वृषलः । प्रयुक्ताः सक्तवः । आकर्षेऽवहितः । अवहितो भोगेषु । खट्वारूढः । कविशस्तः । आकृतिगणत्वात् पुनरुत्स्यूतं वासोदेयम् । पुनर्निष्कृतो रथः । इति०

१७१–निरुदकादीनि च ॥ अ० ॥ ६ । २ । १८४ ॥

निरुदकादीनि च शब्दरूपाण्यन्तोदात्तानि निपात्यन्ते :–

निरुदकम् । निरुलपम् । निरुपलम् । निर्मशकम् । निर्मक्षिकम् । निष्कालकः । निष्कालिकः । निष्पेषः । दुस्तरीपः । निस्तरीपः । निस्तरीकः । निराजिनम् । उदाजिनम् । उपाजिनम् ॥ परेर्हस्तपादकेशकर्षाः । परिहस्तः । परिपादः । परिकेशः । परिकर्षः । आकृतिगणोऽयम् ॥ इति निरुदकादयः ।

१७२–प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे ॥ अ० ॥ ६ । २ । १९३ ॥

तत्पुरुषसमासे प्रतेरुत्तरा अंश्वादयोऽन्तोदात्ताभवन्ति ।प्रतिगतोंशुः प्रत्यंशुः :—

अंशु । जन । राजन् । उष्ट्र । रेटक । अजिर । आर्द्रा । श्रवण । कृत्तिका । अर्द्ध । पुर ॥ इत्यंश्वादयः ॥

१७३–उपाद् द्व्यजजिनमगौरादयः ॥ अ० ॥ ६।२।१९४ ॥

उपादुत्तरंयच्छब्दरूपमजिनं च तत्पुरुषसमासे गौरादिवर्जितमन्तोदात्तं भवति । उपगतोदेवमुपदेवः । उपसोमः । उपाजिनम् । अगौरादय इति किम् । उपगौरः :—

गौर । तैष । तैल । लेट । लोट । जिह्वा । कृष्णा । कन्या । गुड ।कल्प । पाद । इति गौरादयः ॥

१७४–स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे-स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ३४ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भाषितपुंस्कशब्दात्परस्य समानाधिकरणस्त्रीलिङ्गे पूरणीप्रियादिवर्जिते उत्तरपदे परतः पुंशब्दस्येवरूपं भवति। दर्शनीया भार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः। दीर्घजङ्घः। अप्रियादिष्वितिकिम्। कल्याणीप्रियः :-

प्रिया। मनोज्ञा। कल्याणी। सुभगा। दुर्भगा। भक्तिः। सचिवा। अम्बा। कान्ता। क्षान्ता। समा। चपला। दुहिता। वामा॥ इति प्रियादयः॥

१७५—वनगिर्योः संज्ञायांकोटरकिंशुलकादीनाम्॥

अ० ॥ ६ । ३ । ११७ ॥

वन, गिरि, इत्येतयोरुत्तरपदयोः परयोर्यथासंख्यं कोटरादीनां किंशुलकादीनां च संज्ञायां विषये दीर्घो भवति। कोटरावणम्। किंशुलकागिरिः :—

कोटर। मिश्रक। पुरक। सिध्रक। सारिक। इति कोटरादयः॥ किंशुलक। साल्वक। अञ्जन। लोहित। कुक्कुट। इति किंशुलकादयः॥

१७६—मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम्॥अ०॥६।३।११९॥

मतौ प्रत्यये परतोऽजिरादिवर्जितस्य बह्वचो दीर्घो भवति संज्ञायां विषये। उदुम्बरावती। मशकावती। अमरावती। अनजिरादीनामिति किम् :—

अजिरवती। खदिरवती। पुलिनवती। हंसकारण्डवती। चक्रवाकवती। इत्यजिरादयः॥

१७७—शरादीनां च ॥अ०॥ ६ । ३ । १२० ॥

संज्ञायां विषये मतौ परतः शरादीनां च दीर्घो भवति। शरावती। वंशावती :—

शर। वंश। धूम। अहि। कपि। मणि। मुनि। शुचि। हनु। इति शरादयः॥

१७८—द्वारादीना च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ४ ॥

द्वारादीनां युवाभ्यामुत्तरस्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्न भवति। किन्तुयुवाभ्यां पूर्वावैजागमौ भवतः। द्वारेनियुक्तः, दौवारिकः। स्वरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः, सौवरः :—

द्वार। स्वर। व्यल्कश। स्वस्ति। स्फयकृत। स्वादुमृदु। श्वन्स्व। इति द्वारादयः॥

१७९—स्वागतादीनां च ॥ अ० ॥ ७। ३ । ७ ॥

स्वागतादीनां शब्दानां य्वाभ्यां पूर्वौ ञित् णित् कित् तद्धिते परत ऐजागमौ न भवतः। वृद्धिस्तुभवत्येव। स्वागतमित्याह स्वागतिकः। स्वाध्वरेण चरति,स्वाध्वरिकः :—

स्वागत। स्वध्वर। स्वङ्ग। व्यङ्ग। व्यड। व्यवहार। स्वपति। इतिस्वागतादयः॥

१८०—अनुशातिकादीनां च ॥ अ० ॥ ७। ३। २० ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ञितिणितिकितिचतद्धिते परतोऽनु शतिकादिशब्दानां पूर्वपदस्योत्तरपदस्यचाचामादेरचः स्थानेवृद्धिर्भवति । अनुशतिकस्येदमानुशातिकम् :—

अनुशतिक । अनुहोड । अनुसंवत्सर । अङ्गारवेणु । असिहत्य । बध्योग । पुष्करसत् । अनुहृत् । कुरुकत । कुरुपञ्चाल । उदकशुद्ध । इहलोक । परलोक । सर्वलोक । सर्वपुरुष । सर्वभूमि । प्रयोग । परस्त्री । राजपुरुषात् ष्यञि ॥ सूत्रनड ॥ आकृतिगणोऽयम् (१) ॥ इत्यनुशतिकादयः ॥

१८१—न्यङ्क्वादीनां च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५३ ॥

न्यङ्क्वादिषु कुत्वं निपात्यते । नितरामञ्चतीति :—

न्यङ्कुः । मद्गुः । भृगुः । दूरेपाकः । फलेपाकः । क्षणेपाकः । फलेपाका । दूरेपाकुः । फलेपाकुः । तक्रम् । वक्रम् । व्यतिषङ्गः । अनुषङ्गः । अवसर्गः । उपसर्गः । मेघः । श्वपाकः । मांसपाकः । कपोतपाकः । उलूकपाकः । संज्ञायामघः । अवदाघः । निदाघः (२) । न्यग्रोधः ॥ इति न्यङ्क्वादयः ॥

१८२—पूजनात्पूजितमनुदात्तंकाष्ठादिभ्यः॥अ०॥८। १ । ६७॥

पूजनवाचिभ्यः काष्ठादिभ्यः परं पूजितमुत्तरपद मनुदात्तं भवति । काष्ठश्चासावध्यापकः काष्ठाध्यापकः :—

काष्ठ । दारुण । अमातापुत्र । अयुत । अद्भुत । अनुक्त । भृश । घोर । परम । सु । अति । अनुज्ञात । कल्याण । वेश ॥ इति काष्ठादयः ॥

१८३—मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः॥अ०॥८। २ । ९ ॥

मकारान्तान्मकारोपधादवर्णान्तादवर्णोपधाच्च परस्य मतुपोमकारस्य वकारादेशो भवति नतु यवादिभ्यः परस्य मस्य वो भवति । मान्तात् किंवान् । शंवान् । मकारोपधात् । शमीवान् । दाडिमीवान् । अवर्णान्तात् । वृक्षवान् । खट्वावान् । अवर्णोपधात् । यशस्वान् । भास्वान् । मादुपधाश्चेति किम् अग्निमान् । अयवादिभ्य इति किम् । यवमान् :—

यव । दल्मि । ऊर्मि । भूमि । कृमि । क्रुञ्चा । वशा । द्राक्षा । वृक्षा । वेशा । ध्र-

(१) अत्राकृतिगणेनेदमपि सिद्धं भवति । अभिगममर्हति, अभिगामिकः । अधिदेवेभवमधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । आध्यात्मिकम् । चतस्रएवविद्याः, चातुर्वैद्यम् । स्वार्थेष्यञ् ।

(२) अर्घ, अवदाघ, निदाघ, इति त्रिषु शब्देषु संज्ञायामेव कुत्वम् । अन्यत्र । अर्हः । अवदाहः । निराहः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जि । ध्वजि । सञ्जि । वजि । व्रजि । शञ्जि । सिञ्जि । हरित् । ककुत् । गरुत् । इक्षु । मधु । द्रुम । मण्ड । धूम । आकृतिगणोऽयम् ॥

१८४–कस्कादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ४८ ॥

कस्कादिशब्देषु विसर्जनीयस्य सः षो वा कवर्गपवर्गयोः परतः :—

कस्कः । कौतस्कुतः । भ्रातुष्पुत्रः । शुनस्कर्णः । सद्यस्कालः । सद्यस्क्रीः । सद्यस्कः । कांस्कान् । सर्पिष्कुण्डिका । धनुष्कपालम् । बर्हिष्पूलम् । यजुष्पात्रम् । अयस्कान्तः । मेदस्पिण्डः । आकृतिगणोऽयम् । इति कस्कादयः ॥

१८५–सुषामादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९८ ॥

सुषामादिषु सकारस्य मूर्द्धन्यादेशो निपात्यते । शोभनं साम यस्यासौ सुषामा ब्राह्मणः :—

सुषामा । निष्षामा । दुष्षेधः । सुषन्धिः । दुःषन्धिः । निषन्धिः । सुष्ठु । दुष्ठु । गौरिषक्थः संज्ञायाम् ॥ प्रतिष्णिका । जलाषाहम् । नौषेचनम् । दुन्दुभिः षवनम् ॥ अविहितलक्षणो मूर्द्धन्यः सुषामादिषु द्रष्टव्यः । इति सुषामादयः ॥

१८६–न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११० ॥

रेफपरस्य सकारस्य सृपिसृजिस्पृशिस्पृहि सवनादीनां सस्य मूर्द्धन्यादेशो न भवति । रपर, विस्रंसिका । विस्रब्धः । विसृपः । विसर्जनम् । सुस्पृशम् । निस्पृहम् :—

सवने सवने । सूते सूते । सामे सामे । सवनमुखे सवनमुखे । अनुसवनमनुसवनम् । बृहस्पतिसवः । शकुनिसवनम् । संवत्सरे संवत्सरे । मुसलं मुसलम् । गोसनिम् । अश्वसनिम् । इति सवनादयः ॥

१८७–क्षुभ्नादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३९ ॥

क्षुभ्ना इत्यादि शब्देषु नस्य णकारादेशो न भवति । यथाप्राप्तिनिषेधः :–

क्षुभ्नाति । क्षुभ्नीतः । क्षुभ्नन्ति । नृनमन । नन्दिन् नन्दिन् । नगर । नरीनृत्यते । तृप्नु । नर्त्तन । गहन । नन्दन । निवेष । निवास । अग्नि । अनूप ॥ आचार्यादणत्वंच ॥ आचार्यभोगीनः । आचार्यानी । हायन । इरिकादिभ्यः । वनोत्तरपदेभ्यः संज्ञायाम् ॥ इरिका । तिमिर । समीर । कुबेर । हरि । कर्मार । क्षुभ्नादिराकृतिगणः ॥ इति क्षुभ्नादयः ॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथ गणपाठ शुद्धाशुद्धपत्रम् ॥

भूमिका ॥

पृष्ठे	पंक्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	६	चिन्ह	चिःह वा (–)ऐसा
१	१३	वातिक	वार्तिक

पृष्ठे	पंक्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	४	प्राता	प्राति
२	६	कृत्वर्थः	कृत्वोर्थः
३	१	(नोट) उपसगा	उपसर्गा
४	२०	तादयाः	तादयः
४	३ (नोट)	तोइच्	तेच्
५	४ (नो.)	गतिप्रा	कुगतिप्रा
६	१० (नो.)	पिबति	पिबत
८	३ (नोट)	बीधि	विधी
१०	१ (नोट)	यूवा	युवा
१२	८ (नोट)	जिन- पश्च	जिनयश्च
१६	२ (नोट)	सवाज	सुवांज
२१	३ (नोट)	हृद्ग	हृद्गग
२२	५ (नोट)	यञ्	यञ
२२	६ (नोट)	प्रत्य	प्रत्यय
२४	२५	वाजपेयि	वाजपेयि
२४	२०	०	विश्वदेव
२८	३	०	विजगध
२९	६	संबंध	सम्बन्ध
२९	२१	माहकी	माहिकी
३१	१६	छुण	छुण्
३२	२२	मागयनः	आगयनः
३२	२ (नोट)	भवः	भवं
३३	१७	स ता	स तान्त
३८	५	वाच	वा च
३९	२	न्	न
४०	६	समान	समाना
३९	१२	छेदनं	छेदं
३९	१४	वैरङ्कः	वैरङ्किकः
,,	,,	प्रवचना	प्रवचनादि
४०	१०	इत्या	इत्य—
४१	१९	राश्रम	राश्रम्य
४१	१५	परिमाण्डल	परिमण्डल
४१	२४	सासैन्या	वा सैना
४२	१०	कैशीर	कैशोर
४२	१०	नान्तु	नान्त
४४	२	ध्याया	ध्यायो
४४	३ (नोट)	शब्दो	शब्दो
४५	१८	कृते	कृत
,,	२२	प्रत्ययो	प्रत्ययौ
,,	२ (नोट)	पलालिनं:	पलालिनः
४७	२३	ष्टक्	ष्ठक्
४९	४ (नोट)	प्रत्यस्य	प्रत्ययस्य
,,	५ (नोट)	चछब्द	चछब्दाः
५०	६	लोपः	लोपाः
५१	२६	वोषा	घोषा
५१	१७	अश्लीला	अश्लील
५२	२१	न्यूत्तर	न्युत्तर

For Private And Personal Use Only

गणपाठ शुद्धाशुद्धपत्रम् ॥

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
,,	,,	ने	नि
५३	२१	द्यज	द्व्यज
५४	१	पुंसक	पुंस्क
५४	११	०	भज्‌जन
,,	३	दिस्विति	दिष्विति
,,	१९	द्वारदीना	द्वारादीनां
,,	२०	युवाभ्या	यूवाभ्या
,,	,,	युवाभ्यां	यूवाभ्यां
५५	२२	दुपधा	दुपधाया

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

त्रयोदशो भागः ॥

उणादिकोषः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां

द्वादशो भागः ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

यज्ञदत्तशर्म्मशास्त्रिणा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां चतुर्दशं पुस्तकम् ।

वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित हुआ ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।
क्योंकि
इस की रजिस्टरी कराई गई है ॥

संवत् १९४८ पौष कृष्णा ७
द्वितीय बार २००० पुस्तक छपे
मूल्य ॥=) डा० व्य० /)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथ भूमिका ॥

सब उणादिगणस्थ शब्द इस वक्ष्यमाण एक सूत्र की विशेष व्याख्या में हैं:—

उणादयो बहुलम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ ॥ १ ॥

वर्त्तमान काल में धातुओं से उणादि प्रत्यय बहुल करके होते हैं ॥

भूतेऽपि दृश्यन्ते ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २ ॥

और कहीं २ भूतकाल में भी इन का विधान दीख पड़ता है ॥

भविष्यति गम्यादयः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३ ॥

और गमी आदि गणपठित वक्ष्यमाण शब्द भविष्यत्काल में ही होते हैं। उणादिप्रत्ययों के होने के लिये यह तीनों काल का नियम है। गम्यादि शब्द। गमी। आगामी। प्रस्थायी। प्रतिरोधी। प्रतिबोधी। प्रतियोधी। प्रतियोगी। प्रतियायी। आयायी। भावी। इन से अन्य शब्द भूत और वर्त्तमान अर्थों के बोधक होते हैं। अब जितनी प्रकृतियों में जितने उणादि प्रत्यय कहे हैं उतने ही जानना चाहिये वा कुछ विशेष इस लिये:—

बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम् ।
कार्यसशेषविधेश्च तदुक्तं नैगमरूढिभवं हि सुसाधु ॥ १ ॥
नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् ।
यन्न पदार्थविशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् ॥ २ ॥
संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।
कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥ ३ ॥
महाभाष्ये ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इसी सूत्र की व्याख्या में महाभाष्यकार पतञ्जलिमुनि उणादिपाठ की व्यवस्था बांधते हैं कि (बाहुलकम्) उणादि पाठ में थोड़े से धातुओं से प्रत्यय विधान किया है सो बहुल के होने से वे प्रत्यय अन्य धातुओं से भी होते हैं। इसी प्रकार प्रत्यय भी थोड़े से संकेतमात्र पढ़े हैं। सत्प्रयोगों में देख के इन से अन्य भी नवीन प्रत्ययों की कल्पना कर लेनी चाहिये। जैसे (ऋफिडः) इस शब्द में ऋ धातु से फिड प्रत्यय समझा जाता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये। तथा जितने शब्द उणादिगण से सिद्ध होते हैं उन में जितने कार्य सूत्रों से प्राप्त हैं वे सब नहीं होते यह भी बहुल ग्रहण का ही प्रताप है। इस में यदि कोई ऐसा प्रश्न करे कि उणादिपाठ में जितने धातुओं से जितने प्रत्यय विधान किये और शब्दों की सिद्धि में जितने कार्य सूत्रों से हो सकते हैं उन से अधिक वा न्यून क्यों होते हैं? तो इस का उत्तर यह है कि (नैगम०) वैदिक शब्द और लौकिक सञ्ज्ञा शब्द ये सब अच्छे प्रकार सिद्ध नहीं हो सकते। इस लिये पूर्वोक्त तीन प्रकार के कार्य उणादिगण में बहुल वचन से होते हैं इस बहुल के होने से अनेक प्रकार के सहस्रों शब्द सिद्ध होते हैं ॥ १ ॥

संज्ञा शब्द वे ही कहाते हैं जो किसी निज वाच्य के साथ सम्बन्ध रक्खें फिर उन की सिद्धि करने से क्या प्रयोजन है क्योंकि वे संज्ञाशब्द जिस निज अर्थ के बोधक हैं उस का बोध तो प्रकृति प्रत्ययार्थ सम्बन्ध के विना भी कराते ही हैं वही पश्चात् होगा इस लिये (नाम च०) इस विषय में निरुक्तकारों और वैयाकरणों में शाकटायन ऋषि का ऐसा मत है कि सब संज्ञा (रूढि) शब्द प्रकृति प्रत्ययार्थ के सम्बन्ध से यौगिक तथा योगरूढता से अर्थों के बोधक होते हैं। इन से भिन्न अन्य ऋषियों के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मतानुसार सब संज्ञा शब्द रूढि अर्थात् अव्युत्पन्न होते हैं। अब जहां शब्दों में प्रकृतिप्रत्यय कुछ भी नहीं जान पड़ता वहां (प्रत्ययतः०) यदि प्रत्यय जान पड़े तो धातु की कल्पना और धातु जान पड़े तो नवीन प्रत्यय की कल्पना कर लेनी चाहिये। इस प्रकार उन शब्दों का अर्थ-ज्ञान कर लेना चाहिये ॥ २ ॥ संज्ञा शब्दों में धातुओं का रूप पूर्व भाग में और शब्द के पर भाग में धातु से परे प्रत्यय की कल्पना करनी चाहिये। और जिस शब्द में जिस अनुबन्धका कार्य्य दीख पड़े वैसे ही सानुबन्धक धातु वा प्रत्ययों की ऊहा करनी चाहिये। अर्थात् आत्मनेपद दीख पड़े तो अनुदात्तेत् वा ङित् धातु जानना और जो आद्युदात्त स्वर हो तो ञित् वा नित् प्रत्यय की कल्पना करनी चाहिये। यह कल्पना सर्वत्र नहीं करनी किन्तु वैदिक वा लौकिक सत्प्रयुक्त शब्दों के अर्थ जानने के लिये शब्दों के पूर्व भाग में धात्वर्थ की और पर भाग में प्रत्ययार्थ की कल्पना करनी चाहिये। यह सब सम्बन्ध ऋषि लोगों ने इस लिये बांधा है कि अथाह शब्दों के सागर की थाह व्याकरण से भी नहीं मिल सकती। जो कहें कि ऐसा व्याकरण क्यों नहीं बनाया कि जिस से शब्दसागर के पार पहुंच जाते तो यह समझना चाहिये कि कितने ही पोथा बनाते और जन्मजन्मान्तरों भर पढ़ते तो भी पार होना दुर्लभ ही था इस लिये यह पूर्वोक्त व्याकरण से सब प्रबन्ध जताया है ॥ ३ ॥ उणादिगण में कारक व्यवस्था का यह नियम है कि—

दाशगोघ्नौ संप्रदाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७३ ॥

यह सूत्र सामान्य कृदन्त का नियामक है कि दाश और गोघ्न शब्द औणादिक हों वा अष्टाध्यायी से सिद्ध हों परन्तु प्रत्यय संप्रदान कारक मे ही हों। इस नियम से ये दो ही शब्द संप्रदान में होते हैं अन्य नहीं ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भीमादयोऽपादाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७४ ॥

भीमादि शब्दों में अपादानकारक में ही प्रत्यय होते हैं । भीमादि शब्द औणादिक हैं जैसे—भीमः । भीष्मः । भयानकः । वरुः । चरुः । भूमिः । रजः । संस्कारः । संक्रन्दनः । प्रतपनः । समुद्रः । स्रुचः । स्रुक् । खलतिः । इति भीमादि गणः ॥

ताभ्यामन्यत्रोणादयः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७५ ॥

उन संप्रदान और अपादान दोनों कारकों से भिन्न अन्य कारकों में उणादि प्रत्यय होते हैं । व्युत्पन्न पक्ष में उणादि प्रत्ययान्त शब्दों के यौगिक होने से प्रत्ययों को कृत्संज्ञक मान के कर्त्ता में प्राप्त हैं इस लिये यह कारकनियम है । और भाव में भी उणादि प्रत्यय होते हैं। संप्रदान और अपादान को छोड़ के अन्य कारकों में तो उणादि प्रत्ययों का यथेष्ट विधान है परन्तु बहुलवचन से कहीं संप्रदान में भी कोई प्रत्यय कर दिये हों तो चिन्ता नहीं । इस उणादिगण की एक वृत्ति छपी भी है परन्तु वही पोपलीला आदि का जगड्वाल बहुत और प्रयोजन थोड़ा सिद्ध होता है । इस लिये यह कोष बनाना पड़ा । इस ग्रंथ में सूत्रों का पाठ तथा अर्थ बहुधा सुगम है इसी लिये प्रति सूत्र का अर्थ वृत्ति में नहीं किया और जहां कुछ कठिन जान पड़ा वहां खोल दिया है । अनुवृत्ति भी बहुधा जनादी है । इस का मूल ऊपर २ पृथक् इस लिये छप वाया है कि अध्येता लोगों को पाठ करने और घोषण से कण्ठस्थ करने में सुगमता रहेगी । जो अंक सूत्र के अन्त में लिखा है वही नीचे वृत्ति के आदि में डाल दिया है । इस से बड़ी सुगमता होगी । इस में विशेष करके लौकिक शब्द और सामान्य से वैदिक लौकिक दोनों ही सिद्ध किये हैं। निघण्टु में जितने वैदिक शब्द हैं उन में से बहुतों का निर्वचन वृत्ति में मिले गा । सो दोनों की

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अकारादि सूची को देख के खोज लेना चाहिये। निर्वचन तो सब शब्दों का कर दिया है परन्तु वे धातुगणानुबन्ध और अर्थ के सहित यहां नहीं लिखे हैं क्योंकि ग्रन्थ बहुत बढ़ जाता इस लिये धातु के प्रयोग से गण अनुबन्ध तथा उस के पर्य्याय शब्द से धातु के अर्थ का बोध कर लेना चाहिये। संस्कृत में वृत्ति बनाने का यही प्रयोजन है कि जो लोग पठनपाठन व्यवस्था के पहिले पुस्तकों को पढ़ें गे उन के लिये संस्कृत कुछ कठिन नहीं होगा और संस्कृत भी सरल ही बनाया है। कई शब्दों के अर्थ इति शब्द लगा कर भाषा में भी खोल दिये हैं॥

इति भूमिका

स्थान महाराणा जी का उदय पुर
माघ कृष्णा १ संवत् १९३६ } दयानन्द सरस्वती

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ओ३म् ॥

अथोणादिकोषः ॥

कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् ॥ १ ॥ कारुः । वायुः । पायुः । जायुः । मायुः । स्वादुः । साधुः । आशु । आशुः ॥ १ ॥

छन्दसीणः ॥ २ ॥ आयुः ॥ २ ॥

दृसनिजनिचरिचटिरहिभ्यो ञुण् ॥ ३ ॥ दारु । सानुः । जानु । चारु । चाटु । राहुः ॥ ३ ॥

---

(१) करोतीति कारुः कर्त्ता शिल्पी वा । वाति गच्छति जानाति वेति वायुः पवनः परमेश्वरो वा । पाति रक्षति स पायू रक्षकः गुदेन्द्रियं वा । जयत्यभिभवति तिरस्करोति शत्रूनिति जायुः शूरः । जयति रोगानिति जायुरौषधं वैद्यो वा । यो मिनोति प्रक्षिपति स मायुः । अथवा मिनोति प्रक्षिपत्यूष्माणमिति मायुः पित्तम् । गां विकृतां वाचं मिनोतीति गोमायुः शृगालः । स्वद्यते भोक्तुमभीप्स्यते तत्स्वादु भोज्यमन्नं वा । साध्नोति धर्म्यं कर्मेति साधुः सज्जनः । अश्नुते व्याप्नोति तदाशु शीघ्रम् । अश्नुते सद्योऽध्वानमित्याशुरश्वः । वाऽश्यते भुज्यते शीघ्रमित्याशुर्धान्यं व्रीहिः बहुलवचनात्—स्नाति शोधयत्यङ्गानीति स्नायुर्नाड़ी वा । कक्यते लोलश्चञ्चलो भवति येनेति काकुः । भयादिः ध्वनेर्विकारो वा । हल्यते छिद्यतेऽन्नमनेनेति हालुःदन्तो वा । वसति जगदस्मिन् वा सर्वस्मिन् यो वसति स वासुरीश्वरः । इत्यादि ।

(२) वेद इण् धातोरुण् । एति प्राप्नोति सर्वानित्यायुर्जीवनकालः । सान्तस्तु द्वितीयपादे वक्ष्यते ॥

(३) दीर्यते भिद्यत इति दारु काष्ठं वा । सनति सम्भजति सनोति ददाति वा स सानुः । पर्वतैकदेशशृङ्गबुधमार्गवात्यापर्णवनानि च सानूनि वा । जायन्तेऽस्मात्तज्जानु जङ्घाया उपरिभागो वा । जनिवध्योश्चेति प्रतिषिद्धाऽप्यनुबन्धद्वयसामर्थ्याद्वृद्धिर्भवति । चरति चक्षुरादिष्विति चारु शोभनम् । चटति भिनत्तीति चाटु प्रियंवचो वा । रहति त्यजति दोषानिति राहुः । ग्रहविशेषो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किंजरयोः श्रिणः ॥ ४ ॥ किंशारुः । जरायुः ॥ ४ ॥

त्रोरश्चलः ॥ ५ ॥ तालु ॥ ५ ॥

कृके वचः कश्च ॥ ६ ॥ कृकवाकुः ॥ ६ ॥

भृमृशीङ्तृचरित्सरितनिधनिमस्जिभ्य उः ॥ ७ ॥ भरुः । मरुः । शयुः । तरुः । चरुः । त्सरुः । तनुः । धनुः । मयुः । मद्गुः ॥७॥

अणश्च ॥ ८ ॥ अणुः ॥ ८ ॥

(४) किं श्रयतेऽनेनेति किंशारुः धान्यविशेषो वा । जरां जीर्णतामेति जरायुः । गर्भाशयो गर्भावरणं वा ॥

(५) तृ धातोर्ञुण् रेफस्य लत्वम् । तरन्ति निःसरन्ति वर्णा यत इति तालु मुखैकदेशः । बाहुलकात्—अर्यते प्राप्यत इत्यालु भक्ष्यं कन्दं वा । भृणाति स्वतापेन छेदयति पदार्थानिति भालुः सूर्यः । शृणाति चित्तं हिनस्तीति शालुः । कषायद्रव्यं वा । इत्यादि ॥

(६) कृकोपपदाद्वचधातोर्ञुण् । कृकेन कण्ठेन वक्तीति कृकवाकुर्य-वनादिर्मयूरो वा ॥

(७) भरति बिभर्त्ति वेति भरुः । स्वामी । म्रियन्ते भूतान्यस्मिन्निति मरुर्निर्जलो देशो वा । शेतेऽसौ शयुः शयनशीलः । यस्तरति येन वा स तरुः वृक्षो वा । चरति चर्यतेऽग्निना भक्ष्यत इति चरुः । यज्ञपाको वा । त्सरति कुटिलं गच्छतीति त्सरुः । खड्गमुष्टिर्वा । तन्यन्ते कर्माण्यनेनेति तनुः शरीरं स्वल्पं वा । धन्यते धनं प्राप्यतेऽनेनेति धनुः शास्त्रं शस्त्रं वा । मिनोति सुशब्दं प्रक्षिपतीति मयुः वानरो वा । मज्जति शुद्धो भवतीति मद्गुः जलपक्षी पक्षी वा । न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम् । बाहुलकात्—गण्डति स गण्डुः वदनैकदेशः । उपधानम्—तकिया इतिप्रसिद्धं तैलं वा ॥

(८) अणति शब्दयतीत्यणुः अतिसूक्ष्मं वा अत्र चकार ग्रहणाद् वा कटति विकारयतीति कटू रसः । वटति गुणकर्माणि विभजतीति वटुः । द्विजसुतो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धान्ये नित् ॥ ९ ॥ अणवः ॥ ९ ॥

शृस्वृस्निहित्रप्यसिवसिहनिक्लिदिबन्धिमनिभ्यश्च ॥ १० ॥

शरुः। स्वरुः। स्नेहुः। त्रपु। असुः। वसुः। हनुः। क्लेदुः। बन्धुः। मनुः॥ १०॥

स्यन्देः सम्प्रसारणं धश्च ॥ ११ ॥ सिन्धुः ॥ ११ ॥

उदेरिश्चादेः ॥ १२ ॥ इन्दुः ॥ १२ ॥

ईषेः किच्च ॥ १३ ॥ इषुः ॥ १३ ॥

(९) अणन्ति शब्दायन्ते यैस्तेऽणवोऽन्नविशेषा वा नित्करणमाद्यु-दात्तस्वरार्थम् ।

(१०) अत्र चादुप्रत्ययो निदिति सम्बन्धः । एवमर्थ एव पृथक्पाठः । शृणाति हिनस्ति येनेति शरुरायुधं कोपो वा। स्वर्यन्त उपतप्यन्ते प्राणिनोऽनेनेति स्वरुर्वज्रम् । स्निह्यति यस्मिन् स स्नेहुर्व्याधिर्वा । अग्निं प्राप्य यत् त्रपते लज्जितमिव भवतीति तत् त्रपु सीसकं रंगं वा। अस्यति प्रक्षिपति वायुमित्यसुः प्राणः। असुं प्राणं राति ददातीत्यसुरो मेघः । वस्त आच्छादयति दुःखं येन तद्वसु धनं वा। वसन्ति प्राणिनो येषु ते वसवोऽग्न्यादयोऽष्टौ। हन्यतेऽनेनेति हनुः कपोलावयवः प्रहरणं मृत्युर्वा। क्लिद्यत्यार्द्रीकरोति चित्तमिति क्लेदुश्चन्द्रमा वा। प्रेम्णा बध्नातीति बन्धुः सज्जनो वा। मन्यते चराचरं जगज्जानातीति मनुरीश्वरः मनुतेऽवबुध्यते शास्त्रमिति मनुर्विद्वान् राजर्षिः। बहुलवचनात् । बिन्दत्यवयवीभवतीति बिन्दुः परिमाणं जलादिकणो वा ।

(११) स्यन्दन्ते प्रस्रवन्त्युदकान्यस्मिन्निति सिन्धुः ॥

(१२) उन्दधातोरुः प्रत्यय आदिवर्णस्येकारादेशश्च । उनत्त्यार्द्रीकरोति पदार्थानितीन्दुश्चन्द्रमाः वा ॥

(१३) अत्र चकारात्किदित्यनुवर्त्तते तेन दीर्घस्य ह्रस्वो भवति । ईषति गच्छति हिनस्ति वा शत्रूनिति, इषुर्बाणो वीरो वा । कित्वाद् गुणाऽभावः ॥

For Private And Personal Use Only

स्कन्देः सलोपश्च ॥ १४ ॥ कन्दुः ॥ १४ ॥

सृजेरसुम् च ॥ १५ ॥ रज्जुः ॥ १५ ॥

कृतेराद्यन्तविपर्ययश्च॥ १६ ॥ तर्कुः १६ ॥

नावञ्चेः ॥ १७ ॥ न्यङ्कुः ॥ १७ ॥

फलिपाटिनमिमनिजनां गुक्पटिनाकिधतश्च ॥ १८ ॥ फल्गुः । पटुः । नाकुः । मधुः । जतुः ॥ १८ ॥

बलेर्गुक् च ॥ १९ ॥ बल्गुः ॥ १९ ॥

(१४) स्कन्दति गच्छति शुष्यति वा येन स कन्दुः कुमाराणां क्रीडार्थे गेंद इति प्रसिद्धं वा ॥

(१५) अत्र पूर्वसूत्रात्सलोप इत्यनुवर्त्तते । धातोरसुमागम आदिसकारलोपश्च । पुनर्ऋकारस्य यणादेश आगमसकारस्य जश्त्वं च । सृजन्त्युदकनिस्सारणायेति रज्जुर्जलोद्धरणं वा ॥

(१६) आद्यन्तविपर्ययोऽर्थादादौ तकारोऽन्ते ककारः । उश्च प्रत्ययः कृन्तति छिनत्ति वस्त्रादिकमनेन स तर्कुः । कर्तनी वा ॥

(१७) ये नितरामञ्चन्ति गच्छन्ति ते न्यङ्कवो जातिविशेषाः हरिणा वा ॥

(१८) उप्रत्यये फलधातोर्गुगागमः फलति निष्पद्यते स फल्गुः असारो वा । नपुंसके फल्गु फलम् । पाटिधातोः पटिरादेशः । पाटयति ज्ञापयति सदसत्पदार्थान् स पटुर्वाग्मी विशारदो वा । नमधातोर्नाकिरादेशः नमतीति नाकुः । बल्मीको वा । मनधातोर्धकारादेशः । मन्यन्ते विशेषेण जानन्ति यस्मिन् स मधुश्चैत्रो मासः । मधूको मद्यं क्षौन्द्रं पुष्परसो वा । जनधातोस्तकारादेशः । जायते प्रादुर्भूयतेऽनेनेति जतु लाक्षा वा ॥

(१९) बलते प्राणयतीति बल्गुः । नपुंसके बल्गु शोभनम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शः कित्सन्वच्च ॥ २० ॥ शिशुः ॥ २० ॥

यो द्वे च ॥ २१ ॥ ययुः ॥ २१ ॥

कुर्भ्रश्च ॥ २२ ॥ बभ्रुः ॥ २२ ॥

पॄभिदिव्यधिगृधिधृषिहृषिभ्यः ॥ २३॥ पुरुः।भिदुः । विधुः। गृधुः । धृषुः । हृषुः ॥ २३ ॥

कृग्रोरुच्च ॥ २४ ॥ कुरवः । गुरुः ॥ २४ ॥

(२०) सन्वद्भावाद् द्वित्वादिकम् । श्यति तनूकरोति पित्रोः शरीरमिति शिशुर्बालको वा ॥

(२१) अत्र सन्वदित्यनुवर्तमानेऽपि द्वेग्रहणमभ्यासेत्वानिवृत्त्यर्थम् । यान्ति प्राप्नुवन्ति देशान्तरमनेनेति ययुरश्वो वा ॥

(२२) अत्र द्वे इत्यनुवर्त्तते भृधातोः कुः प्रत्ययो द्वित्वं च । बिभर्त्ति सर्वमिति बभ्रुर्नकुलः पिङ्गलो वा । सूत्रे चकारग्रहणादन्यधातुभ्योऽपि कुः प्रत्ययस्तेषां द्वित्वं च भवति तद्यथा । करोतीति चक्रुः कर्त्ता । हन्तीति जघ्नुर्हन्ता । पाति रक्षतीति पपुः पालकः । इत्यादि ॥

(२३) एभ्यः कुः । पिपर्त्ति पालयति पूरयति वा स पुरुः । बहुरिन्द्रियं वा । भिनत्तीति भिदुर्वज्रं वा । विध्यति दुर्गन्धिं दिवसं वेति विधुः कर्पूरं चन्द्रमा वा । व्यधेर्ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् । गृध्नोत्यभिकाङ्क्षते येन स गृधुः कामो वा । धृष्णोति प्रगल्भो भवतीति धृषुर्दक्षः । हृष्यति स हृषुर्हर्षकः । दृशीति पाठान्तरे दृशुर्दर्शकः ॥

(२४) यः करोति येन वा स कुरुः । कुरवो राजानो वा । गृणात्युपदिशति वेदशास्त्रविद्यामाचारं च स गुरुः । सर्वेषां गुरुत्वादीश्वरः । आचार्यः पिता वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपदुःसुषु स्थः ॥ २५ ॥ अपष्ठु । दुष्ठु । सुष्ठु ॥ २५ ॥

रपेरिच्चोपधायाः ॥ २६ ॥ रिपुः ॥ २६ ॥

अर्जिदृशिकम्यमिपसिबाधामृजिपशितुकधुकदीर्घहकाराश्च॥२७॥

ऋजुः । पशुः । कन्तुः । अन्धुः । पांसुः । बाहुः ॥ २७ ॥

प्रथिम्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च॥२८॥पृथुः। मृदुःभृगुः॥२८॥

(२५) अप, दुः, सु, इत्येतेषूपपदेषु स्थाधातोः कुः । अपतिष्ठतीत्यपष्ठु वामभागः प्रतिकूलः पदार्थो वा । निन्दितस्तिष्ठतीति दुष्ठु अविनीतः । सुतिष्ठतीति सुष्ठु शोभनम् । सर्वत्र सुषामादित्वात् षत्वम् ॥

(२६) अनिष्टं रपति वदतीति रिपुः शत्रुः । चकारग्रहणात्कुप्रत्यये परे इकारादेश एव समुच्चीयते ॥

(२७) कुप्रत्यये सति—अर्ज्यादिप्रकृतीनामृज्वादय आदेशा भवन्ति अर्जयति सञ्चिनोति गुणानिति, ऋजुः कोमलो वा । पश्यति सर्वमिति पशुः पश्यन्ति येन वा स पशुरग्निः । पश्यति जानाति स्वार्थमिति पशुर्गवादिः । कमधातोस्तुक् । कामयन्ते यं स कन्तुः कामो वा । अमधातोर्धुक् । अमति गच्छति वेत्यन्धुः कूपो वा । अस्मिन् सूत्रे चकारग्रहणाद्बहुलवचनाद्वा अमधातोर्बुगागमोऽपि भवति । अमन्ति गच्छन्ति चेष्टन्ते प्राणिनो येन तदम्बु जलम्। पंसयति नष्टमिव भवतीति पांसुर्धूलिर्वा पंसधातोर्दीर्घः चेत्यर्थे चिरकालात्सञ्चितं गोमयं वा। इत्याद्येष्वर्थेषु पांशुरिति तालव्यान्तोऽपि शब्दो दृश्यते। बाध्यन्ते विलोड्यन्ते पदार्था याभ्यां तौ बाहू भुजौ। प्रायेणाऽयं द्विवचनान्तः॥

(२८) प्रथ्यादिभ्यः कुः प्रत्ययस्तस्मिन् सति प्रथिम्रद्योः सम्प्रसारणं सलोपश्च। प्रथते कीर्तिं वा प्रख्यापयति स पृथुराजविशेषो प्रख्यातः पदार्थो वा । म्रदते म्रदितुं शक्यते स मृदुर्मोदकः । कोमलं वा । भृज्जति तपसा शरीरमिति भृगुर्ऋषिः प्रतापो वा । न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लङ्घिबंह्योर्नलोपश्च ॥ २९ ॥ लघुः । बहुः ॥ २९ ॥

ऊर्णोतेर्नुलोपश्च ॥ ३० ॥ ऊरुः ॥ ३० ॥

महति ह्रस्वश्च ॥ ३१ ॥ उरु ॥ ३१ ॥

श्लिषेः कश्च ॥ ३२ ॥ श्लिकुः ॥ ३२ ॥

आङ्परयोः खनिशॄभ्यां डिच्च ॥३३॥ आखुः । परशुः ॥३३॥

हरिमितयोर्द्रुवः ॥ ३४ ॥ हरिद्रुः । मितद्रुः ॥ ३४ ॥

शते च ॥ ३५ ॥ शतद्रुः ॥ ३५ ॥

(२९) लंघिबंहिभ्यां कुरनयोर्नलोपश्च । लङ्घति गन्तुं शक्नोतीति लघुः स्वल्पो वा । अस्यैव बालमूललघ्वसुरालमङ्गुलीनां वालोरत्वमाप-द्यत इति वार्त्तिकेन रेफः । रघू राजविशेषः । बंहते वर्धतेऽन्येभ्य इति बहुः। प्रचुरः सङ्ख्या वा ॥

(३०) ऊर्णोत्याच्छादयति या सा ऊरुर्जङ्घा । कुप्रत्यये नुभागलोपः ॥

(३१) ऊर्णुधातोः कुप्रत्ययस्तस्मिन् नुभागलोप ऊकारस्य ह्रस्वत्वं च ऊर्णोत्याच्छादयत्यल्पानित्युरु महत् ॥

(३२) श्लिष्यति पदार्थैः सह सम्बध्यते स श्लिकुः । परवशो ज्योतिषं वा॥

(३३) आसमन्तात्खनति भूमिमित्याखुर्मूषको वराहो वा । परान् शत्रून् शृणाति हिनस्ति येन स परशुः । शस्त्रभेदः कुठारो वा पृषोदरा-दित्वादकारलोपे पूर्वार्थ एव पर्शुरपि दृश्यते ॥

(३४) हरिणाऽश्वेन वा द्रवति गच्छतीति हरिद्रुः । दारुहरिद्रा वा । मितं परिमितं द्रवतीति मितद्रुः शोभनगमनो वा ॥

(३५) शतधा बहुप्रकारैर्द्रवति गच्छतीति शतद्रुः । नदीभेदो गङ्गा वा । अत्र बाहुलकात्केवलादपि द्रुधातोः कुप्रत्ययो दृश्यते । यं द्रवन्ति कार्यार्थं प्राणिनः प्राप्नुवन्तीति स द्रुर्वृक्षः शाखा वा । द्रवः शाखा अस्मिन् सन्तीति द्रुमो वृक्षः (द्युद्रुभ्यां मः) इति सूत्रेण मत्वर्थीयो मः प्रत्ययः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खरुशङ्कुपीयुनीलङ्गुलिगु ॥ ३६ ॥

मृगय्वादयश्च ॥ ३७ ॥ मृगयुः । देवयुः । मित्रयुः ॥ ३७ ॥

(३६) खरु इत्येवमादयश्शब्दाः कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । खनधातोः कुर्नस्य रः खनति शरीरमिति खरुः कामः । दन्तः संहर्ता दर्पोऽश्वो वा । श्वेतार्थे तु वाच्यवत् यथा खरुरियं ब्राह्मणी । खरु कुलम् खरुः पुमान् । यं दृष्ट्वा शङ्कते सन्दिग्धो भवतीति तत् शङ्कु विषम् । कीलं शस्त्रं संख्या वृक्षभेदो जलभेदः पापं स्थाणुर्वा । पिबति पाति वा स पीयुः कालः काको वा । कुप्रत्यये धातोरीकारादेशो युगागमश्च । नितरां लङ्गति गच्छतीति नीलङ्गुः । क्रिमिजातिर्भ्रमरः पुष्पं वा । कुप्रत्यये उपसर्गस्य दीर्घत्वम् । सर्वत्र लगति संगच्छते तत् लिगु चित्तं वा । लगे धातोरुपधाया इत्वम् । बाहुलकात्—खञ्जति गमने विकलो भवतीति पङ्गुः । गतिहीनो वा कुप्रत्यये खञ्जधातोः पङ्गादेशः । स्वगन्धेनान्यगन्धान् हन्तीति हिङ्गुर्वणिग्द्रव्यम् ॥

(३७) मृगयुप्रभृतयः कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते मृग, देव, मित्र, कुमार, अध्वर इत्येतेषूपपदेषु या प्रापणे इत्यस्मात् कुप्रत्ययो भवति । मृगान् याति प्राप्नोतीति मृगयुर्व्याधः । देवान् विदुषो याति स देवयुर्धार्मिकः । मित्रान् यातीति मित्रयुर्लोकव्यवहारवित् । कुमारावस्थां यातीति कुमारयुः राजपुत्रो वा । अध्वरं यज्ञं यातीत्यध्वर्युर्याजकः । अध्वरस्यान्त्यलोपश्च बहुलवचनात्—कोहयति विस्मापयतीति कुहुः । यस्यां चन्द्रो न दृश्यते साऽमावास्या वा कुहूः । पण्डति गच्छतीति पाण्डुः रङ्गविशेषो राजविशेषो वा । पीलति प्रतिष्टम्भनोति निरुणद्धि जीवानिति पीलुर्हस्ती । वृक्षः काणुः परमाणवः पुष्पाणि वा । मंजिः सौत्रो धातुस्तस्मात् कुः । मञ्जति चित्तं प्रसादयतीति मञ्जु शोभनम् । एवं निघण्टु पलाण्डु कर्करेटु करेटु डमरु प्रभृतयः शब्दा अप्यत्रैव द्रष्टव्या आकृतिगणत्वादस्य ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मन्दिवाशिमथिचतिचङ्क्यङ्किभ्य उरच् ॥३८॥ मन्दुरा। वाशुरा। मथुरा। चतुरः। चङ्कुरः। अङ्कुरः॥ ३८ ॥

व्यथेः सम्प्रसारणं धः किच्च॥ ३९ ॥ विधुरः॥ ३९ ॥

मकुरदर्दुरौ॥ ४० ॥

मधुरादयश्च॥ ४१ ॥ मधुरः। कर्बुरः। बन्धुरः।

(३८) मन्दते स्तौति माद्यति वा यस्यां सा मन्दुरा। अश्वशाला वा। वाश्यते शब्दं करोतीति वाशुरा रात्रिर्वा। मथति विलोडयतीति मथुरा नगरी वा।

चतते याचते स चतुरो दक्षः कुशलो वा। चङ्क इति सौत्रो धातुः। चङ्कति सर्वतो भ्रमति येन स चङ्कुरो रथो वा। अङ्क्यते लक्ष्यते निःसृतं दृश्यते सोऽङ्कुरो बीजोत्पादो वा। अत्र खर्जूरादिवक्ष्यमाणगणेन ऊरप्रत्ययेऽङ्कूर इत्यपि। अर्थः स एव॥

(३९) व्यथते बिभेति यस्मात् स विधुरोऽत्यन्तवियोगः शरीरत्यागो वा। संप्रसारणे सति गुणनिषेधाय कित्वम्। बाहुलकात्थकारस्य धकारो न तेन विथुर इत्यपि सिद्धं भवति। विथुरश्चौरो दुष्टो वा॥

(४०) मकुरदर्दुरावुरच्प्रत्ययान्तौ निपात्येते। मङ्कतेऽलङ्करोति येन स मकुरो दर्पणो वा। मङ्कधातोर्नलोपः। बाहुलकाद्धातोरकारस्योकारे कृते दर्पणार्थ एव मुकुर इत्यपि सिद्धम्। दृणाति विदारयत्युष्णमिति दर्दुरो मेघो मण्डूको वाद्यभेदः पर्वतभेदो वा। उरचि दृधातोर्द्विर्वचनमभ्यासस्य रुगागमो धातोष्टिलोपश्च निपात्यते।

(४१) मद्गुरप्रभृतयः शब्दा उरजन्ता निपात्यन्ते। माद्यति हृष्यतीति मद्गुरो मत्स्यभेदो वा। धातोर्गुगागमः कबते वर्णविशेषो भवतीति स कर्बुरः श्वेतो दुष्टो वा धातोरुमागमः। बध्नाति मार्दवेन स बन्धुरो नम्रः सुन्दरो वा। खर्जूरादित्वादूरप्रत्यये बन्धूरोऽपि उक्तार्थ एव। चिनोत्येकी

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुक्कुरः । कुकुरः ॥ ४१ ॥
असेरुरन् ॥ ४२ ॥ असुरः ॥ ४२ ॥
मसेश्च ॥ ४३ ॥ मसुरा ॥ ४३ ॥
शावशेराप्तौ ॥ ४४ ॥ श्वशुरः ॥ ४४ ॥
अविमह्योष्टिषच् ॥ ४५ ॥ अविषः । महिषः ॥ ४५ ॥
अमेर्दीर्घश्च ॥ ४६ ॥ आमिषम् ॥ ४६ ॥

करोति स चिकुरः। अत्र धातोः कुगागमः। कोकत आदत्ते परपदार्थमिति क्कुरः कुकुरः श्वा । एकार्थौ । पक्षान्तरे कुगागमो निपात्यते अततिनिरन्तरं गच्छतीति आतुरोऽशान्तः । धातोरादौ दीर्घः । वान्ति मृगान् प्राप्नुवन्ति यया सा वागुरा मृगबन्धनी मृगबन्धनार्थं जालम् । अत्र धातोर्गुगागमो निपात्यते । शक्नोति तरितुमिच्छति शकुलोमत्स्यः । वङ्कतेकुटिलो भवतीति वकुलो वृक्षभेदो वा । अत्रोभयत्र प्रत्ययरेफस्य लत्वम् । वङ्केर्नलोपश्च ॥

(४२) अस्यति प्रक्षिपति धर्मं शुभगुणांश्च सोऽसुरः । मेघोदर्जनादिर्वा । नित्करणमाद्युदात्तस्वरार्थम् ॥

(४३) मस्यन्ति सुष्ठु तया परिणमन्ते ते मसुरा द्विदलविशेषाः । अत्रैव पञ्चमपादे मसधातोरुरन् प्रत्यये मसूर इत्यपि सिद्धम् । एकार्थाविमौ द्विदलान्नेषु मसूर इति प्रसिद्धम् ॥

(४४) शु इति शीघ्रार्थवाचिन्युपपद आप्तौ गम्यमानायां अशूङ्धातोरुरन् शु शीघ्रमश्नुत आप्नोति जामाता यं स श्वशुरः । दम्पत्योः पिता ॥

(४५) अवन्ति नद्यो गच्छन्ति यस्मिन् स अविषः समुद्रः । महति पूजयति स्वपुरुषार्थेन इति महिषो महान् राजा वा तद्योगान्महिषी राज्ञी पशुविशेषो वा । अवति प्रीणाति प्राणिन इत्यविषी नदी वा ॥

(४६) टिषच् । अमन्ति गच्छन्ति येन तदामिषं मांसं वा । अथवाऽमन्ति रोगिणो भवन्ति येन भक्षितेन तदामिषम् । इत्येकार्थः ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रुहेर्वृद्धिश्च ॥ ४५ ॥ रौहिषम् ॥ ४७ ॥

तवेर्णिद्वा ॥ ४८ ॥ ताविषी । तविषी ॥ ४८ ॥

नञि व्यथेः ॥ ४९ ॥ अव्यथिषः ॥ ४९ ॥

किलेर्बुक् च ॥ ५० ॥ किल्बिषम् ॥ ५० ॥

इषिमदिमुदिखिदिछिदिभिदिमन्दिचन्दितिमिमिहिमुहिमुचिरुचिरुधिबन्धिशुषिभ्यः किरच् ॥ ५१ ॥ इषिरः। मदिरा। मुदिरः। खिदिरः । छिदिरः। भिदिरम् । मन्दिरम्। चन्दिरम्। तिमिरम् ।

(४७) टिषच् रुहन्त्युत्पद्यन्ते यानि तानि रौहिषाणि तृणानि। रौहिषो मृगभेदो वा ॥

(४८) तव इति सौत्रो धातुस्तस्माट्टिषच् णिद्विकल्पेन भवति तवतीति ताविषी तविषी नदी बलं सेना भूमिर्वा ॥

(४९) न व्यथत इत्यव्यथिषः समुद्रः सूर्यो वा । अव्यथिषी पृथिवी रात्रिर्वा ॥

(५०) किलति क्रीडति विचारशून्यतया कार्येषु प्रवर्त्तते येन तत् किल्बिषं पापम् ॥

(५१) इत्यादि षोडश धातुभ्यः किरच् । इच्छतीष्टं साध्नुवन्त्यनेनेति इषिरोऽग्निः। माद्यति मत्तो भवति यया स। मदिरा सुरा मद्यम्। मोदतेऽसौ मुदिरः कामुको वा । मोदन्तेऽनेनेति मुदिरो मेघः । खिद्यति येन स खिदिरः चन्द्रमा वा। छिनत्ति येन स छिदिरोऽसिः। कुठारो वा। भिनत्ति येनेति भिदिरं वज्रम् । मदन्ते स्तुवन्ति स्वपन्ति वा यस्मिँस्तन्मन्दिरं गृहं नगरं वा । चन्दन्त्याह्लादयन्ति येन स चन्दिरश्चन्द्रमा हस्ती वा । तेमत्यार्द्रीभवत्यस्मिन् तत्तिमिरम् । नेत्ररोगो वा । यो मेहयति

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मिहिरः । मुहिरः । मुचिरः । रुचिरम् । रुधिरम् । बधिरः । शुषिरम् ॥ ५१ ॥

अशेर्नित् ॥ ५२ ॥ अशिरः ॥ ५२ ॥

अजिरशिशिरशिथिलस्थिरस्फिरस्थविरखदिराः ॥ ५३ ॥

सेचयति पृथिवीं मेघजलेन स मिहिरः । सूर्य्यो वा । मुह्यति यस्मै वा यो मुह्यति स मुहिरः । काम्यः पदार्थोऽसभ्यो जनो वा । यो मुञ्चति स्वपदार्थमन्येभ्यो ददाति स मुचिरो दानशीलो वा । यद्रोचते प्रीतिकरं भवति तद्रुचिरं शोभनम् । रुचिरं वस्त्रं रुचिरः पुत्रो रुचिरा कन्या वा । रुध्यते चर्म्मणा यत्तद्रुधिरं शोणितम् । बध्यते शब्दश्रवणान्निरुध्यते स बधिरो श्रोत्रविकलः । किलच् प्रत्यस्य कित्वादनिदितामिति नलोपः । शुष्यन्ति पदार्था येन तच्छुषिरं छिद्रमाकाशं वा ॥

(५२) अश्नाति यः पदार्थान् सोऽशिरोऽग्निः । धृष्टतयाऽश्नाति वाऽशीरो दुर्जनः ॥

(५३) अजिरादयः सप्त किरच् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अजन्ति गच्छन्ति यत्र तदजिरमङ्गनम् । गृहाग्रभागः । आंगन इति प्रसिद्धम् । शशति दिनाल्पत्वाच्छीघ्रं गच्छति तच्छिशिरमृतुर्हिमं शीतलं वस्तु वा । श्रथति विमुञ्चति पुरुषार्थमिति शिथिलः पुरुषः । शिथिला कन्या । शिथिलानि तृणानि मृदूनीत्यर्थः । धातोरुपधाया इत्वं रेफस्य लोपः प्रत्ययस्थस्य रेफस्य लत्वं च निपात्यते । गमनागमननिवृत्त्या तिष्ठतीति स्थिरं निश्चलम् । धातोराकारलोपः । स्फायते प्रवर्द्धते स स्फिरः । प्रभावो वा । आयभागस्य लोपो निपातनम् । गमनेऽसमर्थत्वात्तिष्ठतीति स्थविरः । वृद्धो भिक्षुको वा । धातोर्वुक् ह्रस्वत्वञ्च । खदति हिनस्तीति खदिरः । वृक्षभेदो वा ॥ बाहुलकात्—यः शेते स शिविरः शेरते यस्मिन् तत् शिविरं स्थानं वा । शीङ् धातोर्वुक् ह्रस्वत्वञ्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सलिकल्यनिमहिभडिभण्डिशण्डिपिण्डितुण्डिकुकिभूभ्य इलच् ॥ ५४ ॥ सलिलम् । कलिलम् । अनिलः । महिलः । भडिलः । भण्डिलः । शण्डिलः । पिण्डिलः । तुण्डिलः । कोकिलः । भविलः ॥ ५४

कमेः पश्च ॥ ५५ ॥ कपिलः ॥ ५५ ॥

गुपादिभ्यः कित् ॥ ५६ ॥ गुपिलः । तिजिलः । गुहिलम् ॥

(५४) सल्यादिभ्य इलच् । सलति गच्छतीति सलिलम् । जलं वा । कलति सङ्ख्याति तत् कलिलम् । मिश्रं दुःखेन साध्यं गहनमिति वा । अनिति जीवति जीवयति वा स अनिलः । वायुर्वा । यो महयति यं महयन्ति येन वा मह्यते पूज्यते स महिलः पुमान् । महिलं स्थानम् । महिला स्त्री वा । बाहुलकादिलच् इकारस्यैकारे सति महेला स्त्री इत्यपि सिद्धं भवति । भड इति सौत्रो धातुः । भडति हिनस्तीति भडिलः शूरो वा । भडति परिचरति स्वामिनमिति भडिलः सेवकः । इत्यादि । भण्डयति परिहसति येन स भण्डिलः । कल्याणं वा । शण्डति रोगयुक्तो भवतीति शण्डिलः । ऋषिविशेषो वा । यस्य गोत्रापत्यं शाण्डिल्य इति प्रसिद्धम् । पिण्डति सङ्घातं करोति स पिण्डिलः गणको वा । तुण्डति तोडति पृथक् करोति स तुण्डिलः । उच्चनाभिर्जनो वा । कोकत आदत्तेऽसौ कोकिलः । पक्षिविशेषो वा । यो भवति स भविलः । भवितुं योग्यो वा । बाहुलकात् कुटति कौटिल्यं करोति स कुटिलः क्रूरकर्मा वा ॥

(५५) कमेरिलच् मस्य पः कामयतेऽसौ कपिलः । वर्णभेदो मुनिविशेषो वा ॥

(५६) इलचः कित्वं गुणनिषेधार्थम् । गोपायति रक्षति प्रजा इति गुपिलः । राजा वा । तेजते तीक्ष्णो करोति वा तिज्यते सह्यते सर्वैः स तिजिलः । चन्द्रमा वा । गूहते वृक्षैराच्छादितो भवतीति गुहिलं वनं वा । अन्येऽपि पूजितुमादत्तुं योग्यः पूजिलो विद्वान् । शोषयति सर्वमिति शुषिलो वायुः । देवते प्रकाशयति धर्ममिति देविलो धार्मिको वा ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मिथिलादयश्च ॥ ५७ ॥ मिथिला ॥ ५७ ॥

पतिकठिकुठिगडिगुडिदंशिभ्य एरक् ॥५८॥ पतेरः । कठेरः । कुठेरः । गडेरः । गुडेरः । दशेरः ॥ ५८ ॥

कुम्बेर्नलोपश्च ॥ ५९ ॥ कुबेरः ॥ ५९

शदेस्तश्च ॥ ६० ॥ शतेरः ॥ ६० ॥

मूलेरादयः ॥ ६१ ॥ मूलेरः । गुधेरः । गुहेरः । मुहेरः ॥ ६१ ॥

(५७) मिथिलादय इलच् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । मथ्यते या सा मिथिला मथ्यन्ते शत्रवो यत्र सा मिथिला विदेहानां राज्ञां नगरी वा । अकारस्येत्वं निपात्यते । गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति यां सा गतिला वेत्र लता वा । गमेस्तकारान्तादेशः । या तङ्कति कृच्छ्रेण जीवति सा तकिला । नलोपः । ओषधिर्वा । चमति भक्षयतीति चण्डिला काचिन्नदी वा । धातोर्डुगागमः । यः पथति निरन्तरं गच्छति स पथिलः पथिको वा । इत्यादि ॥

(५८) पतति गच्छतीति पतेरो गन्ता पक्षी वा । कठति कृच्छ्रेण जीवतीति कठेरः । कारागारिको वा कुठेरोपि कृच्छ्रजीवी पर्णाशो वा । कटहर इतिप्रसिद्धम् । गडति सिञ्चतीति गडेरो मेघो वा । गुडति रक्षति स गुडेरो रक्षकः । दशति दंष्ट्राभ्यामिति दशेरः । हिंसको जीवो वा । अनुनासिकलोपः ॥

(५९) कुम्बत्यन्यानाऽऽच्छादयति कुबेरः । धनाध्यक्षो विद्वान् वा । इदित्वादप्राप्तो नलोपः एरकि विधीयते ॥

(६०) शीयते शातयति दुःखाकरोतीति शतेरः शत्रुर्वा । धातोर्दकारस्य तकारादेशः ॥

(६१) मूलेरादय एरक् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । यो मूलति सर्वोपरि तिष्ठति स मूलेरः । भूपतिर्वा । गुधति सर्वतो वेष्टयतीति गुधेरः । रक्षको वा । गूहते येन स गुहेरः । लोहघातनो वा । मुह्यति विक्षिप्तइव भवतीति मुहेरो मूर्खः । मुह्यत्यनेन वृषभादिरिति वा मुहेरः कणमर्दनादौ वृषभमुखबन्धनम् । मुहेर इत्येव भाषायां प्रसिद्धम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कबेरोतच् पश्च ॥ ६२ ॥ कपोतः ॥ ६२ ॥

भातेर्डवतुप् ॥ ६३ ॥ भवान् ॥ ६३ ॥

कठिचकिभ्यामोरन् ॥ ६४ ॥ कठोरः । चकोरः ॥ ६४ ॥

किशोरादयश्च ॥ ६५ ॥ किशोरः । सहोरः ॥ ६५ ॥

कपिगडिगण्डिकटिपटिभ्य ओलच् ॥६६॥ कपोलः । गडोलः गण्डोलः । कटोलः । पटोलः ॥ ६६ ॥

(६२) ओतच् प्रत्ययो बकारस्य पकारः । कबते विचित्रवर्णो भवतीति कपोतः । पक्षिभेदो वा ॥

(६३) भाति दीप्तो भवति दीपयति वा स भवान् । सर्वनामवाचकः सर्वनामसंज्ञकश्चाऽयं शब्दः ॥

(६४) कठति कृच्छ्रेण जीवति येन स कठोरः कठिनः पूर्णो वा । चकते तृप्यति स चकोरः पक्षिविशेषो वा ॥

(६५) किशोरादय ओरन् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । किंशृणाति हिनस्तीति किशोरः । अश्वशावको वा । किमो मलोपः शृधातोष्टिलोपश्च निपातनम् । सोढुंशीलः सहोरः साधुर्वा । गायति शब्दं करोतीति गौरः । अरुणे श्वेते पीते निर्मले च वाच्यलिङ्गः । गौरः कुमारः । गौरी कन्या । गौरं कुलम् । गौरं कमलम् ॥ गौरः सर्षपः । इत्यादि । गैधातोराकारादेशे कृत ओरना सह वृद्ध्येकादेशः । आयादेशस्त्वात्वाप्राप्तौ भवति ।

(६६) कम्पते चलति स कपोलः । वदनैकदेशो वा । सूत्रेनिर्देशादेव नलोपः । गडति सिंचति स गडोलः । गण्डति स गण्डोलः । वदनैकदेशो वा । गडोलगण्डोलौ गुडकपर्यायौ वा । कटति वर्षत्यावृणोति वा स कटोलः कटुश्चालो वा । पटति गच्छति स पटोलः । फलविशेषो वस्त्रविशेषो वा । बाहुलकात्—कण्डति माद्यतीति कण्डोलः । चाण्डालो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मीनातेरूरन् ॥ ६७ ॥ मयूरः ॥ ६७ ॥

स्यन्देः संप्रसारणं च ॥ ६८ ॥ सिन्दूरम् ॥ ६८ ॥

सितनिगमिमसिसच्यविधाञ्क्रुशिभ्यस्तुन् ॥ ६९ ॥ सेतुः । तन्तुः । गन्तुः । मस्तुः । सक्तुः । ओतुः । धातुः । क्रोष्टुः ॥ ६९ ॥

वसेरगारे णिच्च ॥ ७० ॥ वास्तु ॥ ७० ॥

पः किच्च ॥ ७१ ॥ पीतुः ॥ ७१ ॥

(६७) मीनाति हन्तीति मयूरः । पक्षिविशेषो वा । धातोर्गुणादेशः । बहुलवचनात्—मीनातेरात्वनिषेधः ॥

(६८) स्यन्दते प्रस्रवति तत् सिन्दूरम् । रक्तचूर्णं वृक्षभेदो वा । इत्यादि । ऊरन् प्रत्यये यकारस्य संप्रसारणम् ॥

(६९) सिनोति बध्नातीति सेतुः । समुद्रो वा । (तितुत्रतथ०) इतीट् निषेधः । तनोति विस्तृणोतीति तन्तुः । सूत्रं वा । वरामुत्तमां विद्यां तनोति स वरतन्तुर्मुनिः । वरतन्तुना प्रोक्तो वारतन्तवीयो ग्रन्थः । गच्छतीति गन्तुः । पथिको वा । समन्ताद् गच्छति भ्रमतीति आगन्तुरभ्यागतो वा । मस्यति परिणमतीति मस्तुः । दधनि निस्सृतमुदकं वा । सच्यन्ते समवेताः क्रियन्ते ते सक्तवः । पक्वयवादिचूर्णं वा । अवति रक्षणादिकं करोति स ओतुः । विडालो वा । अव धातोर्ज्वरत्वर इति सूत्रेणोपधावकारयोरूठ् । दधाति धरति पोषति वा स धातुः । अश्मनो विकारः । सुवर्णादिः शरीरस्थवातादिर्वा । क्रोशत्याह्वयति रोदिति वा स क्रोष्टुः । क्रोष्टा शृगालो वा ।

(७०) वसन्ति प्राणिनो यत्र तद्वास्तु गृहं वा । अगारादन्यत्र णित्वाभावः । वसन्ति येन तद्वस्तु द्रव्यं वा ।

(७१) पिबत्युदकादिकं पाति प्राणिनो रक्षति वा स पीतुः । अग्निः सूर्यो वा । कित्त्वादीत्वम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्त्तेश्च तुः ॥ ७२ ॥ ऋतुः ॥ ७२ ॥

कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च ॥ ७३ ॥ कन्तुः । मन्तुः । जन्तुः । गातुः । भातुः । यातुः । हेतुः ॥ ७३ ॥

चायः की ॥ ७४ ॥ केतुः ॥ ७४ ॥

आप्नोतेर्ह्रस्वश्च ॥ ७५ ॥ अप्तुः ॥ ७५ ॥

कृञः क्तुः ॥ ७६ ॥ क्रतुः ॥ ७६ ॥

एधिवह्योश्च तुः ॥ ७७ ॥ एधतुः । वहतुः ॥ ७७ ॥

(७२) चकारात्तुः किद्भवति पुनः पुनर्ऋच्छति गच्छत्यागच्छतीति ऋतुः । वसन्तादिः स्त्रीणां रजःपतनकालो वा ॥

(७३) कामयते येन स कन्तुः कामश्चित्तं वा । मन्यते जानाति वा येन स मन्तुः । अपराधो वा । जन्यते शरीरादिधारणेन प्रादुर्भवति स जन्तुर्जीवः । गायति षड्जादिस्वरानाऽऽलापयति स गातुर्गायकः । गाते गच्छतीति गातुः पथिको वा । भृङ्गगन्धर्वौ वा । भाति प्रकाशयतीति भातुः सूर्यो वा । याति प्रापयतीति यातुः । अध्वगः कालो वा । हिनोति येन यो वा कार्यरूपेण वर्धतेऽसौ हेतुः कारणम् ॥

(७४) चायते पूजयति । नशामयति आवयति वा स केतुर्ग्रहः । पाताका वा । धूमकेतुरुत्पातः ॥

(७५) आप्नोति व्याप्नोति सर्वान् पदार्थानिति, अप्तुः । शरीरं वा । तुप्रत्यये आप्लृधातोर्ह्रस्वत्वम् ॥

(७६) कृञ् धातोः क्तुः प्रत्ययो भवति यः क्रियते यया करोति वेति क्रतुः । प्रज्ञा यज्ञो वा कित्वाद् यण् गुणाऽभावश्च ॥

(७७) एधते वर्द्धतेऽसावेधतुः । पुरुषो वा । वहति भारमिति वहतुः । अनड्वान् वा । चित्करणमन्तोदात्तार्थम् ॥

For Private And Personal Use Only

जीवेरातुः ॥ ७८ ॥ जीवातुः ॥ ७८ ॥

आतृकन् वृद्धिश्च ॥ ७९ ॥ जैवातृकः ॥ ७९ ॥

कृषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः स्त्रियाम् ॥ ८० ॥ कर्षूः । चमूः । तनूः । धनूः । सर्जूः । खर्जूः ॥ ८० ॥

मृजेर्गुणश्च ॥ ८१ ॥ मर्जूः ॥ ८१ ॥

खडेर्डुवा ॥ ८२ ॥ खड्डूः । खडूः ॥ ८२ ॥

वहेर्धश्च ॥ ८३ ॥ वधूः । ८३ ॥

कषेश्छश्च ॥ ८४ ॥ कच्छूः ॥ ८४ ॥

(७८) जीव्यते येन यो वा जीवति स जीवातुः । जीवनमौषधं वा ॥

(७९) जीवधातोरातृकन् प्रत्ययस्तस्मिन् सति वृद्धिश्च भवति। यो जीवति पूर्णावस्थापर्यन्तं स जैवातृक आयुष्मान् निशाकरो वा ॥

(८०) कृष्यादिभ्य ऊः प्रत्ययः कर्षत्याकर्षति पदार्थानिति कर्षूः शुष्कगोमयोऽग्निर्नदी वा । चमति भक्षयतीति चमूः । शत्रुभक्षिणी सेना वा । तनोति कार्याणि येन सा तनूः शरीरं वा । दधन्ति धनमर्जयति स धनूः शस्त्रं वा । सर्जति उपार्जति कार्याणीति सर्जूः वैश्यो वा । खर्जति पीड़यतीति खर्जूः । कण्डूर्वा ॥

(८१) मार्ष्टि शोधयतीति मर्जूः । शुद्धिर्वा । ऊप्रत्ययस्याकित्वान्नित्यापि प्राप्ता वृद्धि गुणेन बाध्यते ॥

(८२) खडति भिनत्तीति खड्डूः । खडूः । बाहुजङ्घयोराभूषणं मृतशय्या वा ।

(८३) वहति सुखानि प्रापयतीति वधूः । नवोढा स्त्री वा ॥

(८४) कषति हिनस्ति दुःखयतीति कच्छूः पामा वा । खाज इति प्रसिद्धा । षकारस्य छकारः ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

णित्कशिपद्यर्त्तेः ॥ ८५ ॥ काशूः । पादूः । आरूः ॥ ८५ ॥
अणो डश्च ॥ ८६ ॥ आडूः ॥ ८६ ॥
लम्बेर्नलोपश्च ॥ ८७ ॥ अलाबूः ॥ ८७ ॥
के श्र एरङ् चास्य ॥ ८८ कशेरूः ॥ ८८ ॥
त्रो दुट् च ॥ ८९ ॥ तर्दूः ॥ ८९ ॥
दरिद्रातेर्यालोपश्च ॥ ९० ॥ दर्द्रूः ॥ ९० ॥
नृतिशृध्योः कूः ॥ ९१ ॥नृतूः । शृधूः ॥९१ ॥

(८५) कश्यादिभ्य ऊ णिद्भवति । कष्टे गच्छति शास्ति वेति काशूः । विकलधातुर्जनः । शक्तिर्वा पद्यते गच्छति यया स पादूः । उपानहौ वा । ऋच्छति प्राप्नोति स आरूः पिङ्गलो वा ॥

(८६) अणति शब्दयतीति आडूः । णस्य डः । जलगामि द्रव्यं वा ॥

(८७) ऊप्रत्यये लम्बधातोर्नलोपो भवति । न लम्बतेऽधो न स्रवति गच्छति सा अलाबूः । तुम्बी वा ।

(८८) ककारोपपदात् शृधातोरूप्रत्ययस्तस्मिन् प्रकृतेरेङादेशः । कष्टे शास्ति स कशेरूः । तृणकन्दं वा । बहुलवचनादूप्रत्ययस्य ह्रस्वे कृते कशेरुरिति ह्रस्वान्तोऽपि दृश्यते ॥

(८९) तरति येन यया वा स तर्दूः दारुहस्तः पुरुषो यष्टिर्वा । तॄधातोर्दुगागमः ॥

(९०) दरिद्राधातोरूप्रत्यये (इ । आ) इत्येतयोर्वर्णयोर्लोपः । दरिद्राति दुर्गतिं करोतीति दर्द्रूः कुष्ठभेदो वा । मृगय्वादित्वात् (रि आ) इत्यनयोर्लोपे दद्रूरित्यपि सिद्धम् । अत्र सूत्रेऽपि (रि आ) इत्येतयोर्लोपे दद्रूरिति भवति ॥

(९१) नृत्यतीति नृतूर्नर्तकः शर्धते कुत्सितं शब्दयतीति शृधूः अपानवायुर्वा । प्रत्ययस्य कित्वाद् गुणनिषेधः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऋतेरम् च ॥ ९२ ॥ रतूः ॥ ९२ ॥

अन्दूदृम्फूजम्बूकम्बूकफेलूकर्कन्धूदिधिषूः ॥ ९३ ॥

मृग्रोरुतिः ९४ ॥ मरुत् । गरुत् ॥ ९४ ॥

ग्रो मुट् च ॥ ९५ ॥ गर्मुत् ॥ ९५ ॥

हृषेरुलच् ॥ ९६ ॥ हृषुलः ॥ ९६ ॥

(९२) ऋत इति सौत्रो धातुः ऋतीयते घृणां करोतीति रतूः सत्यं दिव्यनदी वा । धातोरमागमः ॥

(९३) अन्दूप्रभृतयः शब्दाः कूप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अन्दति बध्नाति येन यया वा सा अन्दूः हस्तिबन्धनी शृङ्खला वा । जंजीर इति प्रसिद्धा । दृम्फत्युत्कृष्टं क्लेशं ददातीति दृम्फूः सर्पजातिर्वा । जमन्ति भक्षयन्ति यां सा जम्बूः वृक्षविशेषजातिर्वा । धातोर्बुगागमः । बाहुलकादूप्रत्ययस्य ह्रस्वे कृते जम्बुरित्यपि दृश्यते । कामयते स कम्बूः परद्रव्यापहारी वा । धातोर्बुक् । कफं श्लेष्माणं लात्याददातीति कफेलूः । ओषधिविशेषो वा । एकारान्तत्वं कफशब्दस्य निपातनम् । कर्कं कण्टकं दधाति धरतीति कर्कन्धूः । बदरीफलं वा । कित्वादाकारलोपः । उपपदस्य नुगागमो निपातनम् । दिधिं धैर्यमिन्द्रियदौर्बल्यात् स्यति त्यजतीति दिधिषूः । पुनर्भूर्वा निपातनात् षत्वम् ।

(९४) म्रियते मारयति वा स मरुत् मनुष्यजातिः पवनो वा । गिरति निगलतीति गरुत् पक्षी वा ॥

(९५) गिरति येन तत् गर्मुत् सुवर्णं तृणजातिभेदो वा ॥

(९६) हृष्यति तुष्टो भवतीति हृषुलः । मृगः कामी वा । बाहुलकात् चटति वर्षत्यावृणोति वा स चटुलः शोभनो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हृसृरुहियुषिभ्य इतिः ॥ ९७ ॥ हरित् । सरित् । रोहित् । योषित् ॥ ९७ ॥

ताडेर्णिलुक् च ॥ ९८ ॥ तडित् ॥ ९८ ॥

शमेर्ढः ॥ ९९ ॥ शण्ढः ॥ ९९ ॥

कमेरठः ॥ १०० ॥ कमठः ॥ १०० ॥

रमेर्वृद्धिश्च ॥ १०१ रामठम् ॥ १०१ ॥

शमेः खः ॥ १०२ ॥ शङ्खः ॥ १०२ ॥

कणेष्ठः ॥ १०३ ॥ कण्ठः ॥ १०३ ॥

(९७) आहरति गृह्णाति द्रव्यमिति हरित् दिक् वर्णस्तृणमश्वविशेषो वा । सरति गच्छतीति सरित् नदी वा । रोहति प्रादुर्भवतीति रोहित् लताविशिष्टा हरिणी वा । युष इति सौत्रो धातुः । अथवा जुष इत्यस्य वर्णविकारेण पाठः । जुष्यते सेव्यते प्रीणयति वा सा योषित् स्त्री वा ॥

(९८) ताडयति पीडयतीति तडित् । विद्युद्वा । प्रत्ययलक्षणेन णिलोपेऽपि वृद्धिः स्यादिति लुग्विधीयते ॥

(९९) शाम्यति शान्तो भवतीति शण्ढः स्वन्तत्रो वृषभः । सांड इति प्रसिद्धः । नपुंसकं वा ॥ ॥

(१००) कामयतेऽसौ कमठः कच्छपो वा । कमठमिति भाण्डभेदो वा । बाहुलकात्–जीर्यत्यवस्थाहीनो भवतीति जरठः पाण्डुरङ्गो वा । शमठः । शान्तो वा ।

(१०१) रमतेऽस्मिन्निति रामठं हिङ्गुर्वा । अठ प्रत्यये रमधातोर्वृद्धिः ॥

(१०२) शाम्यतीति शङ्खः । निधिभेदः । जलजं ललाटास्थि । बहुलवचनात्–खकारस्येत्संज्ञा न भवति ॥

(१०३) कणति येन शब्दं करोतीति कण्ठः । गलो ध्वनिर्वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कलस्तृपश्च ॥ १०४ ॥ तृपला ॥ १०४ ॥

शमेर्वश्च ॥ १०५ ॥ शवलः ॥ १०५ ॥

वृषादिभ्यश्चित् ॥ १०६ ॥ वृषलः ॥ १०६ ॥

कमेर्बुक् ॥ १०७ ॥ कम्बलः ॥ १०७ ॥

(१०४) तृपधातोः कलप्रत्ययः । तृप्यति यया सा तृपला लता वा । अत्र सूत्रे चकारग्रहणात् तृफधातोरपि कलप्रत्ययस्तेन तृफला इत्यपि सिद्धम् । तृफला त्रिफला इत्योषधिविशेषपर्यायौ । बाहुलकात्—काम्यतेऽसौ कमलः । कमलं पद्मं वा । उदकं ताम्रमौषधं च । मृगभेदः कमलः । कमला श्रीपतिप्रिया वा । मण्डति भूषयति प्रतिपादयति वा स मण्डलः । मण्डलं चक्राकारं देशभेदो बिम्बं कदम्बः कुष्ठं यज्ञभेदः श्वा च । कुण्डति दहतीति कुण्डलम् । वलयं पाशं कर्णभूषणं वा । पटति गच्छतीति पटलः । अक्षिरोगस्तिलकं वा । इत्यादि । छ्यति छिनत्ति पराऽभिप्रायमिति छलम् ॥

(१०५) शपत्याक्रोशति स शवलः वर्णभेदो वा ॥

(१०६) वृषादिधातुभ्यः कलप्रत्ययश्चिद्भवति । वर्षति सिञ्चतीति वृषलः शूद्रो वा । तस्य स्त्री वृषली । कोशति श्लिष्यति कोशति व्यवहर्तुं जानातीति वा कुशलो निपुणः कुशलं क्षेममिति वा । बाहुलकाद्गुणे कोशल इति देशभेदो वा । पलति गच्छति येन तत् पललम् । तिलचूर्णं पङ्कं मांसं वा । दीव्यत्यधर्मिणो विजिगीषतीति देवलो धार्मिकः । सरति सर्वत्र गच्छतीति सरलः । अकुटिल उदारो वा । धावति गच्छति शुद्धो भवति वा स धवलः । श्वेतः शुद्धो वा । धावुधातोर्बाहुलकाद्ध्रस्वत्वम् । वृषादेराकृतिगणत्वात् केवलकबलतरलानलजम्भलपेशलमर्दलादयोऽपि शब्दा द्रष्टव्या मुस्यति खण्डयति मोषयति चोरयति वा स मुसलः । मुषलो वा । मुशलं मुसलमिति लोहाग्रभागि कुट्टनसाधनम् । मुषलश्चौरो वा ॥

(१०७) काम्यतेऽभीप्स्यते यः स कम्बलः । ऊर्णाविकार उदकं वा । कमधातोः कलप्रत्यये बुक् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लङ्गेर्वृद्धिश्च ॥ १०८ ॥ लाङ्गलम् ॥ १०८ ॥

कुटिकशिकौतिभ्यो मुट् च ॥ १०९ ॥ कुट्मलम् । कश्मलम् । कोमलम् ॥ १०९ ॥

मृजेष्टिलोपश्च ॥ ११० ॥ मलम् ॥ ११० ॥

चुपेरच्चोपधायाः ॥ १११ ॥ चपलम् ॥ १११ ॥

शकिशम्योर्नित् ॥ ११२ ॥ शकलम् । शमलम् ॥ ११२ ॥

छो गुग्घ्रस्वश्च ॥ ११३ ॥ छगलः ॥ ११३ ॥

---

(१०८) लङ्गन्ति प्राप्नुवन्ति, अन्नादिकं येन तल्लाङ्गलम् । हलं वा । बहुलवचनात्—कन्दत्याह्वयति सा कदली । वृक्षभेदः केला इति प्रसिद्धा वा । बाहुलकाद्धातोर्नलोपः ॥

(१०९) कुटादिभ्यो विहितस्य कलप्रत्ययस्य मुट् । कुटतीति कुट्मलः । बाहुलकात्—कुण्डति दहतीति कुण्मलः । किंचिद्विकासितपुष्पनाम्नो वा । कष्टे गच्छति शास्ति वा स कश्मलःकश्मलं कल्मषं पापं वा । कौति-शब्दयतीति कोमलः । कोमलं मृदु जलं वा । बाहुलकात्—पिङ्क्ते वर्ण-यतीति पिङ्गलः । वर्णभेदो वा ।

(११०) यन् मृज्यते शोध्यते तन्मलम् । पुरीषं पापम् । कृपणः पुरुषो वा । मृजधातोष्टिलोपः ॥

(१११) चोपति मन्दं मन्दं गच्छति स चपलः । क्षणिकं शीघ्रं वा । चपला पिप्पली विद्युद्वा । धातोरुकारस्याकारादेशः ॥

(११२) शक्नोतीति शकलः खण्डो मत्स्यभेदो वा । शाम्यतीति शमलः । अशुद्धं वा ॥

(११३) छ्यति छिनत्तीति छगलः छागो बर्करो वा । धातोर्गुगा-गमो ह्रस्वश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अमन्ताड् डः ॥ ११४ ॥ दण्डः । रण्डा । खण्डः । मण्डः ॥ बण्डः । अण्डः । षण्डः । गण्डः । चण्डः । पण्डः । पण्डा ॥ ११४ ॥

क्वादिभ्यः कित् ॥ ११५ ॥ कुण्डम् । काण्डम् । गुडः । घुण्डः ॥ ११५ ॥

स्थाचतिमृजेरालज्वालजालीयचः ॥ ११६ ॥ स्थालम् । चात्वालः । मार्जालीयः ॥ ११६ ॥

(११४) अमिति प्रत्याहारग्रहणम् । अ, म, ङ, ण, न इत्येते वर्णा अन्तेऽस्य तस्माड् डः प्रत्ययो भवति बहुलवचनादित्संज्ञानिषेधः । दाम्यन्त्यु-पशाम्यन्त्यनेन स दण्डः । यष्टिभेदो वा । रमतेऽसौ रण्डा विधवा नारी वा । खण्डतेऽवदीर्यतेऽसौ खण्डः । विभागो मिष्टभेदो वा । खाण्ड इति प्रसिद्धः भिन्नः पदार्थो वा । मन्यते जानातीति मण्डः । मण्डा धात्री समाख्याता मण्डं पक्वौदनोदकम् । बनति शब्दयति सम्भजति वा । स बण्डः । छिन्न-हस्तको वा । अमन्ति संप्रयोगं प्राप्नुवन्ति येन सोऽण्डः प्राण्यङ्गावयवो वा । सनोति ददातीति षण्डः । नपुंसको बनं गोपः सङ्घातो वा । गच्छ-तीति गण्डः । कपोलव्याधिविशेषो वा । चणति ददातीति चण्डः हिंसकस्तीव्रो वा । कोपना स्त्री चण्डी । चडिकोप इत्यस्य घञन्तोऽपि चण्डः क्रोधी । पणायते व्यवहरति स्तौति वा । स पण्डः नपुंसकः पण्डा बुद्धिर्वा । फणति गच्छत्यनेनेति फण्डः । पन्था फण्डमुदरं वा ॥

(११५) कवर्गादिधातुभ्यो डः किद् भवति । कुणति शब्दयत्युपक-रोति वा स कुण्डः । पत्यौ जीवति पुरुषान्तरादुत्पन्नः पुत्रो जलाधारविशेषो वा । कुण्डा कुण्डिका वा । गवतेऽव्यक्तशब्दं करोतीति गुडः । गोल इक्षुपाको वा । घोणते भ्राम्यतीति घुण्डः । भ्रमरो वा । काम्यते जनैस्तत्काण्डम् । ग्रन्थैकदेशः । परिमाणविशेषो बाणोऽवसरो वा ॥

(११६) तिष्ठन्त्यस्मिन् तत्स्थालम् । पात्रभेदो वा । थाल इति प्रसि-द्धम् । स्थाली सूपादिपचनी । गौरादित्वान् ङीष् । चतधातोर्वालञ् । चतते याचतेऽसौ चात्वालः चात्वालं यज्ञकुण्डं दर्भो वा । मृजेरालीयच् । मार्ष्टीति मार्जालीयः । बिडालो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पतिचण्डिभ्यामालञ् ॥ ११७ ॥ पातालम् । चण्डालः ॥ ११७ ॥
तमिविशिविडिमृणिकुलिकपिपलिपञ्चिभ्यः कालन् ॥ ११८ ॥
तमालः । विशालः । विडालः । मृणालम् । कुलालः । कपालम्
पलालम् । पञ्चलाः ॥ ११८ ॥
पतेरङ्गच् पक्षिणि ॥ ११९ ॥ पतङ्गः ॥ ११९ ॥
तरत्यादिभ्यश्च ॥ १२० ॥ तरङ्गः । लवङ्गः ॥ १२० ॥

(११७) पतन्ति गच्छन्ति यत्र स पातालो देशः पादस्य तले वर्त्तत इति वा । पातालः पृषोदरादित्वात् सिद्धः । चण्डति कुप्यतीति चाण्डालः मातङ्गो वा । चण्डं कुपितमलं भूषणमस्येति समासेऽपि चण्डालः सिद्धः ॥

(११८) ताम्यन्ति काङ्क्षन्ति यं स तमालः वृक्षभेदो वा । विशति सर्वत्रेति विशालः । विशाला मानिनी भार्या विशालः सुन्दरः पुमान् । विशालोज्जयिनी प्रोक्ता विशालं च बृहद् गृहम् । विडत्याक्रोशतीति विडालः । मार्जारो वा । स्त्री विडाली । मृणाति हिनस्तीति मृणालः मृणालं पद्ममूलं वा । कोलति सङ्घातयतीति कुलालः । कुम्भकारो वा । कम्पते येन तत्कपालम् । नृशिरो घटखण्डो वा । पल्यते प्राप्यतेऽसौ पलालः । निष्फलानि व्रीहितृणानि वा । प्यार इति प्रसिद्धम् । पञ्चति व्यक्तं करोतीति पञ्चालः । देशविशेषो वा । बहुलवचनात्—शोधातोरपि कालन् । श्यन्ति सूक्ष्माणि कार्याणि कुर्वन्त्यत्र सा शाला गृहम् ॥

(११९) पक्षिण्यभिधेये पतधातोरङ्गच् प्रत्ययो भवति पतति गच्छतीति पतङ्गः पक्षी पक्षिणीत्युच्यमानेऽपि बाहुलकात् पतङ्गः सूर्योऽग्निरश्वः शलभः शालिभेदो वा । इत्यादीनामपि नामानि भवन्ति ॥

(१२०) तरति प्लवत्यनेन स तरङ्गः । जलोर्मिर्वस्त्रं भङ्गा वा । लुनात्यनेन स लवङ्गः । ओषधिर्वा । तरत्याद्याकृतिगणः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विडादिभ्यः कित्॥१२१॥विडङ्गः । मृदङ्गः । कुरङ्गः॥१२१॥

सृवृञोर्वृद्धिश्च ॥ १२२ ॥ सारङ्गः । वारङ्गः ॥ १२२॥

गन् गम्यद्योः ॥ १२३ ॥ गङ्गा । अद्गः ॥ १२३ ॥

छापूखडिभ्यः कित् ॥१२४॥ छागः । पूगः । खड्गः ॥१२४॥

भृञः किन्नुट् च ॥ १२५ ॥ भृङ्गः ॥ १२५ ॥

(१२१) विडत्याक्रोशतीति विडङ्गः । ओषधिविशेषो वा । मृद्नाति यं स मृदङ्गः । वाद्यभेदो वा । करति विक्षिपतीति कुरङ्गः । हरिणो वा । कुरङ्गी हरिणी स्त्रियां गौरादित्वान् ङीष् । बाहुलकाद्—ऋकार-स्योत्वं रपरत्वं च ॥

(१२२) सृवृञ्भ्यामङ्गच् धातोर्वृद्धिश्च । सरति सर्वत्र गच्छतीति सारङ्गः । पक्षी हरिणो भृङ्गो वा । यो वृणोति गृह्णाति स वारङ्गः खड्गादिमुष्टिर्वा । बाहुलकात्—नृणाति नयति स नारङ्गः । रसः पिप्पली-वृक्षफलभेदो वा ॥

(१२३) गच्छतीति गङ्गा । नदीभेदो वा । अत्तिवाऽद्यते भक्ष्यतेऽ-सावद्गः । पुरोडाशो वा । बाहुलकात्—अमगत्यादिष्वित्यस्मादपि गन् । गच्छति प्राप्नोति कर्माणि विषयान् वा येन तदङ्गम् । गात्रमुपायः प्रती-कमप्रधानं देशविशेषो वा ॥

(१२४) छादिभ्यो गन् किद् भवति । छिनत्तीति छागः । वर्करो वा । पूयते मुखं येन स पूगः । क्रमुकः फलविशेषः । सुपारीति प्रसिद्धः । समूहो वा । खडति भिनत्ति येन स खड्गः । शस्त्रं गण्डकः—गेंड़ा इति प्रसिद्धः । बाहुलकात्—सेटत्यनाद्रियते स षिड्गः । चञ्चलमना हारमध्यस्थो मणि-र्वा । बहुलवचनादेव सत्वनिषेधः ॥

(१२५) भृञ्धातोर्गन् प्रत्ययः कित् तस्य च नुट् बिभर्त्ति धरति पुष्णाति वा स भृङ्गः । भ्रमरो वा ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शृणातेर्ह्रस्वश्च ॥ १२६ ॥ शृङ्गः ॥ १२६ ॥

गण् शकुनौ ॥ १२७ ॥ शार्ङ्गः ॥ १२७ ॥

मुदिग्रोर्गग्गौ ॥ १२८ ॥ मुद्गः । गर्गः ॥ १२८ ॥

अण्डन् कृसृभृवृञः ॥ १२९ ॥ करण्डः । सरण्डः । भरण्डः वरण्डः ॥ १२९ ॥

शृदृभसोऽदिः ॥ १३० ॥ शरत् । दरत् । भसत् ॥ १३० ॥

(१२६) कित् नुट् चेत्यनुवर्त्तते शृणाति हिनस्ति येन तत् शृङ्गम् विषाणं पर्वताग्रं मत्स्यभेद ओषधिभेदः सुवर्णभेदो वा ।

(१२७) गणप्रत्ययस्य गित्वादृतोवृद्धिः पूर्ववन्नुट् च । शृणातीति शार्ङ्गः पक्षी। बाहुलकात्प्रत्ययस्यादावकारागमेन शारङ्ग इत्यपि सिद्धं भवति॥

(१२८) मुदधातोर्गक् । मोदतेऽसौ मुद्गः अन्नभेदो वा । मुद्गान् लाति गृणातीति मुद्गलो मुनिः। यस्य गोत्रापत्यं मौद्गल्य इति प्रसिद्धम् । गृणात्युपदिशतीति गर्गः । ऋषिविशेषो वा । गृधातोर्गः प्रत्ययः ॥

(१२९) कृआदिभ्योऽण्डन् प्रत्ययः। क्रियतेऽसौ करण्डः पुष्पभाण्डभेदः करण्डो वंशविकारपात्रम् । पिटारी इति प्रसिद्धा । सरति गच्छतीति सरण्डः पक्षी वा । बिभर्त्ति पुष्यतीति भरण्डः स्वामी । वृणोति स्वीकरोतीति वरण्डः । मुखरोगः सन्दोहोवा । बाहुलकात्—तरति येन स तरङ्गः । जलतरणसाधनं वा । वनति संभजति धर्ममिति वतण्डः। ऋषिविशेषो वा। धातोस्तकारान्तादेशः । छमति भक्षयतीति छमण्डः । मातापितृशून्यो वा। शेतेऽसौ शयण्डः।विषयो वा।इत्यादयः शब्दा बहुलवचनादेव सिद्धा भवन्ति।

(१३०) शृदृभसधातुभ्योऽदिः प्रत्ययः शृणाति हिनस्त्यस्मिन्निति शरत् । कालविशेष ऋतुर्वा । दीर्यतेऽदो दरत् हृदयं कूलं वा । बिभस्ति भर्त्सयति प्रकाशते वा। स भसत् जघनं वा । बाहुलकात्—पर्षति स्निह्यति प्रीतिकरं प्रसन्नं भवति चित्तमस्यां सा पर्षत् । सभा समाजो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दृणातेः पुग्घ्रस्वश्च ॥ १३१ ॥ दृषत् ॥ १३१ ॥
त्यजितनियजिभ्यो डित् ॥ १३२ ॥ त्यद् । तद् । यद् ॥ १३२ ॥
एतेस्तुट् च ॥ १३३ ॥ एतद् ॥ १३३ ॥
सर्त्तेरटिः ॥ १३४ ॥ सरट् ॥ १३४ ॥
लङ्घेर्नलोपश्च ॥ १३५ ॥ लघट् ॥ १३५ ॥
पारयतेरजिः ॥ १३६ ॥ पारक् ॥ १३६ ॥
प्रथेः कित्सम्प्रसारणं च ॥ १३७ ॥ पृथक् ॥ १३७ ॥
भियः षुग्घ्रस्वश्च ॥ १३८ ॥ भिषक् ॥ १३८ ॥

(१३१) दीर्यतेऽसौ दृषत् । पाषाणो वा । अदिप्रत्यये धातोः पुक् ह्रस्वागमश्च भवति ।

(१३२) त्यजति क्लेशादिहीनो भवतीति त्यद् । तनुते विस्तृतो भवतीति तद् । यजति सर्वैः पदार्थैः सङ्गतो भवतीति यत् । ब्रह्मणो नामानि त्रयाणि । त्यदादीनां सर्वनामसञ्ज्ञा भवति तेन सामान्यवाचकास्त्यदादयः ॥

(१३३) इण्धातोरदिः प्रत्ययस्तस्य तुडागमश्च । एति प्राप्नोतीत्येतत् । अस्यापि सर्वनामसञ्ज्ञा ॥

(१३४) सरति गच्छतीति सरट् । वायुर्मेघो वा । सृधातोरटिः प्रत्ययः ॥

(१३५) लङ्घति शोषयतीति लघट् । वायुर्वा । धातोर्नलोपः ॥

(१३६) पारयति कर्म समापयतीति पारक् सुवर्णं वा । चौरादिकात्पारिधातोरजिः प्रत्ययः ॥

(१३७) प्रथयति सङ्घाताद्विस्तृतो भवतीति पृथक् नानात्वं वा । स्वरादिपाठादव्ययत्वम् ॥

(१३८) बिभेत्यसौ भिषक् । वैद्यो वा । सुमङ्गलभेषजाच्चेति निपातनाद् गुणे कृते भेषजम् । भैषजमेव भैषज्यम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

युष्यसिभ्यां मदिक् ॥ १३९ ॥ युष्मद् । अस्मद् ॥ १३९ ॥

अर्त्तिस्तुसुहुसृधृक्षिक्षुभायावापदियक्षिनीभ्यो मन् ॥ १४० ॥

अर्म्मः । स्तोमः । सोमः । होमः । सर्मः । धर्मः । क्षेमम् ।

क्षोमम् । भामः । यामः । वामः । पद्मम् । यक्ष्मः । नेमः ॥१४०॥

जहातेः सन्वदाकारलोपश्च ॥ १४१ ॥ जिह्मः । १४१ ॥

अवतेष्टिलोपश्च ॥ १४२ ॥ ओम् ॥ १४२ ॥

(१३९) योषति सेवतेऽसौ युष्मद् । युष सौत्रो धातुः । अस्यति प्रक्षिपत्यन्यमित्यस्मद् । सर्वनामवाचकाविमौ ॥

(१४०) ऋच्छति प्राप्नोति सोऽर्मः । चक्षूरोगो वा । स्तौति येन स स्तोमः । सङ्घातो वा । सवत्यैश्वर्यहेतुर्भवतीति सोमः । कर्पूरश्चन्द्रमा वा। हूयते दीयतेऽसौ होमः । यज्ञो वा । स्रियते गम्यते स सर्मो गमनम् । ध्रियते सुखप्राप्तये सेव्यते स धर्मः । पक्षपातरहितो न्यायः सत्याचारो वा । क्षयत्यज्ञानं नाशयतीति क्षेमम् । कुशलं वा । क्षौति शब्दयतीति क्षोमम् । वस्त्रभेदो वा । दुकूलमतसीकुसुमं च । भाति प्रकाशतेऽसौ भामः । क्रोधः सूर्यो दीप्तिर्वा । यायते प्राप्यते स यामः । प्रहरो वा । वाति गच्छति ग्रन्थं वा गृह्णातीति वामः । शोभनः दुष्टः पार्श्वभेदो वा । पद्यते प्राप्नोतीति पद्मं कमलं निधिः शङ्खो वा । यक्षयते पूजयतीति यक्ष्मः । राजरोगो वा । नयतीति नेमः । प्रकारमूलं वा । अर्द्धवाची तु सर्वनामसञ्ज्ञकः ॥

(१४१) मनित्यनुवर्त्तते । जहाति त्यजतीति जिह्मः । कुटिलो मन्दो वा ॥

(१४२) मन् प्रत्ययस्य टिलोपो धातोरुपधावकारयोरूठ् । अवति रक्षादिकं करोतीति ओम् । प्रणव आरम्भोऽनुमतिर्वा । चादिषु पाठादस्याऽव्ययत्वम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ग्रसेरा च ॥ १४३ ॥ ग्रामः ॥ १४३ ॥

अविसिविसिशुषिभ्यः कित् ॥ १४४ ॥ ऊमम् । स्यूमः । सिमः । शुष्मम् ॥ १४४ ॥

इषियुधीन्धिदसिश्याधूसूभ्यो मक् ॥ १४५ ॥ इष्मः । युध्मः । इध्मः । दस्मः । श्यामः । धूमः । सूमः ॥ १४५ ॥

युजिरुचितिजां कुश्च ॥ १४६ ॥ युग्मम् । रुक्मम् । तिग्मम् ॥ १४६ ॥

(१४३) मन् । ग्रसतेऽत्ति यो वा ग्रस्यते स ग्रामः । शालासमुदायः प्राणिनिवासो वा । सङ्ग्रामो युद्धं वा । शालीनां ग्रामः समूहः शालिग्रामः । एवं शब्दग्रामः । ग्रामो गानविद्यायां स्वरभेदश्च ॥

(१४४) मन्—कित् । अवति रक्षणादिकं भवति यत्र तत् ऊमम् । नगरं वा । टापि कृते बाहुलकाद्ध्रस्वे च । उमा । विशिष्टा स्त्री वा । सीव्यति तन्तून् संतनोतीति स्यूमः । रश्मिर्वा । सिनोति बध्नातीति सिमः । सर्वनामसञ्ज्ञः सर्वपर्य्यायः । शुष्यति निस्सारं करोतीति शुष्मम् । अग्निर्वायुर्वा ॥

(१४५) य इच्छति य इष्यते स इष्मः । कामो वसन्त ऋतुर्वा । युध्यते यो येन वा स युध्मः । बाणो वा । य इन्धे दीप्यते वा येनेन्धे स इध्मः । समिद्धः । दस्यत्युपक्षयति दुःखयति वा स दस्मः । यजमानो वा । श्यायति गच्छति प्राप्नोति वा स श्यामः । हरितः कृष्णो वा । अप्रसूता स्त्री श्यामा लतौषधी वा । इत्यादि । धूनोति कम्पयतीति धूमः । अग्निसम्भवो वा । सूते जनयति प्राणिगर्भं विमुञ्चतीति सूक्ष्मोऽन्तरिक्षं वा । बाहुलकात्—ईर्त्ते गच्छति कम्पते वा तदीर्मम् । व्रणं वा । क्षौति शब्दयतीति सा क्षुमा । अतसी वा । जजन्ति जायते तज्जन्म । उत्पत्तिर्वा ॥

(१४६) मक् । युज्यते तद्युग्मम् । द्वयोरेककर्मणि सम्बन्धः । रोचते प्रदीप्तवर्णो भवति स रुक्मो वर्णभेदो वा । तद्वर्णयोगाद्रुक्मं सुवर्णम् । रुक्मो वर्णोऽस्यास्तीति रुक्मिणी स्त्री । तेजते छिनत्तीति तिग्मम् । तीक्ष्णम् । विशेष्यलिङ्गोऽयं शब्दः तिग्मा धीः । तिग्मस्तीव्रो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हन्तेर्हि च ॥ १४७ ॥ हिमम् ॥ १४७ ॥

भियः षुग् वा ॥ १४८ ॥ भीमः । भीष्मः ॥ १४८ ॥

घर्मग्रीष्मौ ॥ १४९ ॥

प्रथेः षिवन्षवन्ष्वनः संप्रसारणं च ॥ १५० ॥ पृथिवी । पृथवी । पृथ्वी ॥ १५० ॥

अशूप्रुषिलटिकणिखटिविशिभ्यः क्वन् ॥ १५१ ॥ अश्वः । प्रुष्वः । लट्वा । कण्वम् । खट्वा । विश्वः ॥ १५१ ॥

(१४७) मक् । हन्त्युष्णं दुर्गन्धिं वा तद्धिमम् । हेमन्त ऋतुस्तुषारश्चन्दनं वा । महत् हिमं हिमानी । ङीष् आनुक् ॥

(१४८) बिभेति बिभ्यति वा यस्मात् यस्या वा स भीमः । भीमा वा । भीष्मः । भीष्मा वा । भीमो भयानकः । पाण्डुपुत्रो वा । भीमा भयानका सेना यस्य स भीमसेनः । एवं भीष्मसेनो वा ॥

(१४९) मक् प्रत्ययान्तौ निपात्येते । जिघर्त्ति च्चरति नश्यति दीप्यते वा प्राणिनो जगद्वा येन स घर्म्मः । यद्व आतपो ग्रीष्म ऋतुः स्वेदो वा । ग्रसते शीतं रसादिकं वा स ग्रीष्मः । अत्युष्णकालो वा । ग्रसधातोर्ग्री भावः । षुगागमश्च निपातनात् ॥

(१५०) प्रथते विस्तीर्णा भवतीति पृथवी । पृथिवी । पृथ्वी । इत्येकार्थास्त्रयः । भूमिरन्तरिक्षं वा ॥

(१५१) अश्नुते व्याप्नोतीत्यश्वः । तुरङ्गो वह्निर्वा । अजादिपाठात् स्त्रियामश्वा । यः प्रुष्णाति स्निह्यति सिञ्चति पूरयति वा स प्रुष्वः । ऋतुः सूर्य्यो वा । लटति बाल इव भवति सा लट्वा । नियत स्त्रीलिंगः । करञ्जभेदः । फलं वाद्यं पक्षिभेदो वा । कणति निमीलति चेष्टतेऽसौ कण्वः । कण्वं पापं कण्वो मुनिर्वा । येनादावध्यापिता काण्वी शाखेति प्रसिद्धा वा । खट्यते काङ्क्ष्यते या सा खट्वा । शय्याभेदो वा । विशति सर्वत्र स विश्वः । विश्वं जगत् । विश्वाऽतिविषया वा । सर्वादिपाठात्सर्वनामसञ्ज्ञश्च ॥

For Private And Personal Use Only

इणशीभ्यां वन् ॥ १५२ ॥ एवः । शेवः ॥ १५२ ॥
सर्वनिघृष्वरिष्वलष्वशिवपद्वप्रह्वेष्वा अतन्त्रे ॥ १५३ ॥
शेवायह्वजिह्वाग्रीवाऽप्वामीवाः ॥ १५४ ॥
कॄगॄशॄदॄभ्यो वः ॥ १५५ ॥ कर्वः । गर्वः । शर्वः । दर्वः ॥१५५॥

(१५२) एति प्राप्नोतीत्येवः । बाहुलकात्—एवेत्यवधारणेऽव्ययम् । शेतेऽसौ शेवः । सुखं मेढ्रं वा ॥

(१५३) सर्वादयो वन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । सरतीति सर्वः । संपूर्णवाची सर्वनामसञ्ज्ञो विशेषणम् । नितरां घर्षति पिनष्टीति निघृष्वः । गुणाभावः । खुरं वा । रेषति हिनस्तीति रिष्वो हिंसकः । लषति कामयतेऽसौ लष्वः । नर्तको वा । शेतेऽसौ शिवः । धातोर्ह्रस्वत्वम् । शिव ईश्वरः शिवं भद्रं सुखमुदकं च । शिवा हरीतकी । पद्यन्ते गच्छन्त्यत्रेति पद्वः । भूलोको वा । प्रजहाति त्यजति स प्रह्वः । नम्रो वा । अकारलोपो निपातनम् । ईषते हिनस्त्यज्ञानमिति ईष्वः । आचार्यो वा । अतन्त्र इति किम् । सर्त्ता, सारक इत्यादि सूत्रेषु पठिताः सर्वादिशब्दा यौगिका माभूवन् । बाहुलकात्—ह्रसति शब्दयति ह्रस्वः । वामन एकमात्रो वर्णो वा ॥

(१५४) शेवादयो वन्नन्ता निपात्यन्ते । शेतेऽसौ शेवा । लिङ्गाकृति र्वा । यजतीति यह्वः यजमानो वा । जकारस्य हकारः जयति यया सा जिह्वा । इन्द्रियं वा । धातोर्हुक् । निगलति यया सा ग्रीवा शरीराङ्गं वा । धातोर्ग्रीभावः । आप्नोति यया सा अप्वा । कण्ठस्थानं वा । मीनाति हिनस्तीति मीवः । उदरकृमिर्वा ॥

(१५५) किरति विक्षिपति चित्तमिति कर्वः । कामो वा । गिरतीति गर्वः । अहङ्कारो वा । शृणाति दुःखमिति शर्वः परमेश्वरः सुखं वा । दृणाति विदारयति प्राणिन इति दर्वः हिंसको जनो वा ॥

कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः ॥१५६॥ युवा । वृषा । तक्षा । राजा । धन्वा । द्युवा । प्रतिदिवा ॥ १५६ ॥

सप्यशूभ्यां तुट् च ॥ १५७ ॥ सप्त । अष्ट ॥ १५७ ॥

नञि जहातेः ॥ १५८ ॥ अहः ॥ १५८ ॥

श्वन्नुक्षन्पूषन्प्लीहन्क्लेदन्स्नेहन्मज्जन्नर्यमन्विश्वप्सन्परिज्वन्मातरिश्वन्मघवन्निति ॥ १५९ ॥ श्वा । उक्षा । पूषा । प्लीहा । क्लेदा ।

---

(१५६) यौति मिश्रयत्यामिश्रयति वा स युवा मध्यावस्थस्तरुणो जनो वा । वर्षतीति वृषा सूर्यो वा । तक्षति तनूकरोति स तक्षा वर्धकिर्वा । राजते प्राप्तो भवतीति राजा भूपतिश्चन्द्रमा वा । धन्वति गच्छतीति धन्वा । बाणक्षेपणं वा । द्यौत्यभिगच्छतीति द्युवा । सूर्यो वा । प्रतिदीव्यन्ति यस्मिन् स प्रतिदिवा । दिवसो वा । बहुलवचनात्—केवलादपि दिवधातोः कनिन् तेन दिवा दिवानौ । इत्याद्यपि सिद्धम् । दशतीति दशन् । संख्याविशेषो वा । नौतीति नवन् संख्या वा । बाहुलकाद् गुणः ॥

(१५७) सपति समवेतीति सप्तन् संख्याभेदो वा । अश्नुते व्याप्नोतीत्यष्टन् । संख्या वा । बाहुलकात्—पञ्चति व्यक्तीकरोतीति पञ्चन् संख्यावाचको वा ॥

(१५८) जहाति त्यजति पृथक्करोत्यन्धकारमित्यहः दिनम् ।

(१५९) श्वनादयस्त्रयोदश शब्दाः कनिनन्ता निपात्यन्ते । श्वयति गच्छति वर्द्धतेऽसौ श्वा । कुक्कुरो वा । स्त्रियां ङीष् शुनी । उक्षति सिञ्चतीति उक्षा बलीवर्दो वा । पूषति वर्धतेऽसौ पूषा । सूर्यो वायुर्वा । प्लिह्यते प्राप्यतेऽन्तरिति प्लीहा । कुक्षिव्याधिर्वा । धातोरुपधादीर्घत्वम् । क्लिद्यत्यार्द्रो भवतीति क्लेदा चन्द्रमा वा । धातोर्गुणः । स्निह्यति प्रीतिं

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्नेहा। मज्जा । मूर्द्धा अर्यमा । विश्वप्सा । परिज्वा । मातरिश्वा । मघवा ॥ १५९ ॥

इत्युणादिषु प्रथमः पादः ॥ १ ॥

करोतीति स्नेहा । व्याधिर्वा । धातोर्गुणः । मूर्वति बध्नाति स मूर्द्धा शिरो वा । उकारस्य दीर्घो वकारस्य धकारश्च । मज्जति शुन्धतीति मज्जा अस्थिसारो वा । अर्यं स्वामिनं मिमीते मन्यते जानातीति अर्यमा । आदित्यो वा । आकारलोपः। विश्वं प्साति भक्षयतीति विश्वप्सा अग्निर्वा। परितो जवति वेगवान् भवतीति परिज्वा । चन्द्रमाः । जु इति सौत्रो धातुस्तस्य यणादेशः। मातरि अन्तरिक्षे श्वयति गच्छति वर्द्धते वा, अथवा मातरि श्वसिति जीवयति शेते वा, स मातरिश्वा वायुर्वा। मह्यते पूज्यतेऽसौ मघवा सूर्यो वा । मह्धातोर्हकारस्य घत्वंवुगागमश्च । मघवदिति तकारान्तोऽप्ययं शब्दो दृश्यते। तत्र मघं धनमस्यास्तीति मघवान् मघवन्तौ। मघवन्तः। इति मतुबन्तः । कनिनन्तस्तु । मघवा । मघवानौ । मघवानः । मघवन् । मघवानम् । मघवानौ । मघोनः । अस्मिन् सूत्र इति शब्दः प्रकारार्थः। एवं विधा अन्येऽपि कनिनन्ता शब्दा यथाप्रयोगं साध्याः। पादसमाप्त्यर्थो वेति शब्दः ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे प्रथमः पादः ॥ १ ॥

For Private And Personal Use Only

अथ द्वितीयपादारम्भः

कृहृभ्यामेणुः ॥ १ करेणुः । हरेणुः ॥ १ ॥

हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन् ॥ २ ॥ हाथः । कुष्ठः । नीथः । रथः । काष्ठम् ॥ २ ॥

अवे भृञः ॥ ३ ॥ अवभृथः ॥ ३ ॥

उषिकुषिगार्त्तिभ्यस्थन् ॥४॥ ओष्ठः। कोष्ठः। गाथा। अर्थः॥४॥

सर्तेर्णित् ॥ ५ ॥ सार्थः ॥ ५ ॥

(१) करोतीति करेणुः हस्ती हस्तिनी वा । हरति स हरेणुः । गन्धद्रव्यं कलापो वा । मटर इति प्रसिद्धः ॥

(२) यो हन्यते येन वा स हथः । दुःखितः शस्त्रविशेषो वा । कुष्णाति निरन्तरं कर्षतीति कुष्ठम् । व्याधिभेदः । कूट इत्याख्यौषधिर्वा । नीयते स नीथः । नयनं वा । शोभनो नीथोऽस्यास्तीति सुनीथो धर्मशीलः । रमते यस्मिन् येन वा स रथः । यानं शरीरं पादो वेतसो वा । काशते दीप्यते तत्काष्ठम् । इन्धनं स्थानं कालमानं वा । काष्ठा दिक् दारुहरिद्रा वा ॥

(३) क्थन् । अवबिभर्त्तीति, अवभृथः । पक्षिभेदो यज्ञान्त स्नानं वा ।

(४) ओषति यो दहति येन वा स ओष्ठः । मुखावयवो वा । कुष्णाति निरन्तरं कर्षति स कोष्ठः । कोष्ठं कुक्षिः कुसूलमन्तर्गृहं वा । गीयते या सा गाथा वाग्भेदः श्लोको वा । अर्यते प्राप्यतेऽसावर्थः । शब्दानां वाच्यो धनं कारणं वस्तु प्रयोजनं निवृत्तिर्विषयो वा । बाहुलकात्—श्यति तनूकरोतीति शोथः । रोगविशेषो वा । शोतनूकरण इत्यस्यात्वनिषेधः ॥

(५) सरति गच्छति स सार्थः समूहो वा । थन्प्रत्ययस्य णित्वाद् वृद्धिः ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जॄवृञ्भ्यामूथन् ॥ ६ ॥ जरूथम् । वरूथः ॥ ६ ॥
पातॄतुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्थक् ॥ ७ ॥ पीथः । तीर्थम् ।
तुत्थः । उक्थम् । रिक्थम् । सिक्थम् ॥ ७ ॥
अर्त्तेर्निरि ॥ ८ ॥ निर्ऋथः ॥ ८ ॥
निशीथगोपीथावगथाः ॥ ९ ॥
गश्चोदि ॥ १० ॥ उद्गीथः ॥ १० ॥
समीणः ॥ ११ ॥ समिथः ॥ ११ ॥

(६) जीर्यति वयोहीनो भवति स जरूथः मांसं वा । वृणोति येन स्वीकरोति स वरूथः । लोहेन रथावरणं वा ॥

(७) यः पिबति यं वा स पीथः । सूर्य्यो घृतं वा । तरन्ति येन यत्र वा तत्तीर्थम्।गुरुर्यज्ञः पुरुषार्थो मन्त्री जलाशयो वा । यो येन वा तुदति व्यथां प्राप्नोति स तुत्थः । अग्निरञ्जनं तुत्था नीली ओषधिर्गौर्बडवा वा । सूक्ष्मैलावा । छोटी इलाची इति प्रसिद्धा । उच्यते परितो भाष्यते यत्तदुक्थम् । सामवेदो वा । य उक्थमधीते वेत्ति वा स औक्थिकः । रिणक्ति पृथक् करोतीति यत्तद् रिक्थम् । दायादधनं सुवर्णं वा । बाहुलकात्—ऋचस्तुतावित्यस्मादपि थक् । ऋचति यदर्थं स्तौतीति ऋक्थम् । धनं वा । सिञ्चति प्रसादयति तत्सिक्थम् । मधूच्छिष्टम् । मोम इति प्रसिद्धम् । ओदनान्निसृतं मण्डं वा ॥

(८) निरन्तरमृच्छन्ति गच्छन्ति यस्मिन्नसौ निर्ऋथः । सामवेदो वा ॥

(९) नितरां शेतेऽस्मिन् स निशीथः । अर्द्धरात्रः । सर्वरात्रो वा । गां वाणीं पृथिवीं वा पातीति गोपीथः । पण्डितो राजा वा । गावः पिबन्त्युदकमस्मिन् स जलाशयो वा । अवगातेऽवगच्छते जानातेऽसाववगाथः । प्राप्तः स्नानं वा ॥

(१०) उदुपपदाद्गाधातोस्थक् । य उद्गीयत उच्चैः शब्दायते स उद्गीथः । सामध्वनिः प्रणवो वा ॥

(११) समेति सम्यक् प्राप्नोति पदार्थानिति समिथः । अग्निर्वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तिथपृष्ठगूथयूथप्रोथाः ॥ १२ ॥

स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदिसृपितृपिदृपिवन्द्युन्दिश्वितिवृत्यजिनीपदिमदिमुदिखिदिछिदिभिदिमन्दिचन्दिदहिदसिदम्भिवसिवाशिशीङ्हसिसिधिशुभिभ्यो रक् ॥ १३ स्फारम् । तक्रम् । वक्रः । शक्रः । क्षिप्रम् । क्षुद्रः । सृप्रः । तृप्रः । दृप्रः । वन्द्रः । उद्रः । श्वित्रम् । वृत्रः । वीरः । नीरम् ।

(१२) तिथादयस्थक्प्रत्ययान्ता निपाताः । तेजते सह्यतेऽसौ तिथः । अग्निः कामो वा । पर्षति सिञ्चति यो येन वा तत् पृष्ठम् । शरीरस्य पश्चाद्भागः स्तोकं वा । यो येन वा गवतेऽव्यक्तशब्दं करोति तद् गूथम् । अपानमार्गः पुरीषं वा । यौति मिश्रयत्यमिश्रयति वा स यूथः । समुदायो वा । यः प्रवते गच्छति येन वा स प्रोथः । तुरङ्गनासिका । प्रोथितः पुरुषो वृक्षभेदः प्रियमुदकमन्नं स्त्रीगर्भश्च । प्रोथ उच्यते ॥

(१३) यः स्फायते वर्द्धतेऽसौ स्फारः । सुवर्णादिविकारो बुद्बुदो वा । वलि रेफे यलोपः । तनक्ति संकोचयतीति तक्रम् । मथितं दधि वा । वञ्चति प्रलम्भते स वक्रः । कुटिलः । क्रूरो वा । शक्नोति यः स शक्रः । समर्थः कुटजो वृक्षविशेषो वा । क्षिप्यते प्रेर्य्यते तत् क्षिप्रम् । शीघ्रं वा । क्षुनत्ति संपिनष्टि यः स क्षुद्रः । अधमः क्रूरः कृपणो वा । अल्पे वाच्यलिङ्गः । क्षुद्रा वेश्या । कण्टकारिका (भटकटाई) तथा मधुमक्षिका च । सर्पति गच्छतीति सृप्रः । चन्द्रमा वा । यस्तृप्यति येन वा स तृप्रः । पुरोडाशो वा । दृप्यति हृष्यति मुह्यति वा स दृप्रः । बलवान् वा । वन्दतेऽभिवदति स्तौति वा स वन्द्रः सत्कर्त्ता वा । उनत्ति क्लिद्यति स उद्रः । जलचरो वा । सम्यगुनत्तीति समुद्रः । अनिदितामिति नलोपः । श्वेतते वर्णविशिष्टो भवतीति श्वित्रम् । कुष्ठभेदो वा । वर्त्तते सदैवाऽसौ वृत्रः । मेघः । शत्रुस्तमः । पर्वतश्चक्रं वा । अजति गच्छति शत्रून् वा प्रक्षिपति स वीरः । सुभटः श्रेष्ठश्चतुष्पथं वा । वीरा क्षीरिका कोली, पतिपुत्रवती स्त्री मदिरा मधुपर्ण्योषधिर्वा । नयति शरीरमिति नीरम् । जलम् वा ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पद्रः । मद्रः । मुद्रा । खिद्रः । छिद्रम् । भिद्रम् । मन्द्रः । चन्द्रः । दह्रः । दस्रः । दभ्रः । उस्रः । वाश्रः । शीरः । हस्रः । सिध्रः । शुभ्रम् ॥ १३ ॥

चकिरम्योरुच्चोपधायाः ॥ १४ ॥ चुक्रम् । रुम्रः ॥ १४ ॥

वौ कसेः ॥ १५ ॥ विकस्रः ॥ १५ ॥

पद्यते गच्छन्त्यस्मिन् वा स पद्रः । ग्रामः संवेशः स्थानं वा । माद्यतीति मद्रः । हर्षो देशभेदो वा । मोदन्ते हृष्यन्ति यया सा मुद्रा यन्त्रिता सुवर्णादिधातुमया वा । यः खिद्यते येन वा दीनो भवतीति स खिद्रः । रोगो दरिद्रो वा । छिद्यते यत्तच्छिद्रम् । विवरं वा । भिनत्ति येन तद् भिद्रं वज्रो वा । मन्दते स्तौतीति मन्द्रः गम्भीरध्वनिर्वा । चन्दति हर्षयति दीपयति वा स चन्द्रः कर्पूरश्चन्द्रमा वा । दहति भस्मीकरोतीति दह्रः दावाग्निर्वा । दस्यति रोगानुपक्षयतीति दस्रः । वैद्यश्चौरो वा । यो दभ्नोति दम्भं करोति स दभ्रः । क्षुद्रो जनः समुद्रो वा । वसतीति उस्रः । रश्मिर्वा । उस्रा गौः । वाश्यते शब्दयतीति वाश्रम् । पुरीषं दिवसो मन्दिरं चतुष्पथं वा । शेतेऽसौ शीरः । महासर्पो वा । हसतीति हस्रः । मूर्खो वा । सेधति गच्छति सिध्यति वा स सिध्रः । साधुर्वृक्षजातिर्वा । कुत्सिताः सिद्धा वृक्षाः सिध्रका स्तासां वनं सिध्रकावणम् । वनं पुरगामिश्रकासिध्रकेति सूत्रेण णत्वम् । शोभते दीप्यते तत् शुभ्रम् रुचिरं शुक्लं पाण्डुरं वा । बाहुलकात् मेशति शब्दयतीति मिश्रः संयोगो वा । पुण्डति खण्डयतीति पुण्ड्रः । दुष्टो वा । सिनोति बध्नाति मांसरुधिरादिकमिति सिरा । नाड़ी वा । मुस्यति खण्डयतीति मुस्रम् । नेत्रोदकं वा । अस्यतीति, अस्रम् । रुधिरं वा । अस्रम् पिबतीति, अस्रपो दंशः ॥

(१४) चकते तृप्यति प्रतिहन्यते वा । स चुक्रः । अम्लमम्लवेतसमित्यादि । रमन्तेऽस्मिन् स रुम्रः । अरुणः शोभनो वा ॥

(१५) विकसति विशेषतया गच्छतीति विकुस्रः । चन्द्रमा वा कस धातोरुपधाया उत्वम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अमितम्योर्दीर्घश्च ॥ १६ ॥ आम्रम् । ताम्रम् ॥ १६ ॥

निन्देर्नलोपश्च ॥ १७ ॥ निद्रा ॥ १७ ॥

अर्देर्दीर्घश्च ॥ १८ ॥ आर्द्रम् ॥ १८ ॥

शुचेर्दश्च ॥ १९ ॥ शूद्रः ॥ १९ ॥

दुरीणो लोपश्च ॥ २० ॥ दूरम् ॥ २० ॥

कृतेश्छः क्रू च ॥ २१ ॥ कृच्छ्रम् । क्रूरः ॥ २१ ॥

रोदेर्णिलुक् च ॥ २२ ॥ रुद्रः ॥ २२ ॥

(१६ अम्यते सम्भज्यते सेव्यते तदम्रम् । चूतो वा । ताम्यति काङ्क्षतीति । ताम्रम् । धातुभेदो रक्तवर्णो वा ।

(१७) या निन्दति यया वा सा निद्रा शयनं वा ॥

(१८) आर्दति गच्छति याचते वा तत् आर्द्रम्। सरसद्रव्यमार्द्रा नक्षत्रं वा॥

(१९) दीर्घश्चानुवर्त्तते। शोचतीति शूद्रः सेवको वा । पुंयोगे शूद्रस्य स्त्री शूद्री शूद्रा तज्जातिर्वा ॥

(२०) दुरुपदादिण्धातोरक् धातोश्च लोपः। दुःखेनेयते प्राप्यते तद्दूरम् । विप्रकृष्टं वा ॥

(२१) कृतधातोरन्त्यस्य छः सर्वस्य च क्रू इत्येतावादेशौ रक् च। कृन्तति छिनत्तीति कृच्छ्रं क्रूरश्च कठिनं दुःखं खलो वा ॥

(२२) पापिनो रोदयतीति रुद्रः। ईश्वरः प्राणादिदश रुद्रा जीवो वा। बाहुलकादन्यत्रापि धात्वन्तरे सञ्ज्ञाछन्दसोः सामान्यप्रत्ययश्च णेर्लुक्। पाशं बन्धनं धारयतीति पाशधरः। शूलधरः। चक्रधरः। वज्रधरः। शक्तिधरो वा। कुमारः। उदकधरो मेघः। दण्डधरो राजा। अत्र सर्वत्रापि प्रत्यये धृधातोः परस्य णेर्लुक्। पर्णानि शोषयति मोचयति रोहयति वा स पर्णशुट्। पर्णमुट्। पर्णरुट्। इति णयन्तात् शुषधातोः क्विप् णेर्लुक्। जश्त्वकुत्वादिकार्यम्। वान्ति पर्णशुषो वाता वान्ति पर्णमुचोऽपरे। ततः पर्णरुहा वान्ति ततो देवः प्रवर्षति ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जोरी च ॥ २३ ॥ जीरः ॥ २३ ॥

सुसूधाञ्गृधिभ्यः क्रन् ॥ २४ ॥ सुरः । सूरः । धीरः । गृध्रः ॥ २४ ॥

शुसिचिमीनां दीर्घश्च ॥ २५ ॥ शूरः । सीरः । चीरम् । मीरः ॥ २५ ॥

वा विन्धेः ॥ २६ ॥ वीध्रम् ॥ २६ ॥

वृधिवपिभ्यां रन् ॥ २७ वर्ध्रम् । वप्रः ॥ २७ ॥

(२३) जुधातोर्रकि प्रत्यये ईकारादेशः । जवति सूक्ष्मो भवतीति जीरः । अणुः खड्गो वणिग्द्रव्यं वा । महाभाष्यकारसंमत्या, रकि ज्यः सम्प्रसारणम् । भा० १ । १ । ४ । ज्यावयाहानावित्यस्य रकि प्रत्यये सम्प्रसारणम् । जिनात्यवस्थां जहातीति जीरः । तथा महाभाष्यकारसम्मत्या जीवधातोरदानुक् । जीवति प्राणान् धारयतीति जीरदानुः । वैदिकं रूपमेतत् । अत्र च जीवधातोर्वलि वलोपः । ऊठनिषेधश्च बाहुलकादेव । इत्यादि ॥

(२४) सुनोति सवति उत्पादयत्यैश्वर्यवान् वा भवतीति सुरः । देवसंज्ञो विद्वान् स्त्रियां सुरा मद्यं वा । सूयते वा सुवति प्राणिनः समर्थयतीति सूरः । सूर्यो वा । दधाति सर्वान् पोषयति वा स धीरः पण्डितो वा । गृध्यत्यभिकाङ्क्षतीति गृध्रः । पक्षिविशेषो वा ॥

(२५) शु इति सौत्रो धातुः । शवति गच्छतीति शूरः । विक्रमणशीलः पुरुषो वा । सिनोति बध्नातीति सीरः । हलं वा । चिनोतीति चीरम् । वल्कलं वा । मिनोति प्रक्षिपतीति मीरः । समुद्रो वा ॥

(२६) विशेषेणेन्धते प्रदीप्यते तद्वीध्रम् । स्वभावशुद्धः ॥

(२७) वर्द्धते तद्वर्ध्रम् । चर्म्म वा । वपति बीजं छिनत्ति वा स वप्रः । पिता केदारः प्राकारो रोधो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऋज्रेन्द्राग्रवज्रविप्रकुब्रचुब्रक्षुरखुरभद्रोग्रभेरभेलशुक्रशुक्लगौरवन्नेरामालाः ॥ २८ ॥

समि कस उकन् ॥ २९ ॥ सङ्कसुकः ॥ २९ ॥

(२८) ऋज्रादयोऽकोनविंशतिः शब्दा निपात्यन्ते । अर्जति गच्छति तिष्ठति वा स ऋज्रः । नायको वा । गुणाभावः । इन्दति परमैश्वर्य्यवान् भवतीति इन्द्रः समर्थोऽन्तराऽऽत्मादित्यो योगी वा । अङ्गति गच्छतीति अग्रम् । प्रधानमुपरिभागो वा । वजति प्राप्नोति प्राप्यते वा स वज्रः । हीरकं शस्त्रं वा । वपति धर्म्ममिति विप्रः । मेधावी वा । कुम्बत्याच्छादयतीति कुब्रम् । अरण्यं वा । चुम्बति यो येन वा तच्चुब्रम् । मुखं वा । अत्रोभयत्रादितोऽपि नलोपः । यः क्षुरति विलिखति येन वा छिनत्तीति स क्षुरः । छेदनद्रव्यं कोकिलाक्षं गोक्षुरो लोमच्छेदकं नापितशस्त्रं वा । खुरति छिनत्ति यो येन वा स खुरः शफं वा । अत्रोभयत्र रकि रेफलोपो गुणाऽभावश्च । भन्दते कल्याणं करोतीति भद्रम् कल्याणम् । नकारलोपः । उच्यति समवैतीति उग्रः । महेश्वर उत्कटः क्षत्रं वा । बिभेत्यस्मात्स भेरः । भेरी दुन्दुभिर्वा गौरादित्वान् ङीष् । पक्षे भेरशब्दस्य लत्वम् । भेलो जलतरणद्रव्यं वृद्धकायः कातरो वा । शुच्यते पवित्रीभवतीति शुक्रम् ब्रह्माग्निराषाढः प्राणिवीजं नेत्ररोगो वा । अस्यैव व्यवस्थितविभाषया पक्षे लत्वम् शुक्लः श्वेतं रजतं वा । गवतेऽव्यक्तं शब्दयतीति गौरः । श्वेतो रक्तवर्णो वा । गौरी स्त्री । ङीष् । वनति सम्भजतीति वन्रः विभागी । एति गच्छति यया सा इरा । उदकं मद्यं वा । इरावान् समुद्रः ऐरावती नदी । इरया मद्येन माद्यतीति, इरम्मदः । माति मानहेतुर्भवतीति माला । पुष्पादिस्रक् । मालं क्षेत्रम् । मालो जनः । बाहुलकात्—तितिक्षते येन तत्तीक्ष्नम् । तीक्ष्णं वा । जस्य बो दीर्घत्वं च धातोः ॥

(२९) सम्यक् कसति गच्छतीति सङ्कसुकः संशयमापन्नश्चञ्चलो दुर्जनो वा ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पचिनशोर्णुकन्कनुमौ च ॥ ३० ॥ पाकुकः । नंशुकः ॥ ३० ॥

भियः क्रुकन् ॥ ३१ ॥ भीरुकः ॥ ३१ ॥

क्वुन् शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि ॥ ३२ ॥ रजकः । इक्षुकुट्टकः । तक्षकः । ध्रुवकः । अभ्रकम् । चरकः । चषकः । भञ्जकः । शालभञ्जिका । काष्ठपुत्रिका । पुष्पप्रचायिका । शुनकः । भषकः ॥ ३२ ॥

(३०) पचनशधातुभ्यां णुकन् प्रत्ययः पचधातोश्चस्य कः । नशधातोर्नुम् च । पचतीति पाकुकः सूपकारो वा । नश्यतीति नंशुकः । अणुवाचको वा ॥

(३१) यो बिभेति यस्माद्वा स भीरुकः कातरो वा ॥

(३२) शिल्पिनि संज्ञायां च गम्यमानायां सोपपदादनुपपदाद्वा सामान्याद्धातोः क्वुन् भवति । रजतीति रजकः । वस्त्रशोधको वा । इक्षून् कुट्टयतीति, इक्षुकुट्टकः गौडिकस्येयं संज्ञा । तक्षति तनूकरोतीति तक्षको वर्धकिः शिल्पी । ध्रुवको गर्भमोचको जनः संज्ञा वा । अभ्रति गच्छति येन तदभ्रकमौषधं सञ्ज्ञा वा । चरतीति चरको वैद्यकशास्त्रं गन्ता वा । चषति भक्षयत्यस्मिन्निति चषकं पानपात्रं शालं वा भञ्जतीति भञ्जकः । मत्स्यभेदः प्राकारो वा । शालान् भञ्जन्ति यस्यां सा शालभञ्जिका क्रीडा । काष्ठं पुत्रयति यस्यां सा काष्ठपुत्रिका क्रीडा । पुष्पैः प्रचायन्ते पूजयन्ति यस्यां सा पुष्पप्रचायिका क्रीडा वा । शुनति गच्छतीति शुनकः श्वा । भषति भर्त्सयतीति भषकः श्वा वा । आमलते समन्ताद्धारयतीत्यामलको वृक्षभेदः । गौरादित्वान् ङीष् । आमलकी । कलामंशं पाति रक्षतीति कलापकश्चन्द्रमा वा । मल्लते गन्धं धरतीति मल्लिका पुष्पजातिर्वा । कन्यते दीप्यते काम्यतेऽभीप्स्यते वा तत्कनकं सुवर्णं वा । कटत्यावृणोत्यङ्गमिति कटकमाभूषणं वा । कड़ा इति प्रसिद्धं । शिखरं राजधानी नितम्बं वा । लटति बाल इव भवतीति लटको दुर्जनो वा । इत्यादिषु शिल्पिसंज्ञयोः क्वुन् बोध्यः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रमेरश्च लो वा ॥ ३३ ॥ रमकः । लमकः ॥ ३३ ॥

जहातेर्द्वे च ॥ ३४ ॥ जहकः ॥ ३४ ॥

ध्मो धम च ॥ ३५ ॥ धमकः ॥ ३५ ॥

हनो बध च ॥ ३६ ॥ बधकः ॥ ३६ ॥

बहुलमन्यत्रापि ॥३७॥ कुहकः । कृतकम् । भिदकः । छिदकम् । रुचकम् । लङ्गकः । उज्झकः ॥ ३७ ॥

कृषेर्वृद्धिश्चोदीचाम् ॥ ३८ ॥ कार्षकः । कृषकः ॥ ३८ ॥

उदकश्च ॥ ३९ ॥

वृश्चिकृषोः किकन् ॥ ४० ॥ वृश्चिकः । कृषिकः ॥ ४० ॥

(३३) रमतेऽसौ रमकः । रमणशीलो वा । लमकोऽपि स एव ॥

(३४) जहाति त्यजति हानिं करोतीति जहकः त्यागी कालो वा ॥

(३५) धमति शब्दं करोतीति अग्निं वा संयुनक्ति स धमकः कर्मकारो वा ॥

(३६) हन्तीति बधको हिंसकः ॥

(३७) बहुलवचनादन्यत्रापि क्वुन् । कोहयति विस्मयं कारयतीति कुहकः । दाम्भिको नीहारो वा । कृन्तति छिनत्तीति कृतकं मिथ्या वा । भिनत्ति येन स भिदकः खड्गो वा । छिनत्ति येन तच्छिदकं वज्रो वा । रोचतेऽनेन तद्रुचकं मातुलुङ्गकं वा । बिजौरा नींबू इति प्रसिद्धं वा । लङ्गति गच्छतीति लङ्गकः । प्रियो वा । उज्झत्युत्सृजतीति, उज्झकः । योगी मेघो वा ॥

(३८) कृषतीति कार्षकः कृषको वा कृषीबलः ॥

(३९) उनत्ति क्लेदयतीत्युदकं जलं वा ॥

(४०) वृश्चति छिनत्तीति वृश्चिकः विषी जीवविशेषः शूककीटो वा । कंचुआ इति प्रसिद्धः । कृषति येन स कृषकः फालो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्राङि पणिकषः ॥ ४१ ॥ प्रापणिका । प्राकषिकः ॥ ४१ ॥

मुषेर्दीर्घश्च ॥ ४२ ॥ मूषिकः ॥ ४२ ॥

स्यमेः सम्प्रसारणं च ॥ ४३ ॥ सीमिकः ॥ ४३ ॥

क्रिय इकन् ॥ ४४ ॥ क्रयिकः ॥ ४४ ॥

आङि पणिपनिपतिखनिभ्यः ॥ ४५ ॥ आपणिकः । आपनिकः । आपतिकः । आखनिकः ॥ ४५ ॥

श्यास्त्याहृञ्विभ्य इनच् ॥ ४६ ॥ स्त्येनः । श्येनः । हरिणः । अविनः ॥ ४६ ॥

(४१) प्रकर्षेण समन्तात्पणायतयसौ प्रापणिकः । पण्यविक्रयी वा । प्राकषति हिनस्तीति प्राकषिकः पारदारिको वा ॥

(४२) मुष्णाति पदार्थानिति मूषिकः । आखुर्वा । स्त्रियां मूषिका । अजादित्वाट्टाप् ॥

(४३) स्यमति शब्दयतीति सीमिकः । वृक्षभेदो वा ॥

(४४) क्रीणाति द्रव्येण पदार्थान्तरं ददाति गृह्णाति वा स क्रयिकः क्रेता । विक्रयिको विक्रेता ॥

(४५) समन्तात्पणायति व्यवहरति स आपणिकः । वैश्यो वा । आपणेन व्यवहरतीति तद्धिते ठकि सिद्धे नित्स्वरार्थं वचनम् । आपनायतीति, आपनिकः । म्लेच्छजातिर्वा । समन्तात् पततीत्यापतिकः । श्येनो वा । समन्तात् खनतीत्याखनिकः । मूषिको वराहो वा ॥

(४६) श्यायति गच्छतीति श्येनः । पक्षिभेदो वा । स्त्यायति शब्दयति संघातयतीति स स्त्येनः । चोरो वा । हरतीति हरिणः । मृगः । पाण्डुवर्णो वा । स्त्रियां हरिणी सुन्दरी छन्दोभेदो हरितवर्णा वा । अवति रक्षणादिकं करोतीति, अविनः । अध्वर्युर्वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वृजेः किञ्च ॥ ४७ ॥ वृजिनम् ॥ ४७ ॥
अर्जेरज च ॥ ४८ ॥ अजिनम् ॥ ४८ ॥
बहुलमन्यत्रापि ॥ ४९ ॥
द्रुदक्षिभ्यामिनन् ॥५०॥ द्रविणम् । दक्षिणः । दक्षिणा ॥५०॥
अर्त्तेः किरिञ्च ॥ ५१ ॥ इरिणम् ॥ ५१ ॥
वेपितुह्योर्ह्रस्वश्च ॥ ५२ ॥ विपिनम् । तुहिनम् ॥ ५२ ॥

(४७) इनच् कित् । वृक्तै वर्जयतीति वृजिनः केशः पापं वक्रो वा ॥

(४८) अजति गच्छति क्षिपति वा । तत् अजिनम् । चर्म वा । अजादेशो वीभावनिवृत्यर्थः ॥

(४९) कठति कृच्छ्रेण जीवतीति कठिनम् । कठोरं वा । कुण्डते दहतीति कुण्डिनः । ऋषिर्वा । यस्यापत्यं कौण्डिन्यः । बर्हते प्रधानो भवतीति बर्हिणः । मयूरो वा । फलति विशीर्णो भवतीति फलिनः । फलवान् वृक्षो वा । नलति गन्धयुक्तो भवतीति नलिनम् । कमलं वा । मस्यति परिणमतीति मसिनम् । सुपिष्टं वा । मलते धरतीति मलिनः । मलयुक्तो वा । द्रुह्यति जिघांसतीति द्रुहिणः । ब्रह्मा वा । अन्धकारं द्यत्यवखण्डयतीति दिनम् । दिवसं वा । इनचः कित्वादाकारलोपः ॥

(५०) द्रवति गच्छति द्रूयते प्राप्यते वा । तद् द्रव्यं सुवर्णं पराक्रमो वा । दक्षते वर्धते शीघ्रकारी भवति वा । स दक्षिणः सरलो वामभागः परतन्त्रोऽनुवर्त्तनं च स्त्रियां दक्षिणादानं प्रतिष्ठा वा ॥

(५१) ऋच्छन्ति गच्छन्ति यत्र यस्माद्वा जनास्तत्, इरिणम् । शून्यमूषरभूमिर्वा ॥

(५२) यत् वेपते कम्पते यत्र वा तद्विपिनम् । गहनं वा । तोहति गच्छति याचते वा तत्तुहिनम् । हिमं वा । गुणे कृते ह्रस्वः ।

For Private And Personal Use Only

तलिपुलिभ्यां च ॥ ५३ ॥ तलिनम् । पुलिनम् ॥ ५३ ॥

गर्वेरत उच्च ॥ ५४ ॥ गुर्विणी ॥ ५४ ॥

रुहेश्च ॥ ५५ ॥ रोहिणः ॥ ५५ ॥

महेरिनण् च ॥ ५६ ॥ माहिनम् । महिनम् ॥ ५६ ॥

क्विब् वचिप्रच्छिश्रिस्रुद्रुप्रुज्वां दीर्घोऽसंप्रसारणं च ॥ ५७ ॥

वाक् । प्राट् । श्रीः । स्रूः । द्रूः । कटप्रूः । जूः ॥ ५७ ॥

(५३) तालयति प्रतितिष्ठतीति तलिनम् । विरलं पृथग्भूतं स्वल्पं स्वच्छं वा । पोलयति महान् भवतीति पुलिनम् । जलसामीप्यं वा ॥

(५४) गर्वति प्राप्नोति गर्वयति मुञ्चति वा सा गुर्विणी गर्भिणी वा ॥

(५५) रोहति बीजेन जायते स रोहिणः । चन्दनवृक्षो वा । जातिवाचकात् स्त्रियां ङीष् रोहिणी गौर्वा । प्रज्ञादित्वादण् रौहिणः ॥

(५६) महति मह्यते पूज्यते वा तन्माहिनं महिनम् । राज्यं वा । चादिनजनुवर्तते ॥

(५७) वक्ति शब्दानुच्चारयति यया सा वाक् । पृच्छतीति प्राट् । शब्दं पृच्छतीति शब्दप्राट् शिष्यो वा । शब्दप्राशौ । शब्दप्राशः । छ्वोः शूडनुनासिके चेति छस्य शः । श्रयति श्रीयते वा सा श्रीः । ईश्वररचना शोभा वा । या स्रवति यस्या वा सा स्रूः यज्ञसाधनं वा । द्रूयते प्राप्यते दुःखमनया सा द्रूः । हिरण्यं वा । कटेन कटिभागेन प्रवते गच्छतीति कटप्रूः । कामुको जनः कीटो वा । जवति शीघ्रं गच्छतीति जूः । शशोऽश्वो वृषभ आकाशं विद्या वा । बाहुलकात्—प्रवर्षन्ति मेघा यस्यां सा प्रावृट् । ऋतुः । द्वारयति संवृणोति यया सा द्वाः द्वारौ । उदकेन श्वयति वर्धते तत् उदश्वित् तक्रं वा । ऋचन्ति स्तुवन्ति यया सा ऋक् ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आप्नोतेर्ह्रस्वश्च ॥ ५८ ॥ आपः ॥ ५८ ॥

परौ व्रजेः षश्च पदान्ते ॥ ५९ ॥ परिव्राट् ॥ ५९ ॥

हुवः श्लुवच्च ॥ ६० ॥ जुहूः ॥ ६० ॥

स्रुवः कः ॥ ६१ ॥ स्रुवः ॥ ६१ ॥

चिक् च ॥ ६२ ॥ स्रुक् ॥ ६२ ॥

तनोतेरनश्च वः ॥ ६३ ॥ त्वक् ॥ ६३ ॥

ग्लानुदिभ्यां डौ ॥ ६४ ॥ ग्लौः । नौः ॥ ६४ ॥

च्विरव्ययम् ॥ ६५ ॥

(५८) आप्नुवन्ति शरीरमित्यापः । अस्य नित्यं बहुवचनत्वं स्त्रीत्वं च । अपः । अद्भिः । अद्भ्यः । इत्यादि ॥

(५९) क्विप् । परितः सर्वतो व्रजति स परिव्राट् । परिव्राजौ । परिव्राजः । संन्यासी वा ॥

(६०) जुहोति ददात्यत्ति वा यया सा जुहूः । स्रुग्भेदो वा ॥

(६१) स्रवति घृतमस्मात् स स्रुवः । यज्ञसाधनं वा । बहुलवचनात्—ध्रुवति स्थिरं भवतीति ध्रुवम् । निश्चलं वा ॥

(६२) स्रु धातोश्चिक् प्रत्ययोऽपि भवति । घृतमस्याः स्रवति सा स्रुक् । यज्ञोचितद्रव्यं वा ॥

(६३) तनोति विस्तृता भवतीति त्वक् । त्वचौ । त्वचः । शरीरावरणं चर्म्म वल्कलं वा ॥

(६४) ग्लायति हर्षक्षयं करोतीति ग्लौः । चन्द्रमा वा । नुदति प्रेरयतीति नौः । जलतरणसाधनं वा ॥

(६५) अचस्य एजन्तप्रत्ययान्तश्च्व्यन्त एवाव्ययसंज्ञो भवति। एतेन नियमेनोणादीनां व्युत्पन्नपक्षे कृन्मेजन्त इत्यनेनाच्व्यन्तानामव्ययसञ्ज्ञा न भवति। अग्लौ ग्लौः संपद्यत इति ग्लौकरोति । ग्लौ भवति ग्लौ स्यात् । नौकरोति इत्यादि । ग्लौः । नौः । अत्र केवलानामव्ययसंज्ञाऽभावाद्विभक्तिलुङ् न भवति ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रातेर्डैः ॥ ६६ ॥ राः ॥ ६६ ॥

गमेर्डोः ॥ ६७ ॥ गौः ॥ ६७ ॥

भ्रमेश्च डूः ॥ ६८ ॥ भ्रूः । अग्रेगूः ॥ ६८ ॥

दमेर्डोसिः ॥ ६९ ॥ दोः ॥ ६९ ॥

पणेरिज्यादेश्च वः ॥ ७० ॥ वणिक् ॥ ७० ॥

वशः कित् ॥ ७१ ॥ उशिक् ॥ ७१ ॥

भृज उच्च ॥ ७२ ॥ भुरिक् ॥ ७२ ॥

(६६) राति ददाति रायते दीयते वा सा राः । रायौ । रायः । धनं सुवर्णं वा । च्वि प्रत्यये रैकरोति । इत्यादि ॥

(६७) गच्छति यो यत्र यया वा सा गौः । पशुरिन्द्रियं सुखं किरणो वज्रं चन्द्रमा भूमिर्वाणी जलं वा । गौरिवाऽयो गमनं प्राप्तिर्वाऽस्येति गवयो गोसदृशो वनपशुविशेषः । स्त्री गवयी । गौरादित्वात् ङीष् । च्विप्रत्यये गोकरोतीत्यादि । द्योतन्ते लोका अस्यां वा यया द्योतते सा द्यौः । अन्तरिक्षं वा । द्यावौ । द्यावः । इत्यादि ॥

(६८) चाद् गमधातोर्डूः । भ्रमति चलतीति भ्रूः । नेत्रयोरुपरि रेखा वा । अग्रे गच्छतीत्यग्रेगूः । सेवको वा ॥

(६९) दाम्यत्युपशाम्यति यो येन वा स दोः । दोषौ । दोषः । बाहुर्वा ॥

(७०) पणायति व्यवहरतीति वणिक् । वणिजौ । वणिजः । वैश्यो वा । प्रज्ञादित्वात् स्वार्थेऽण् वाणिजः ॥

(७१) वष्टि यं कामयते यत्काम्यते वा स उशिक् । उशिजौ । उशिजः । अग्निर्घृतं वा ॥

(७२) इजिः कित् । भरति सर्वं धरतीति भुरिक् । भूमिर्वा । भुरिजौ । भुरिजः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जसिसहोरुरिन् ॥ ७३ ॥ जसुरिः । सहुरिः ॥ ७३ ॥

सुयुरुवृञो युच् ॥७४॥ सवनः ।यवनः।रवणः। वरणः॥७४॥

अशेरशच् ॥ ७५ ॥ रशना ॥ ७५ ॥

उन्देर्नलोपश्च ॥ ७६ ॥ ओदनः ॥ ७६ ॥

गमेर्गश्च ॥ ७७ ॥ गगनम् ॥ ७७ ॥

बहुलमन्यत्रापि ॥ ७८ ॥

(७३) जस्यति मुञ्चति जासयति हिनस्ति वेति जसुरिः । वज्रं वा । सहते भारमिति सहुरिः । सूर्यो भूमिर्वा ॥

(७४) सवत्युत्पादयति सुनोति निस्सारयति रसान् वा स सवनः । चन्द्रमा वा । यौति मिश्रयत्यमिश्रयति वा स यवनः । म्लेच्छभेदो वा । रौति शब्दयतीति रवणः । कोकिलः पक्षी वा । वृणोति स्वीकरोतीति वरणः । उदकं वृक्षभेदो वा ॥

(७५) युच् धातोरशादेशश्च । अश्नुते व्याप्नोतीति रशना । स्त्रियः कटिभूषणं वा। दन्त्यसकारवाँस्तु रसनाशब्दो नन्द्यादित्वाल्ल्युप्रत्ययान्तः। रसयत्यास्वादयति यया सा रसना जिह्वा। कृल्ल्युटो बहुलमितिकरणे ल्युः॥

(७६) उनत्यार्द्रो भवतीत्योदनः । भक्तं वा ॥

(७७) गमस्य गः गच्छन्त्यस्मिन्निति गगनम् । आकाशं वा ॥

(७८) अन्यधातुभ्योऽपि बहुलं युच् प्रत्ययो भवति। द्योततेऽसौ द्योतनः प्रदीपो वा । स्यन्दते प्रस्रवति गच्छतीति स्यन्दनः। रथो वा। नयते प्राप्नोति रूपं येन तन्नयनम् । नेत्रं वा । चन्दत्याह्लादयतीति चन्दनम् । सुगन्धिर्वृक्षो वा। रोचतेऽसौ रोचना । गोरोचनमौषधं वा । अस्यति प्रक्षिपतीति, असनः । पीतवर्णः शालवृक्षो वा। राजानमततीति राजातनः । पुष्पं वा । शृणोत्यनया सा श्रवणा नक्षत्रं वा। एवमन्येऽपि यथाप्रयोगं युच्प्रत्ययान्ताः शब्दाः साध्याः॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रञ्जेः क्युन् ॥ ७९ ॥ रजनम् ॥ ७९ ॥

भूसूधूभ्रस्जिभ्यश्छन्दसि ॥ ८० ॥ भुवनम् । सुवनम् । निधुवनम् । भृज्जनम् ॥ ८० ॥

कृपृवृजिमन्दिनिधाञः क्युः ॥ ८१ ॥ किरणः । पुरणः । वृजनम् । मन्दनम् । निधनम् ॥ ८१ ॥

धृषेर्धिषच् सञ्ज्ञायाम् ॥ ८२ ॥ धिषणा ॥ ८२ ॥

(७९) रजति वस्त्रादयनेन तद्रजनम् । कुसुम्भं वा । स्त्रियां ङीष् । रजनी हरिद्रा । ल्युट्प्रत्यये सति रञ्जनमित्येव स्वरभेदश्च भवति । बाहुलकात्—कल्पतेऽसौ कृपणः । लोभयुक्तो वा ॥

(८०) क्युन् । भवतीति भुवनम् । लोको वा । बहुलवचनाद् भाषायामपि प्रयुज्यते । सूते सूयते वा स सुवनः । ईश्वरः सूर्यो वा । धूनोति कम्पयतीति धुवनः । अग्निर्वा । निधुवनम् । रतिक्रीडा वा । यद् यस्मिन् वा भृज्जति परिपक्वं भवतीति भृज्जनम् । अन्नभर्जनकपालं वा ॥

(८१) किरति विक्षिपत्यन्धकारमिति किरणः । पिपर्त्ति पालयति पूरयति वा स पुरणः । जलैः पूर्णो भवतीति समुद्रो वा । वृक्ते वर्जयतीति वृजनम् । अन्तरिक्षं बलं वा । यो येन वा मन्दते स्तौति स्वपिति कामयते वा तन् मदनम् । स्तोत्रं वा । नितरां दधाति यत्तन्निधनम् । मरणं वा । बाहुलकात्—केवलादपि धनम् ॥

(८२) धृष्णोति प्रागल्भ्यं ददाति स धिषणः गुरुः । धिषणा बुद्धिर्वा । अत्र सञ्ज्ञाग्रहणेन ज्ञायते । उणादयः सामान्यार्थे यौगिका भवन्तीति । सञ्ज्ञायास्तस्मिन्नर्थे रूढत्वात् । यदि च प्रकृतिप्रत्ययविभागेन उणादिभ्यो यौगिकोऽर्थो न निस्सरेत् तर्हि सर्वं उणादिस्थाः शब्दाः सञ्ज्ञावाचका एव स्युः । पुनः सञ्ज्ञाग्रहणमनर्थकं स्यात् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हन्तेर्घुरच् ॥ ८३ ॥ घुरणः ॥ ८३ ॥

वर्त्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच्च ॥ ८४ ॥

संश्चत्तृपद्वेहत् ॥ ८५ ॥

छन्दस्यसानच् शुजृभ्याम् ॥ ८६ ॥ शवसानः । जरसानः ॥ ८६ ॥

(८३) हन्ति हनने न वा प्रादुर्भवति स घुरणः । शब्दो वा ॥

(८४) पृषदादयो वर्तमानार्थवाचका अतिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शतृवच्चैषां कार्यं भवतीति । पर्षति सिञ्चति हिनस्ति वा तत् पृषत् । मृगविशेषो विन्दुर्वा । पृषती । पृषन्ति स्त्रियां पृषती । बर्हति वर्धतेऽसौ बृहत् । मह्त्यर्थे त्रिलिङ्गः । स्त्रियां बृहती छन्दोभेदो वा । महति पूजयति पूज्यते वा तन्महत् । महान् । महतो भावो महिमा । स्त्रियां ङीप् । महती । नारदस्य सप्ततंत्री वीणा वा । गच्छतीति जगत् । धातोर्जगादेशः । संसारे नपुंसकं वायुर्वा जगत् पुंसि । जङ्गमवाचिनि त्रिलिङ्गः । स्त्रियां जगती छन्दोभेदो जनो वा ॥

(८५) एतेऽप्यतिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । संश्चीयतेऽसौ संश्चत् कुहको वा । प्रत्ययस्य सुट् धातोरिकारलोपश्च । संश्चायते धूमः । भृशादित्वात् क्यङ् । तृप्नोति प्रीणयतीति तृपत् । छत्रं वा । विशेषेण हन्तीति वेहत् । विहन्ति गर्भमिति गर्भोपघातिनी गौर्वा । वेरुपसर्गस्यैकारादेशो धातोश्च टिलोपः । पूर्वसूत्रात् पृथक्करणं शतृवद्भावनिवृत्त्यर्थम् । तेन वेहतौ । वेहतः । संश्चतौ । इत्यादि सिद्धम् ॥

(८६) शवन्ति गच्छन्त्यस्मिन् स शवसानः । मार्गो वा । जीर्यति वयसा हीनो भवतीति जरसानः वृद्धो जनो वा । बाहुलकाद्—दृणाति तमोविदारयतीति दरसानः । प्रकाशो वा । तरति येन स तरसानः । नौका वा । वृणोतीति वरसानः । कृतदारो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऋञ्जिवृधिमन्दिसहिभ्यः कित् ॥ ८७ ॥ ऋञ्जसानः । वृधसानः । मन्दसानः । सहसानः ॥ ८७ ॥

अर्त्तेर्गुणः शुट् च ॥ ८८ ॥ अर्शसानः ॥ ८८ ॥

सम्यानच् स्तुवः ॥ ८९ ॥ संस्तवानः ॥ ८९ ॥

युधिबुधिदृशः किच्च ॥ ९० ॥ युधानः । बुधानः । दृशानः ॥९०॥

हुचर्छेः सनो लुक् छलोपश्च ॥ ९१ ॥ जुहुराणः ॥ ९१ ॥

श्वितेर्दश्च ॥ ९२ ॥ शिश्विदानः ॥ ९२ ॥

मुचियुधिभ्यां सन्वच्च ॥ ९३ ॥ मुमुचानः । युयुधानः ॥९३॥

(८७) ऋञ्जत्योषध्यादिकं पाचयतीति ऋञ्जसानः । मेघो वा । वर्धतेऽसौ वृधसानः । पुरुषो वा । मन्दते स्तुत्यादिकं करोतीति मन्दसानः जीवोऽग्निर्वा । सहतेऽसौ सहसानः । मयूरो यज्ञो वा ॥

(८८) य ऋच्छति प्राप्नोति सर्वान् स, अर्शसानः । अग्निर्वा । धातोर्गुणः प्रत्ययस्य शुडागमश्च ॥

(८९) सम्यक् स्तौतीति संस्तवानः । वाग्मी वा ॥

(९०) युध्यतेऽसौ युधानः । शत्रुर्वा । बुध्यते स बुधानः । आचार्यो वा । पश्यतीति दृशानः । लोकपालः सूर्यो वा । बाहुलकात् -कल्पते समर्थो भवतीति कृपाणः । खड्गो वा । पाषयति स्थूलो भवतीति पाषाणः । णित्वाद्वृद्धिः ॥

(९१) हूर्च्छति कुटिलो भवतीति जुहुराणः । चन्द्रमा वा ॥

(९२) सनो लुक् तकारस्य दकारः । किदित्यनुवृत्तेर्गुणनिषेधः । श्वेततेऽसौ शिश्विदानः पापकर्मा वा ॥

(९३) मुञ्चत्यसौ मुमुचानो मोचकः । युध्यतेऽसौ युयुधानो योद्धा ॥

For Private And Personal Use Only

तृन्तृचौ शंसिक्षदादिभ्यः सञ्ज्ञायां चानिटौ ॥ ९४ ॥
शंस्ता । शंस्तारौ । क्षत्ता । क्षत्तारौ ॥ ९४ ॥
नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृपोतृभ्रातृजामातृमातृदुहितृ ॥ ९५ ॥
सावसेर्ऋन् ॥ ९६ ॥ स्वसा ॥ ९६ ॥

(९४) शंस्यादिभ्यः क्षदादिभ्यश्च यथाक्रमं तृन्तृचौ तौ चानिटौ । शंसति स्तौतीति शंस्ता स्तोता । अप्तृन्तृजिति सूत्रे नप्तृप्रभृतेः पृथक् पाठादौणादिकयोस्तृन्तृचोर्ग्रहणं न भवति । तेन शंस्तरौ । शंस्तरः इत्यादिषु दीर्घो न भवति । शास्ति शिक्षते धर्मादिकमिति शास्ता । पण्डितो वा । प्रशास्ता राजा । प्रशास्तारौ । प्रशास्तारः । परिगणनाद्दीर्घः । क्षद संवृताविति सौत्रो धातुः । क्षदति संवृणोतीति क्षत्ता । सारथिर्द्वारपालो वैश्यायां शूद्राज्जातो वा । क्षुनत्ति संपिनष्टि येन स क्षोत्ता मुसलो वा । उन्नयति कार्याणीत्युन्नेता । ऋत्विग्वा । मन्यते जानात्यसौ मन्ता । विद्वान् । हन्तीति हन्ता । चौरो वा । धाता । ईश्वरो वा । उपदेष्टा गुरुः । इत्यादि ॥

(९५) नप्त्रादयो दश तृन्तृजन्ता निपात्यन्ते । नपतीति नप्ता । पौत्रो दौहित्रो वा । नप्तुः पुत्रः प्रनप्ता स्यात् । नप्त्री पौत्री । नञः प्रकृतिभावः । नयतेः षुक् । नयतीति नेष्टा । ऋत्विग्वा । त्विष्यतेऽसौ त्वष्टा । सूर्यो वा इकारस्याकारः । जुहोतीति होता यजमानो वा । व्यापकत्वेन सर्वं पुनातीति पोता विष्णुरीश्वरः । भ्राता । सोदर्यो वा । जकारलोपः । जायां कन्यां माति मिनोति मिमीते मार्जयति वा स जामाता दुहितुः पतिः । मृजधातोः सति रेफजकारलोपः । मानयति सत्करोतीति माता । उत्पादिका वा । स्वस्रादित्वात् टाप्निषेधः । पाति रक्षतीति पिता । जनको वा । दोग्धि कार्याणि प्रपूरयतीति दुहिता पुत्री वा । दुहितुरपत्यं दौहित्रः ॥

(९६) सुष्ठ्वस्यतीति स्वसा भगिनी वा ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यतेर्वृद्धिश्च ॥ ९७ ॥ याता ॥ ९७ ॥

नञि च नन्देः ॥ ९८ ॥ ननन्दा । ननान्दा ॥ ९८ ॥

दिवेर्ऋ ॥ ९९ ॥ देवा ॥ ९९ ॥

नयतेर्डिच्च ॥ १०० ॥ ना ॥ १०० ॥

सव्ये स्थश्छन्दसि ॥ १०१ ॥ सव्येष्ठा ॥ १०१ ॥

अर्तिसृधृधम्यम्यश्यवितृभ्योऽनिः ॥ १०२ ॥ अरणिः । सरणिः । धरणिः । धमनिः । अमनिः । अशनिः । अवनिः । तरणिः ॥ १०२ ॥

(९७) यततेऽसौ याता । भ्रातॄणां भार्याः परस्परं यातारो भवन्ति ॥

(९८) न नन्दति तुष्यतीति ननान्दा । बाहुलकाद् वृद्ध्यभावे-ननन्दा । पत्युर्भगिनी वा ॥

(९९) दीव्यति क्रीडादिकं करोतीति देवा । पत्युः कनीयान् भ्राता वा ॥

(१००) ऋप्रत्ययस्य डित्वाट्टिलोपः । कार्याणि नयतीति ना । नरौ । नरः । बहुकेशा वधूर्वा ॥

(१०१) डित्वादाकारलोपः । सव्ये वामभागे तिष्ठतीति सव्येष्ठा । सारथिर्वा सप्तम्या अलुक् ॥

(१०२) ऋच्छति प्राप्नोति येन स, अरणिः । अग्न्युत्पत्तये मथनी द्वे दारुणी वा । सरन्ति गच्छन्त्यस्मिन् स सरणिः । मार्गो वा । णयन्तात्सधातोरनिः सारणिः स्त्रियां सारणी । बाहुलकात्-शृणाति हिनस्तीति शरणिः । धरति सर्वमिति धरणिः पृथिवी वा । धमिः सौत्रो धातुः । धमति प्रापयति रसादिकमिति धमनिः नाडी वा । अमतीत्यमनिः । गतिर्वा । येनाश्नाति योऽश्नुते व्याप्नोति वा स, अशनिः । वज्रं वा । अवति रक्षणादिकं करोतीत्यवनिः । भूमिर्वा । तरति येन यया वा स सा वा तरणिः । सूर्यः कुमारी नौकौषधिभेदो वा । बाहुलकात्-रजतीति रजनिः रात्रिर्वा । नलोपः । स्त्रियां रजनी द्राक्षा हरिद्रा वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आङि शुषे सनश्छन्दसि ॥१०३॥ आशुशुक्षणिः ॥१०३॥

कृषेरादेश्च घः ॥ १०४ ॥ घर्षणिः ॥ १०४ ॥

अदेर्मुट् च ॥ १०५ ॥ अद्मनिः ॥ १०५ ॥

वृतेश्च ॥ १०६ ॥ वर्त्तनिः ॥ १०६ ॥

क्षिपेः किच्च ॥ १०७ ॥ क्षिपणिः ॥ १०७ ॥

अर्चिशुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्य इसिः ॥ १०८ ॥ अर्चिः । शोचिः । हविः । सर्पिः । छदिः । छर्दिः ॥ १०८ ॥

बृंहेर्नलोपश्च ॥ १०९ ॥ बर्हिः ॥ १०९ ॥

द्युतेरिसिन्नादेश्च जः ॥ ११० ॥ ज्योतिः ॥ ११० ॥

(१०३) सन्नन्तादाङ्पूर्वादनिः प्रत्ययः । समन्तात् शुष्यन्ति पदार्था येन स आशुशुक्षणिः । अग्निर्वा ॥

(१०४) कृषतीति घर्षणिः । पुंश्चली स्त्री वा । ङीप् घर्षणी ॥

(१०५) अत्तीत्यद्मनिः । अग्निर्वा ॥

(१०६) वर्तते यस्मिन्निति वर्त्तनिः । मार्ग एकपदी वा ॥

(१०७) क्षिपत्यनेन शत्रून् स क्षिपणिः । आयुधं वा ॥

(१०८) अर्चति येन तदर्चिः । दीप्तिर्वा । शोचति शोचयतीति शोचिः । प्रकाशो वा । हूयते यत्तद्धविः । होमयोग्यं वस्तु वा । यत्येन वा सर्पति तत् सर्पिः । घृतं वा । छादयति येन तच्छदिः । छादनं तृणादिछादनसाधनं वा । इस्मन्त्रन्निति ह्रस्वादेशः । छर्दति यत्तच्छर्दिः । वमनं व्याधिर्वा । बाहुलकात्—समन्तादवतीति, आविः । प्राकट्यम् । अव्ययशब्दोयम् ॥

(१०९) बृंहति वर्द्धते तद् बर्हिः । दर्भा वा ॥

(११०) द्योतते प्रकाशते तज्ज्योतिः । अग्निः सूर्य्यादिकं वा । ज्योतिरधिकृत्य कृतो ग्रन्थो ज्योतिषम् । सञ्ज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वाद् वृद्धिनिषेधः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वसौ रुचेः सञ्ज्ञायाम् ॥ १११ ॥ वसुरोचिः ॥ १११ ॥

भुवः कित् ॥ ११२ ॥ भुविः ॥ ११२ ॥

सहो धश्च ॥ ११३ ॥ सधिः ॥ ११३ ॥

पिबतेस्थुक् ॥ ११४ ॥ पाथिः ॥ ११४ ॥

जनेरुसिः ॥ ११५ ॥ जनुः ॥ ११५ ॥

मनेर्धश्छन्दसि ॥ ११६ ॥ मधुः ॥ ११६ ॥

अर्त्तिपॄवपियजितनिधनितपिभ्यो नित् ॥ ११७ ॥ अरुः । परुः । वपुः । यजुः । तनुः । धनुः । तपुः ॥ ११७ ॥

एतेर्णिच्च ॥ ११८ ॥ आयुः ॥ ११८ ॥

(११) वसूनग्न्यादीन् रोचतेऽसौ वसुरोचिः । यज्ञो वा । बाहुलकात्—केवलादपि रोचिः ज्वाला वा ॥

(११२) इसिन् कित् । यो भवति यस्मिन् वा स भुविः समुद्रो वा ॥

(११३) इसिन् । सहते भारमिति सधिः । अनड्वान् वा ॥

(११४) पिबति यो येन वा तत् पाथिः चक्षुः समुद्रो वा ॥

(११५) जायते यतज्जनुः । जनुषी । जननं वा । बाहुलकान्मनधातोरपि मन्यते जानातीति मनुः । मनुषी ॥

(११६) मन्यते बुध्यते यद्येन वा तत् मधु पवित्रद्रव्यं वा ॥

(११७) ऋच्छति प्राप्नोतीत्यरुः । आदित्यो वृणो वा । पिपर्ति येन तत् परुः । ग्रन्थिर्वा । वपति बीजादिकमस्मात्तद्वपुः शरीरं वा । यजति येन तद्यजुः । वेदविशेषो वा । तनोति कार्याण्यनेन तत्तनुः शरीरं वा । दिधन्ति धनादिकं प्राप्नोति येन तद्धनुः वाणक्षेपणं वा । तपति दुःखयतीति तपुः सूर्योऽग्निः शत्रुर्वा ॥

(११८) ईयते प्राप्यते यत्तदायुः । जीवनं वा । जटापूर्वाज्जटायुः । पक्षिराजः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चक्षेः शिच्च ॥ ११९ ॥ चक्षुः ॥ ११९ ॥

मुहेः किच्च ॥ १२० ॥ मुहुः ॥ १२० ॥

कृगॄशॄवृञ्चतिभ्यः ष्वरच् ॥ १२१ ॥ कर्वरः । गर्वरः । शर्वरी । वर्वरः । चत्वरम् ॥ १२१ ॥

नौ षदेः ॥ १२२ ॥ निषद्वरः ॥ १२२ ॥

इत्युणादिषु द्वितीयः पादः ॥

(११९) चष्टे रूपमनुभवन्त्यनेन तच्चक्षुः । नेत्रं वा । चक्षुषा गृह्यत इति चाक्षुषं रूपम् ॥

(१२०) मुह्यति भ्रान्तो भवतीति मुहुः । पौनः पुन्येऽर्थेऽव्ययं वा ॥

(१२१) किरति विक्षिपतीति कर्वरः । व्याघ्रो दुष्टो वा कर्वरी रात्रिर्व्याघ्री दुष्टा वा । गिरति निगरतीति गर्वरोऽहंकारः । अहङ्कारयोगाद् गर्वरो नायकः । शृणाति हिनस्ति प्रकाशमिति शर्वरी रात्रिर्वा । वृणातीति वर्वरः । प्राकृतजनो वा । चतते याचते स्वीक्रियते यत्तत् चत्वरम् । अङ्गनं वा ॥

(१२२) निषीदति यो यत्र वा स निषद्वरः । पङ्को निषद्वरी रात्रिर्वा ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे द्वितीयः पादः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथ तृतीयापादारम्भः ॥

-:०※०:-

छित्वरछत्वरधीवरपीवरमीवरचीवरतीवरनीवरगह्वरकट्वर-संयद्वराः ॥ १ ॥

इण्सिञ्जिदीङुष्यविभ्यो नक् ॥ २ ॥ इनः । सिनः । जिनः । दीनः । उष्णः । ऊनः ॥ २ ॥

(१) छित्वरादय एकादश शब्दाः ष्वरच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । छिनत्तीति छित्वरः धूर्तः । शत्रुश्छेदनद्रव्यं वा । छदतेऽपवारयतीति छत्वरः । गृहं लताच्छादितं स्थानं वा । अत्रोभयत्र धातुदकारस्य तकारः । डुधाञ् धारणे पा पाने, मा माने । एषामीत्वमन्त्यस्य । दधातीति धीवरः । नौवाहको वा । पिबति दुग्धादिकमिति पीवरः स्थूलो वा । माति मीनाति हिनस्ति वा स मीवरः । हिंसको वा । चिनोति तृणादिना चीयते वा स चीवरः । चीवरं वस्त्रं मुनिस्थानं वा । धातोर्दीर्घादेशः । तीरयति कर्म्मसमाप्तिं करोतीति तीवरो जातिविशेषो वा । रेफलोपो गुणाभावश्च । नयतीति नीवरः । गुणनिषेधः । परिव्राट् वा । गाहते विलोडयतीति गह्वरम् । गहनं वा । ह्रस्वादेशः । कटति वर्षत्यावृणोति वा तत् कट्वरम् । भोज्यं व्यञ्जनं वा । संयच्छतीति संयद्वरः । नृपो वा । मकारस्य दकारः । बाहुलकात्—उपजुहोतीत्युपह्वरः । रथो वा । ष्वरच् प्रत्ययस्य षित्वात् स्त्रियां छित्वरी । इत्यादि सर्वत्र ङीष् ॥

(२) एतीति इनः । ईश्वरो राजा प्रभुः सूर्य्यो वा । इनेन स्वामिना सह वर्त्तत इति सेना । सिनोति बध्नातीति सिनः । काणो वा । जयतीति जिनः । अतिवृद्धो जयशीलो नास्तिकभेदो वा । दीयते क्षीणो भवतीति दीनः । दुःखी वा । ओषति दहतीत्युष्णम् । ईषत्तप्तं वा । वाच्यलिङ्गः । अवति रक्षादिकं करोतीत्यूनः । असंपूर्णो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

फेनमीनौ ॥ ३ ॥

कृषेर्वर्णे ॥ ४ ॥ कृष्णः ॥ ४ ॥

बन्धेर्ब्रधिबुधी च ॥ ५ ॥ ब्रध्नः । बुध्नः ॥ ५ ॥

धापॄवस्यज्यतिभ्यो नः ॥ ६ ॥ धानाः । पर्णम् । वस्नः । वेनः । अत्नः ॥ ६ ॥

लक्षेरट् मुट् च ॥ ७ ॥ लक्षणम् । लक्ष्मणम् ॥ ७ ॥

वनेरिच्चोपधायाः ॥ ८ ॥ वेन्ना ॥ ८ ॥

(३) स्फायते वर्द्धते स फेनः । डिण्डीरः । समुद्रफेन इतिप्रसिद्धः । जलविकारो वा । फेनायते नदी । मीनाति हिनस्तीति मीनः । राश्यन्तरो मत्स्यो वा ॥

(४) कृषतीति कृष्णो नीलवर्णो वा कृष्णा पिप्पली वा । बाहुलकात् जिघर्ति क्षरति चित्तं यया सा घृणा दौर्मनस्यं वा ॥

(५) ब्रध्नातीति ब्रध्नः बुध्नातीति । बुध्नः । ब्रध्नो महान् सूर्य्यो वा । बुध्नो मेघो मूलमन्तरिक्षं वा ॥

(६) दधातीति धानाः अग्निपक्वा यवा वा । नित्यं स्त्रीलिङ्गो बहुवचनश्च । पिपर्ति पालयति पूरयति वा तत् पर्णम् । पत्रं वा । वसति येन स वस्नः । मूल्यं वेतनं वा । अजति गच्छति प्राप्नोति वा स वेनः । कमनीयः प्रजापतिरीश्वरो वा । अतति निरन्तरं गच्छतीति अत्नः । सूर्य्यो वा । बाहुलकात्—शृणोतीति श्रोणः । पङ्गुर्वा ॥

(७) लक्षयतीति लक्षणः । लक्ष्मणम् । चिह्नं नाम वा । रामभ्राता लक्ष्मणो वा । हंसस्त्री लक्षणा सारसी वा ॥

(८) वन्यते सम्भज्यते या सा वेन्ना । नदी वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिवेष्टेर्यू च ॥ ९ ॥ स्योनः ॥ ९ ॥

कृवृजृसिद्रूपन्यनिस्वपिभ्यो नित् ॥ १० ॥ कर्णः । वर्णः । जर्णः । सेना । द्रोणः । पन्नः । अन्नम् स्वप्नः ॥ १० ॥

धेट इच्च ॥ ११ ॥ धेनः । धेना ॥ ११ ॥

तृषिशुषिरसिभ्यः कित् ॥ १२ ॥ तृष्णा । शुष्णः । रस्नम् ॥ १२ ॥

सुञो दीर्घश्च ॥ १३ सूना ॥ १३ ॥

रमेस्त च ॥ १४ ॥ रत्नम् ॥ १४ ॥

(९) सीव्यति तन्तून् सन्तनोतीति स्यूनः । आदित्यो वा । टिभागस्य यू इत्यादेशः । बाहुलकात्—केवलोऽपि न प्रत्ययस्तेन ऊठादेशे कृते स्योनः सुखी स्योनं सुखमित्यपि सिद्धं भवति ॥

(१०) नो नित् । किरति विचिपतीति कर्णः । श्रोत्रं क्षत्रियविशेषो वा। वृणोति वियते वा स वर्णः। ब्राह्मणादिः शुक्लादिः स्तुतिर्यशो रूपमक्षरं स्वीकारश्च। जीर्यतीति जर्णः । चन्द्रमा वृद्धो वा । सिनोति बध्नाति शत्रूनिति सेना । इनेन सह वर्तत इति पूर्वमुक्तम् । द्रवति गच्छतीति द्रोणः। कृष्णकाको मानविशेषोऽर्जुनगुरुर्वा । द्रोणी जलसेचनी वा । पनायति स्तौतीति पन्नः। सर्पो वा । अनिति जीवयतीत्यन्नमोदनादिकं वा । यः स्वपिति यत् सुप्यते वा स स्वप्नः । निद्रा वा॥

(११) धयन्ति पिबन्ति यस्मात्स धेनः समुद्रो धेना नदी वा । आत्त्वनिवृत्त्यर्थं इकारादेशः ॥

(१२) तृष्यति काङ्क्षति पिपासति वा यया सा तृष्णा । लिप्सा पिपासा वा । शुष्यति रसादिकमिति शुष्णः । सूर्योऽग्निर्वा । रसति शब्दयतीति रस्नम् । द्रव्यं वा ॥

(१३) यः सुनोति यत्र वेति सूना । जन्तुबधस्थानं वा ॥

(१४) णयन्ताद्रमेर्न प्रत्ययो मस्य तश्चादेशः। रमयति हर्षयतीति रत्नम् । जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्धि रत्नं प्रचक्षते । अश्वरत्नम् । गजरत्नम् । मणिरत्नम् । स्त्रीरत्नम् । इत्यादि ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रास्नासास्नास्थूणावीणाः ॥ १५ ॥

गादाभ्यामिष्णुच् ॥ १६ ॥ गेष्णुः । देष्णुः ॥ १६ ॥

कृत्यशूभ्यां क्स्नः ॥ १७ ॥ कृत्स्नम् । अक्ष्णम् ॥ १७ ॥

तिजेर्दीर्घश्च ॥ १८ ॥ तीक्ष्णम् ॥ १८ ॥

श्लिषेरच्चोपधायाः ॥ १९ ॥ श्लक्ष्णम् ॥ १९ ॥

यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच् ॥ २० ॥ यज्युः । मन्युः । शुन्ध्युः । दस्युः । जन्युः ॥ २० ॥

भुजिमृङ्भ्यां युक्त्युकौ ॥ २१ ॥ भुज्युः । मृत्युः ॥ २१ ॥

(१५) रसति शब्दयतीति रास्ना । गन्धद्रव्यं वा । सस्ति स्वपिति यया सा सास्ना । गवादीनां कण्ठाऽधोभागश्चर्म वा । तिष्ठति छादनादिकमनया सा स्थूणा गृहस्तम्भो वा । आकारस्य ऊ आदेशः । वेति व्याप्नोति शब्दोऽस्याः सा वीणा वाद्यविशेषो वा । निपातनाण्णत्वम् ॥

(१६) गायति शब्दं करोतीति गेष्णुः । गायको वा । ददातीति देष्णुः । दानशीलो वा ॥

(१७) कृन्तति स्वल्पमिति कृत्स्नम् । संपूर्णं वा । अश्नुते व्याप्नोतीत्यक्ष्णम् । अखण्डं वा ॥

(१८) तितिक्षते तत् तीक्ष्णम् । तीव्रम् । वाच्यलिङ्गोऽयं शब्दः । तीक्ष्णा बुद्धिः । तीक्ष्णः पुरुषः । तीक्ष्णं घृतम् ॥

(१९) क्स्नः । श्लिष्यतीति श्लक्ष्णम् । सुकुमारं त्रिलिङ्गेषु वा ।

(२०) यजतीति यज्युः । अध्वर्युर्वा । मन्यतेऽसौ मन्युः । शोकः क्रोधो वा । शुन्धतीति शुन्ध्युः । अग्निर्वा । दस्यति नाशयति परपदार्थानिति दस्युः । तस्करो वा । जायते प्रादुर्भवतीति जन्युः । शरीरी वा । बाहुलकादनादेशाभावः ॥

(२१) यो भुनक्ति यत्र वा स भुज्युः पात्रं वा । म्रियत इति मृत्युः । शरीरवियोगो वा स्त्रीलिङ्गः पुँल्लिंगश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सरतेरयुः ॥ २२ ॥ सरयुः ॥ २२ ॥

पानीविषिभ्यः पः ॥२३॥ पापम् । नीपः । वेष्पः ॥ २३ ॥

च्युवः किच्च ॥ २४ ॥ च्युपः ॥ २४ ॥

स्तुवो दीर्घश्च ॥ २५ ॥ स्तूपः ॥ २५ ॥

सुशृभ्यां निच्च ॥ २६ ॥ सूपः । शूर्पम् ॥ २६ ॥

कुयुभ्यां च ॥ २७ ॥ कूपः । यूपः ॥ २७ ॥

खष्पशिल्पशष्पवाष्परूपपर्पतल्पाः ॥ २८ ॥

(२२) यः सरति यत्र जलानि वा सरन्ति स सरयुः । नदी वा । अयूप्रत्यय इति पाठान्तरम् । सरयूः ॥

(२३) पान्ति रक्षन्त्यात्मानमस्मादिति पापमधर्मो वा । तद्योगात्पापः पुरुषः । नयतीति नेपः । पुरोहितो वा । वेवेष्टि व्याप्नोतीति वेष्पः । पेयमुदकं वा ॥

(२४) च्यवते प्राप्नोति वदति वा येन स च्युपः । मुखं वा ॥

(२५) स्तौतीति स्तूपः । भूमिसमुच्छ्रायो यज्ञवेदिर्वा ॥

(२६) किद् दीर्घश्च । सुनोति सूयते पच्यते वा स सूपः पक्वं द्विदलान्नं वा । शृणाति हिनस्तीति शूर्पं मानभेदोऽन्नशोधकं पात्रं वा ॥

(२७) कित् दीर्घश्च । कौति शब्दयतीति कूपः । यौति मिश्रयतीति यूपः । यज्ञशालास्तम्भो वा ॥

(२८) खष्पादयः पप्रत्ययान्ता निपाताः । खनतीति खष्पः । क्रोधो बलात्कारो वा । नकारस्य षत्वम् । यत् शीलति समादधाति तत् शिल्पम् कौशलं वा । ह्रस्वादेशः । शष्यते हन्यते तच्छष्पम् । बालतृणं कान्तिक्षयो वा । षत्वम् । बाधते दुःखयतीति बाष्पम् । नेत्रजलमूष्मा वा । धकारस्य सत्वम् । रौति शब्दयतीति रूपम् । आकृतिः स्वभावः सौन्दर्य्यं वा, दीर्घादेशः । पिपर्तीति पर्पम् । गृहं बालतृणं वा । तलयति प्रतिष्ठां करोतीति तल्पम् । शय्या स्त्रियो वा । बालहुङ्कात्—चमति भक्षयतीति चम्पा । नगरी वा । पाति रक्षतीति पम्पा । नदी वा । ह्रस्वत्वं मुडागमश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्तनिहृषिपुषिगदिमदिभ्यो णेरित्नुच् ॥२९॥ स्तनयित्नुः । हर्षयित्नुः । पोषयित्नुः । गदयित्नुः । मदयित्नुः ॥ २९ ॥

कृहनिभ्यां क्त्नुः ॥ ३० ॥ कृत्नुः । हत्नुः ॥ ३० ॥

गमे सन्वच्च ॥ ३१ ॥ जिगत्नुः ॥ ३१ ॥

दाभाभ्यां नुः ॥ ३२ ॥ दानुः । भानुः ॥ ३२ ॥

वचेर्गश्च ॥ ३३ ॥ वग्नुः ॥ ३३ ॥

धेट इच्च ॥ ३४ ॥ धेनुः ॥ ३४ ॥

सुवः कित् ॥ ३५ ॥ सूनुः ॥ ३५ ॥

जहातेर्द्वेऽन्त्यलोपश्च ॥ ३६ ॥ जह्नुः ॥ ३६ ॥

(२९) स्तनयति शब्दयतीति स्तनयित्नुः । मेघो विद्युद्वा । हर्षयतीति हर्षयित्नुः । हर्षयिता । सुवर्णं वा । पोषयतीति पोषयित्नुः । पोषयिता । गादयतीति गदयित्नुः । वावदूको वा । मादयतीति मदयित्नुः मदिरा वा । अत्र सर्वत्र अयामन्ताल्वाय्येत्नु० इति सूत्रेण णेरयादेशः ॥

(३०) करोतीति कृत्नुः । शिल्पी वा । यो हन्ति येन वा स हत्नुः । व्याधिः शास्त्रं वा ॥

(३१) गमयति शरीराणीति जिगत्नुः प्राणो वा ॥

(३२) ददातीति दानुः । दानशीलो बुद्ध्यादिविचक्षणो वा । भाति दीप्यतेऽसौ भानुः सूर्यः प्रकाशः किरणो वा । स्वर्भानू राहुः । चित्रभानुः सूर्योऽग्निर्वा । बृहद्भानुरग्निः ॥

(३३) वक्तीति वग्नुः । वाचालो वा ॥

(३४) धयन्ति पिबन्ति यस्याः सा धेनुः । नवप्रसूता गौर्वा । कनि सति धेनुका हस्तिनी वा ॥

(३५) सूयत उत्पद्यतेऽसौ सूनुः । अनुजः पुत्रः सूर्यो वा ॥

(३६) जहाति दोषानिति जह्नुः । कश्चिद्राजर्षिर्वा ॥

For Private And Personal Use Only

स्थो णुः ॥ ३७ ॥ स्थाणुः ॥ ३७ ॥

अजिवृरीभ्यो निच्च ॥ ३८ ॥ वेणुः । वर्णुः । रेणुः ॥ ३८ ॥

विषेः किच्च ॥ ३९ ॥ विष्णुः ॥ ३९ ॥

कृदाधाराचिंकलिभ्यः कः ॥ ४० ॥ कर्कः । दाकः । धाकः । राका । अर्कः । कल्कः ॥ ४० ॥

सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक् ॥ ४१ ॥ सृकः । वृकः । भूकम् । शुष्कः । मुष्कः ॥ ४१ ॥

(३७) तिष्ठतीति स्थाणुः शुष्कवृक्षो निश्चलो वा ॥

(३८) अजति गच्छति प्रक्षिपति वा स वेणुः । वंशो राजविशेषो वा । व्रियते सम्भजतीति वर्णुः । गदो देशभेदो वा । रिणाति गच्छति छिनत्ति हन्यते वा स रेणुः । धूलिः । सुरेणुः सुवर्णरजः । त्रसरेणुः सुरेणुर्वा ॥

(३९) वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगदिति विष्णुर्जगदीश्वरः ॥

(४०) बहुलवचनान्न ककारस्येत्सञ्ज्ञा । करोतीति कर्कः । अग्निः शुक्लाश्वो दर्पणो घटो वा । ददातीति दाकः । यजमानो वा । दधातीति धाकः । आधारोऽनड्वान् वा । राति ददातीति राका । पौर्णमासी नदीभेदो वा । अर्चयतीत्यर्कः । अर्कपर्णं स्फटिकं सूर्यो वा । कलते शब्दयतीति कल्कम् । दम्भः किल्बिषं वा । बाहुलकात्—रमतेऽसौ रङ्कः कृपणो मन्दो वा । कपिलकादित्वाल्लत्वे कृते । लङ्का दुष्टनगरी वृक्षशाखा पुंश्चली वा ॥

(४१) सरतीति सृकः वाणो वज्रं वायुरुत्पलं वा । वृणोतीति वृकः काकः श्वापदो वा । वृक एव वार्केण्यः । भवतीति भूकम् । छिद्रं कालो वा । शुष्यतीति शुष्कः । नीरसो वा । मुष्यत आव्रियत इति मुष्कः अण्ड-कोषः सङ्घातो वा । मुष्कोऽस्यास्तीति मुष्करः । बाहुलकादर्वति रक्षण-हेतुर्भवतीत्योकः । राशिः स्थानं वा । मूर्च्यते बध्यतेऽसौ मूकः । वचनवर्जितो वा । रेफवकारयोर्लोपः ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शुकवल्कोल्काः ॥ ४२ ॥

इण्भीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन् ॥ ४३ ॥ एकः । भेकः । काकः । पाकः । शल्कम् । अत्कः । मर्कः ॥ ४३ ॥

नौ हः ॥ ४४ ॥ निहाका ॥ ४४ ॥

नौ सदेर्डिच्च ॥ ४५ ॥ निष्कः ॥ ४५ ॥

स्यमेरीट् च ॥ ४६ ॥ स्यमीका । स्यमिकः ॥ ४६ ॥

अजियुधुनीभ्यो दीर्घश्च ॥ ४७ ॥ वीकः । यूका । धूकः। नीकः ४७ ॥

(४२) शुकादयः कप्रत्ययान्ता निपाताः । शोभतेऽसौ शुकः पक्षिजातिर्व्यासपुत्रो वा । बलते संवृणोति येन तत् बल्कलं वा । ओषति दहतीति उल्का । विद्युदग्नेर्ज्वाला वा । षकारस्य लत्वम् ॥

(४३) एति प्राप्नोतीत्येकः । मुख्योऽन्यः केवलो वा । यो बिभेति यस्माद्वा स भेकः । मण्डूको मेघो वा । कायति शब्दयतीति काकः । वायसो वा । पिबत्यसाविति पाकः शिशुर्वृद्धो वा । शल्यति गच्छति शल्यते वा तत् शल्कम् वल्कलं वा । अतति निरन्तरं गच्छतीत्यत्कः । पथिकः शरीरावयवो वा । मर्च इति सौत्रो धातुः मर्चति चेष्टतेऽसौ मर्कः । शरीरवायुर्वा । बाहुलकात्—श्यतीति शाकम् । स्यतीति साकं वा ॥

(४४) नितरां जहाति त्यजतीति निहाका । गोधिका वा ॥

(४५) निषीदतीति निष्कः । परिमाणभेदो वा ॥

(४६) स्यमति शब्दयतीति स्यमीकः । वल्मीको वृक्षभेदो वा । चकारादिडागमे स्यमिकः ॥

(४७) अजति गच्छतीति वीकः । वायुः पक्षी वा । यौतीति यूका । शिरः केशजन्तुर्वा । धूनोति कम्पयतीति धूकः । वायुर्वा । नयतीति नीकः । वृक्षविशेषो वा ॥

For Private And Personal Use Only

ह्रियो रश्च लो वा ॥ ४८ ॥ ह्रीका । ह्लीका ॥ ४८ ॥

शकेरुनोन्तोन्त्युनयः । ४९ ॥ शकुनः । शकुन्तः । शकुन्तिः । शकुनिः ॥ ४९ ॥

भुवो भिच् ॥ ५० ॥ भवन्तिः ॥ ५० ॥

कन्युच् क्षिपेश्च ॥ ५१ ॥ क्षिपण्युः । भुवन्युः ॥ ५१ ॥

अनुङ् नदेश्च ॥ ५२ ॥ नदनुः । क्षिपणुः ॥ ५२ ॥

कृवृदारिभ्य उनन् ॥ ५३ ॥ करुणा । वरुणः । दारुणम् ॥ ५३ ॥

(४८) जिह्रेति लज्जां करोतीति ह्रीका ह्लीका लज्जा वा ॥

(४९) उन, उन्त, उन्ति, उनि, इत्येते प्रत्यया भवन्ति । शक्नोतीति शकुनः । शकुन्तः । शकुन्तिः । शकुनिः । पक्षिनामानि वा ॥

(५०) भवन्ति पदार्था यस्मिन् स भवन्तिः । वर्तमानकालो वा । कामयतेऽसौ कुन्तिः । स्त्रियां कुन्ती । धातोः कुरादेशः प्रत्ययादिलोपश्च । अवतीति, अवन्तिः । राजा वा । वदतीति वदन्तिः । कोलाहलो वा । किंवदन्ती जनश्रुतिः । कुन्त्यादयो बाहुलकादेव भवन्ति ॥

(५१) चाद् भुवः । क्षिप्यति प्रेरयतीति क्षिपण्युः । वसन्त ऋतुर्वा । भवतीति भुवन्युः । स्वामी सूर्यो वा ॥

(५२) चात् क्षिपेः । नदत्यव्यक्तं शब्दं करोतीति नदनुः मेघो वा । क्षिप्यतीति क्षिपणुः वायुर्वा ॥

(५३) किरति विक्षिपति दुर्गुणमिति करुणः । वृक्षभेदो वा । करुणा कृपा वा । करुणा शीलमस्येति कारुणिकः । वृणोति व्रियते वाऽसौ वरुणः । उत्तमं जलं वृक्षभेदो वा । दारयति यत् येन वा तद्दारुणं भीषणं वा ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्रो रश्च लो वा ॥ ५४ ॥ तरुणः । तलुनः ॥ ५४ ॥

क्षुधिपिशिमिथिभ्यः कित् ॥ ५५ ॥ क्षुधुनः । पिशुनः । मिथुनम् ॥ ५५ ॥

फलेर्गुक् च ॥ ५६ ॥ फल्गुनः ॥ ५६ ॥

अशेर्लशश्च ॥ ५७ ॥ लशुनम् ॥ ५७ ॥

अर्जेर्णिलुक् च ॥ ५८ ॥ अर्जुनः ॥ ५८ ॥

तृणाख्यायां चित् ॥ ५९ ॥ अर्जुनम् ॥ ५९ ॥

अर्त्तेश्च ॥ ६० ॥ अरुणः ॥ ६० ॥

अजियमिशीङ्भ्यश्च ॥ ६१ ॥ वयुनम् । यमुना । शयुनः ॥ ६१ ॥

---

(५४) उनन् । तरतीति तरुणः । तलुनः । युवा वृक्षभेदो वा । स्त्रियां गौरादित्वात् ङीष् तरुणी तलुनी वा युवती ॥

(५५) क्षुध्यति भोक्तुमिच्छतीति क्षुधुनः । म्लेच्छजातिर्वा । पिशत्यवयवं करोतीति पिशुनः खलः सूचको वा । मेथति जानाति ज्ञायते हिनस्ति वा तन्मिथुनम् । द्वयोः संयोगो राशिर्वा ॥

(५६) फलति निष्पन्नो भवतीति फल्गुनः शुक्लो वा ॥

(५७ उनन् । अश्यते भुज्यते यत्तल्लशुनम् । औषधरूपः कन्दो वा ॥

(५८) उनन् अर्जयतीत्यर्जुनः । शुक्लो मयूरो वृक्षभेदो वा । अर्जुनी । सौरभेयी ॥

(५९) अर्जयति यत्तदर्जुनं तृणम् । चित्करणमन्तोदात्तार्थम् ॥

(६०) ऋच्छति प्राप्नोतीत्यरुणः सूर्यः कुष्ठं रक्तं वा ॥

(६१) वीयते गम्यतेऽनेनेति वयुनम् । मन्दिरं वा । यच्छतीति यमुना । नदीभेदो वा । शेतेऽसौ शयुनः । अजगरो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वृतॄवदिवचिवसिहनिकमिकषिभ्यः सः ॥६२॥ वर्षम् । तर्षः । वत्सः । वक्षः । वत्सम् । हंसः । कंसः । कक्षम् ॥६२॥

प्लुषेरच्चोपधायाः ॥ ६३ ॥ प्लक्षः ॥ ६३ ॥

मनेर्दीर्घश्च ॥ ६४ ॥ मांसम् ॥ ६४ ॥

अशेर्देवने ॥ ६५ ॥ अक्षः ॥ ६५ ॥

स्नुव्रश्चिकृत्यृषिभ्यः कित् ॥६६॥ स्नुषा । वृक्षः । कृत्सम् । ऋक्षम् ॥ ६६ ॥

(६२) वृणोति स्वीकरोतीति वर्षम् । संवत्सरो वृष्टिरार्यावर्तो मेघो वा। स्त्रियां बहुवचनान्तो वर्षाः प्रावृषि ऋतौ । तरति येन यत्र वा स तर्षः । समुद्रो वा। वदतीति वत्सः। बालो वा वक्त्यस्मिन्निति वक्षः। वक्षःस्थलं वा। वसत्यस्मिन्निति वत्सम्। निवासस्थानंवा। हन्तीति हंसः। निर्लोभः सूर्यः पक्षिभेदो श्वभेदः शरीरस्थो वायुर्वा । कामयते परपदार्थानिति कंसः । तैजसद्रव्यं पात्रं तस्करो वा । कषति हिनस्तीति कक्षम्। तृणं लतावनसमीपं बाहुमूलं वा। बाहुलकात्-राजते दीप्यते सा राक्षा लाक्षा । कपिलकादित्वाल्लत्वम् । यौतीति योषा स्त्री वा ॥

(६३) प्लोषति दहतीति प्लक्षः । पिप्पलं पर्कटी वा । पाकरि इति प्रसिद्धा । द्वीपभेदो गृहस्य द्वारपार्श्वं वा ॥

(६४) मन्यते ज्ञायतेऽनेन तन्मांसम् । शरीरोपचयो वा ॥

(६५) अश्नुते व्याप्नोतीत्यक्षः । अक्षाणीन्द्रियाणि तुषं चक्रं शकटं व्यवहारो वा ॥

(६६) स्नौति प्रस्रवतीति स्नुषा । यवीयसो भ्रातुर्भार्या वा । वृश्च्यते छिद्यतेऽसौ वृक्षः। वृक्षवरण इत्यस्मादपीगुपधात् के प्रत्यये वृक्ष इति सिध्यति। अर्थभेदायात्र व्रश्चिग्रहणं तेन छेद्यत्वात् कार्यं जगदपि वृक्ष उच्यते । कृन्तति छिनत्तीति कृत्समुदकम् । ऋषति गच्छतीति ऋक्षम् । नक्षत्रसामान्यं वा । बाहुलकात्—समन्तान्मेषति हिनस्तीत्यामिक्षा। क्षीरविकारो वा । लिश्यतेऽल्पाभवतीति लिक्षा । शिरः केशजन्तुर्वा । रोहति बीजाज्जायतेऽसौ रुक्षः । वृक्षजातिः प्रीतिक्षीणो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऋषेर्जातौ ॥ ६७ ॥ ऋक्षः ॥ ६७ ॥

उन्दिगुधिकुषिभ्यश्च ॥६८॥ उत्सा । गुत्सः ।कुक्षः ॥६८॥

गृधिपण्योर्दकौ च ॥ ६९ ॥ गृत्सः ॥ पक्षः ॥ ६९ ॥

अशेः सरन् ॥ ७० ॥ अक्षरम् ॥ ७० ॥

वसेश्च ॥ ७१ ॥ वत्सरः ॥ ७१ ॥

संपूर्वाच्चित् ॥ ७२ ॥ संवत्सरः ॥ ७२ ॥

कृधूमदिभ्यः कित्॥ ७३ ॥ कृसरः । धूसरः । मत्सरः ॥ ७३ ॥

पतेरश्च लः ॥ ७४ ॥ पत्सलः ॥ ७४ ॥

(६७) ऋषति गच्छतीति ऋक्षः । मृगजातिभेदो भल्लूकः । पूर्वसूत्रेण सिद्धे जातिनियमाद्यौगिके ऋषधातोः षः प्रत्ययो वा ॥

(६८) उनत्ति क्लिद्यतीत्युत्सः । जलस्रवणस्थानमृषिर्वा । गुध्नाति रोषं करोतीति गुत्सः । हारभेदः पुष्पगुम्फो वा । कुष्णाति निष्कर्षतीति कुक्षः । जठरस्थानं वा ॥

(६९) चित् गृध्यति अभिकाङ्क्षतीति गृत्सः । कामो वा । गकारस्य भष्भावनिवृत्यर्थो दकारादेशः । पणायति स्तौति व्यवहरति वा येन यत्र वा स पक्षः । मासार्द्धः पार्श्वभागः साध्यविरोधः समूहो बलं मित्रसहायो वा ॥

(७०) अश्नुते व्याप्नोतीत्यक्षरम् । ब्रह्म वर्णो मोक्ष उदकं वा ॥

(७१) वसन्त्यस्मिन्निति वत्सरः । वर्षो वा ॥

(७२) चित्वादन्तोदात्तस्वरः । सम्यग्वसन्त्यत्र स संवत्सरः ॥

(७३) यः करोति क्रियते वा स कृसरः । तिलौदनं मिश्रं वा । धूनोतीति धूसरः । ईषत्पाण्डुरो वा । माद्यतीति मत्सरः । असह्यपरसंपत्तिर्जनः कृपणः क्रुद्धो वा । मत्सरा मक्षिका वा ॥

(७४) पतन्ति गच्छन्ति यत्र स पत्सलः । पन्था वा ॥

For Private And Personal Use Only

तन्यृषिभ्यां क्सरन् ॥ ७५ ॥ तसरः । ऋक्षरः ॥ ७५ ॥

पीयुकणिभ्यां कालन् ह्रस्वं सम्प्रसारणञ्च ॥७६॥ पियालः । कुणालः ॥ ७६ ॥

कठिकुषिभ्यां काकुः ॥ ७७ ॥ कठाकुः । कुषाकुः ॥ ७७ ॥

सर्त्तेर्दुक् च ॥ ७८ ॥ सृदाकुः ॥ ७८ ॥

वृतेर्वृद्धिश्च ॥ ७९ ॥ वार्त्ताकुः । वार्त्ताकम् ॥ ७९ ॥

पदेर्नित्सम्प्रसारणमलोपश्च ॥ ८० ॥ पृदाकुः ॥ ८० ॥

सृयुवचिभ्योऽन्युजागूजक्नुचः ॥ ८१ ॥ सरण्युः । यवागूः । वचक्नुः ॥ ८१ ॥

आनकः शीङ्भियः ॥ ८२ ॥ शयानकः । भयानकः ॥ ८२ ॥

---

(७५) तनोतीति तसरः । सूत्रवेष्टनो वा । ऋषति प्राप्नोति वा स ऋक्षरः । ऋत्विग्वा ॥

(७६) पीयुः सौत्रो धातुः पीयति तर्पयतीति पियालः। वृक्षभेदो वा। चिरोंजी इति प्रसिद्धः। क्वणति शब्दं करोतीति कुणालः। देशभेदो वा। बाहुलकात्—भजतीति भगालम् । नरमस्तकं वा । कुत्वं च ॥

(७७)कठतीति कठाकुः पक्षी वा। कुषति निष्कर्षतीति कुषाकुः। अग्निः सूर्यो वा॥

(७८) सरतीति सृदाकुः।वायुर्वा। सरन्त्यापोऽस्यामिति सृदाकुर्नदी ॥

(७९) वर्त्ततेऽसौ वार्त्ताकुः। हिंगुली। वृन्ताक इति प्रसिद्धम्। बाहुलकादुकारस्य अ, ई भवतः । वार्त्ताकम् । वार्त्ताकी वा ॥

(८०) पर्दते कुत्सितं शब्दं करोतीति पृदाकुः । व्याघ्रः सर्पो वा ॥

(८१) सरतीति सरण्युः । मेघो वायुर्वा । यौति मिश्रयतीति यवागूः । दुग्धे पक्वयवचूर्णं वा । वक्तीति वचक्नुः वाचालः प्राज्ञो वा ॥

(८२)शेतेऽसौ शयानकः।अजगरो वा। बिभेत्यस्मादिति भयानको भयप्रदः॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आणको लूधूशिङ्घिधाञ्भ्यः ॥ ८३ ॥ लवाणकः । धवाणकः । शिङ्घाणकः । धाणकः ॥ ८३ ॥

उल्मुकदर्विहोमिनः ॥ ८४ ॥

ह्रियः कुक् रश्च लो वा ॥८५॥ ह्रीकुः । ह्लीकुः ॥ ८५ ॥

हसिमृग्रिण्वामिदमिलूपूधूर्विभ्यस्तन् ॥८६॥ हस्तः । मर्त्तः । गर्त्तः । एतः । वातः । अन्तः । दन्तः । लोतः । पोतः । धूर्त्तः ॥ ८६ ॥

(८३) लुनाति येन तल्लवाणकम् । दात्रं वा । धूनोतीति धवाणकः । वायुर्वा । शिङ्घति समन्ताज्जिघ्रतीति शिङ्घाणकः । श्लेष्मा वा । बाहुलकात्—ककारलोपे शिङ्घाणम् । काचपात्रं लोहनासिकयोर्मलं वा । दधाति धीयते वा स धाणकः । व्यवहारयोग्यद्रव्यभागो वा ॥

(८४) ओषति दहतीत्युल्मुकम् । ज्वलदङ्गारो वा । मुकप्रत्ययो धातोः षकारस्य लत्वम् । दृणाति विदारयति येन स दर्विः । परिवेषणपात्रं वा । विन् प्रत्ययः । जुहोतीति होमी । यजमानो वा । अत्र मिन्प्रत्ययः ॥

(८५) जिह्रेति लज्जां करोतीति ह्रीकुर्लज्जावान् । ह्लीकुः । जतुत्रपुणी लाक्षादिर्वा ॥

(८६) हसतीति हस्तः । नक्षत्रं करो वा । हस्तोऽस्यास्तीति हस्ती । म्रियतेऽसौ मर्त्तः । मनुष्यो वा । मर्त्त एव मर्त्यः स्वार्थे यत् । गिरति निगलति स गर्त्तः । अवटः पतनस्थानं वा । एति प्राप्नोति यं स एतः । विचित्रवर्णो वा । स्त्रियां, एनी एता । वातीति वातः । वायुर्व्याधिर्वा । अमति गच्छतीति, अन्तः । नाशः समीपं तत्त्वस्वरूपं मनोहरं वा । दाम्यत्युपशाम्यति यो येन वा स दन्तः । दशनो वा । शोभना दन्ता यस्याः सा सुदती युवतिः । दन्तावलो दन्तुरो वा हस्ती । लुनातीति लोतः । अश्रुश्चिह्नं वा । पुनातीति पोतः । बालो वहित्रो वा । धूर्वतीति धूर्त्तः । शठो लवणं धत्तूरं वा । बाहुलकात्—तौसति शब्दयतीति तूस्तम् । पापं जटा वा । तूस्तं करोति तूस्तयति । छ्यति छिनत्तीति छातः । दुर्बलो वा । अभितो म्लायतीति, अभिम्लातः । हर्षक्षीणो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नञ्याप इट् च ॥ ८७ ॥ नापितः ॥ ८७ ॥
तनिमृङ्भ्यां किच्च ॥ ८८ ॥ ततम् । मृतम् ॥ ८८ ॥
अञ्चिघृसिभ्यः क्तः ॥८९॥ अक्तम् । घृतम् । सितम् ॥८९॥
दुतनिभ्यां दीर्घश्च ॥ ९० ॥ दूतः तातः ॥ ९० ॥
जेर्मूट् चोदात्तः ॥ ९१ जीमूतः ॥ ९१ ॥
लोष्टपलितौ ॥ ९२ ॥

(८७) नाप्नोति सत्कर्माणीति नापितः । केशच्छेदको वा ॥

(८८) तनोतीति ततम् । वीणादिकं वाद्यं वा । म्रियते येन तन्मृतम् । याचितं भैक्ष्यं वा ॥

(८९) यदनक्ति प्रकटीकरोति तदक्तम् । व्याघ्रः परिमितं वा । जिघर्ति सञ्चलति दीप्यते वा तत्, घृतम् । उदकं सर्पिः प्रदीप्तं वा । सिनोति बध्नातीति सितम् । शुक्लं वा । बहुलवचनात्—हूर्च्छति कुटिलं भवतीति मुहूर्तम् । घटिकाद्वयकालो वा । धातोर्मुडागमो रल्लोप इति लोपः । ऋच्छत्यात्मानं प्राप्नोतीति ऋतम् । यथार्थं वा । वसति यत्रेति वस्तम् । स्थानं वा ॥

(९०) दवति गच्छति दुनोत्युपतपति वा स दूतः । बहुकार्यसाधको राजभृत्यो वा । स्त्रियां दूती । तनोति कार्याणीति तातः । पिता वा । बाहुलकात्—स्यति कर्मसमाप्तिं करोतीति सीता येन हलेन कृता रेखा स्त्रीविशेषो वा ॥

(९१) धातोर्दीर्घः प्रत्ययस्य मूडुदात्तत्वं च । यो जयति येन वा । स जीमूतः । मेघः पर्वतो वा ॥

(९२) लोष्टते सङ्घातो भवतीति लोष्टम् । मृत्पिण्डो वा । पल्यते प्राप्यते तत् पलितम् । वृद्धावस्थया केशादीनां शुक्लत्वं वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हृश्याभ्यामितन् ॥ ९३ ॥ हरितः । श्येतः ॥ ९३ ॥

रुहेरश्च लो वा ॥ ९४ ॥ रोहितः । लोहितम् ॥ ९४ ॥

पिशेः किच्च ॥ ९५ ॥ पिशितम् ॥ ९५ ॥

श्रुदक्षिस्पृहिगृहिभ्य आय्यः ॥ ९६ ॥ श्रवाय्यः । दक्षाय्यः । स्पृहयाय्यः । गृहयाय्यः ॥ ९६ ॥

दधातेर्हित्वमित्वं षुक् च ॥ ९७ ॥ दधिषाय्यः ॥ ९७ ॥

वृञ एण्यः ॥ ९८ ॥ वरेण्यः ॥ ९८ ॥

स्तुवः केय्यश्छन्दसि ॥ ९९ ॥ स्तुवेय्यम् ॥ ९९ ॥

राजेरन्यः ॥ १०० ॥ राजन्यः ॥ १०० ॥

(९३) हरतीति हरितः । वर्णभेदो वा । श्यायति गच्छतीति श्येतः । श्यामवर्णो वा । स्त्रियां हरिणी । हरिता । श्येनी श्येता ॥

(९४) रोहति प्रादुर्भवतीति रोहितः । मृगमत्स्ययोर्भेदो रोहितं रुधिरं वा । लोहितोऽङ्गारको रुधिरम् रक्तवर्णो वा ॥

(९५) पिश्यते ऽवयवरूपं क्रियते तत् पिशितं मांसं वा ॥

(९६) श्रावयतीति श्रवाय्यः । दानपशुर्वा । दक्षयति वर्द्धतेऽसौ दक्षाय्यः। गृध्रो वा । स्पृहयतीति स्पृहयाय्यः । अभिप्रसुनेत्रं वा । गर्हयति पदार्थान् गृह्णातीति गृहयाय्यः गृहस्वामी वा । आय्यप्रत्यये णेरयादेशः ॥

(९७) दधिस्यति समापयतीति दधिषाय्यो घृतम् । निपातनात् षत्वम् ॥

(९८) व्रियते स्वीक्रियतेऽसौ वरेण्यः । श्रेष्ठो वा ॥

(९९) स्तूयतेऽसौ स्तुवेय्यः पुरन्दरो वा । कसेय्य इति पाठान्तरं तदा स्तुषेय्यः ॥

(१००) राजते दीप्यतेऽसौ राजन्यः । अग्निर्वा । क्षत्रियजातौ तु राज्ञोऽपत्यं राजन्यः । तत्रान्त्यस्वरितः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शॄरम्योश्च ॥ १०१ ॥ शरण्यम्। रमण्यम् ॥ १०१ ॥

अर्त्तेर्निश्च ॥ १०२ ॥ अरण्यम् ॥ १०२ ॥

पर्जन्यः ॥ १०३ ॥

वदेरान्यः ॥ १०४ ॥ वदान्यः ॥ १०४ ॥

अमिनक्षियजिबधिपतिभ्योऽत्रन् ॥१०५॥ अमत्रम् । नक्षत्रम् । यजत्रम् । बधत्रम् । पतत्रम् ॥ १०५ ॥

गडेरादेश्च कः ॥ १०६ ॥ गडत्रम् । कलत्रम् ॥ १०६ ॥

वृञश्चित् ॥ १०७ ॥ वरत्रा ॥ १०७ ॥

(१०१) शृणाति हिनस्तीति शरण्यम् । अज्ञानं वा । रमतेऽस्मिंस्तद्रमण्यम् । गृहं वा ॥

(१०२) ऋच्छन्ति गृहाद् गच्छन्ति यत्र तदरण्यम् । वनं वा । महदरण्यमरण्यानी ॥

(१०३) पर्षति सिञ्चतीति पर्जन्यः । मेघः समर्थो वा । निपातनात्षकारस्य जकारः ॥

(१०४) उद्यते वदतीति वा स वदान्यः । वाग्मी त्यागी वा ॥

(१०५) अमति प्राप्नोति यत्र तत् अमत्रम् पात्रं वा । नक्षति गच्छतीति नक्षत्रम् । तारका वा । इज्यते यजति वा तद् यजत्रम् । अग्निहोत्रं होता वा । बधीति हनः स्थाने बधादेशो निपात्यते । हन्ति येन तद् बधत्रम् । आयुधं वा । पतति गच्छति येन तत्पतत्रम् वाहनं लोमानि वा ॥

(१०६) गडति सिञ्चतीति गडत्रम् । बाहुलकाड्डस्य लः । कलत्रम् । कटिभागो भार्या वा ॥

(१०७) वृणोत्युदकादिकं यया या वा सा वरत्रा चर्मरज्जुर्वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुविदेः कत्रन् ॥ १०८ ॥ सुविदत्रम् ॥ १०८ ॥

कृतेर्नुम् च ॥ १०९ ॥ कृन्तत्रम् ॥ १०९ ॥

भृमृदृशियजिपर्विपच्यमितमिनमिहर्यिभ्योऽतच् ॥ ११० ॥

भरतः । मरतः । दर्शतः । यजतः । पर्वतः । पचतः । अमतः । तमतः । नमतः । हर्यतः ॥ ११० ॥

पृषिरञ्जिभ्यां कित् ॥ १११ ॥ पृषतः । रजतम् ॥ १११ ॥

खलतिः ॥ ११२ ॥

(१०८) सुष्ठु विद्यते तत् सुविदत्रम् कुटुम्बं वा ॥

(१०९) कृन्तति छिनत्ति येन तत्कृन्तत्रम् । लाङ्गलं वा ॥

(११०) भरति पुष्णातीति भरतः । राजभेदो नटो रामानुजो वा । म्रियतेऽसौ मरतः मृत्युर्वा । पश्यन्ति येन स दर्शतः । चन्द्रः सूर्यो वा । यजतीति यजतः । ऋत्विग्वा । पर्वति पूर्णो भवतीति पर्वतः । पर्वविद्यतेऽस्मिन्निति मत्वर्थीयस्तकारप्रत्ययो वा । गिरिर्वा । पचति येन स पचतः । अग्निर्वा । अमति गच्छतीति अमतः । रेणुर्वा । ताम्यति काङ्क्षतीति तमतः । तृष्णापरो वा । नमतीति नमतः नम्रो वा । हर्यति गच्छतीति हर्यतः । अश्वो वा । बाहुलकात्—मलते स्वरूपं धरतीति मालती । उपधादीर्घो गौरादित्वान् ङीष् ॥

(१११) पर्षति सिञ्चतीति पृषतः । बिन्दुर्मृगो वा । रजति प्रियं भवतीति रजतम् । रूप्यं शुक्लं वा ॥

(११२) स्खलति सञ्चलतीति खलतिः । निष्केशशिराः पुरुषो वा । धातोः सलोपः प्रत्ययान्तस्येत्वं निपातः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शीङ्शपिरुगमिवञ्चिजीविप्राणिभ्योऽथः ॥११३॥ शयथः । शपथः । रवथः । गमथः । वञ्चथः । जीवथः । प्राणथः । दरथः शमथः । दमथः ॥ ११३ ॥

भृञश्चित् ॥ ११४ ॥ भरथः ॥ ११४ ॥

रुविदिभ्यां ङित् ॥ ११५ ॥ रुवथः । विदथः ॥ ११५ ॥

उपसर्गे वसेः ॥ ११६ ॥ आवसथः । संवसथः ॥११६॥

अत्यविचमितमिनमिरभिलभिनभितपिपतिपनिपणिमहिभ्योऽसच् ॥ ११७ ॥ अतसः । अवसः । चमसः । तमसः ।

(११३) शेतेऽसौ शयथः । अजगरो वा । शप्यत आक्रुश्यत इति शपथः । निश्चयकरणं वा । रौतीति रवथः कोकिलो वा । गच्छतीति गमथः पथिको वा । वञ्चति प्रलम्भयतीति वञ्चथो धूर्तः । अस्य स्थाने वन्दीति पाठान्तरे वन्दथः स्तोता स्तुत्यो वा । जीवतीति जीवथ आयुष्मान् । प्राणितीति प्राणथः । बलवान् वा । बाहुलकात्—दृणातीति दरथः । दिक्षु प्रसरणं गर्त्तो वा । शाम्यतीति शमथः । शान्तिः । दाम्यतीति दमथः । दमो वा ॥

(११४) बिभर्तीति भरथः । लोकपालो राजा वा ॥

(११५) रौतीति रवथः । श्वा वा । वेत्तीति विदथः । योगी वा ॥

(११६) समन्ताद्वसति यत्र स आवसथः । गृहं वा । सम्यग्वसन्ति यत्र स संवसथः । ग्रामो वा ॥

(११७) अतति निरन्तरं गच्छतीत्यतसः । वायुर्वा । स्त्रियामतसी । अवति रक्षादिकं करोतीत्यवसः । राजा वा । चमति भक्षयति येन स चमसः । गौरादित्वाच्चमसी । ताम्यति काङ्क्षतीति तमसः । ध्वान्तं वा ।

For Private And Personal Use Only

नमसः । रभसः । लभसः । नभसः । तपसः । पतसः । पनसः । पणसः । महसम् ॥ ११७ ॥

वेञस्तुट् च ॥ ११८ ॥ वेतसः ॥ ११८ ॥

वहियुभ्यां णित् ॥ ११९ ॥ वाहसः । यावसः ॥११९॥

वयश्च ॥ १२० ॥ वायसः ॥ १२० ॥

दिवः कित् ॥ १२१ ॥ दिवसम् ॥ १२१ ॥

कॄशॄशलिकलिगर्दिभ्योऽभच् ॥१२२॥ करभः । शरभः । शलभः । गर्दभः ॥ १२२ ॥

नमतीति नमसः । अनुकूलं वा । रभतेऽसौ रभसः । वेगो हर्षो वा । लभतेऽसौ लभसः । अश्वबन्धनं वा । नभते हिनस्तीति नभसः । आकाशं वा । तपति तापहेतुर्भवतीति तपसः । चन्द्रमा वा । पततीति पतसः । पक्षी वा । पनायति स्तौतीति पनसः । कण्टकिफलं वा । मह्यतीति महसम् । ज्ञानं वा । बाहुलकात्—अम्यते प्राप्यते तत्तामरसम् । कमलं वा । प्रत्ययस्य णित्वाद् वृद्धिर्धातोश्च तुट् । स्यति कर्म समापयतीति साध्वसम् । पश्चाद् ज्ञानं वा । धातोर्धुक् । कङ्कते चंचलं भवतीति कीकसम् । अस्थि वा । धातोः कीकादेशः । तरतीति तरसम् । मांसं वा ॥

(११८) वयति तन्तून् संतनोतीति वेतसः । वृक्षभेदो वा ॥

(११९) वहतीति वाहसः । अजगरो वा । यौति मिश्रयत्यमिश्रयति वा स यावसः । तृणसन्ततिर्वा ॥

(१२०) वयते गच्छतीति वायसः काको वा ॥

(१२१) दीव्यति प्रकाशते सूर्यो यत्र तद्दिवसम् । दिवसो वा । अर्द्धादिपाठाद् द्विलिङ्गः ॥

(१२२) किरति विक्षिपतीति करभः । हस्तस्य बहिर्भागो बालो वा । शृणातीति शरभः । आरण्यानां मध्ये हिंसकविशेषपशुजातिः । शलते गच्छतीति शलभः । पतङ्गो वा । कलते संख्यां करोति स कलभः । करिशावको वा । गर्दयति शब्दं करोतीति गर्दभः । खरो वा ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऋषिवृषिभ्यां कित् ॥ १२३ ॥ ऋषभः । वृषभः ॥ १२३ ॥

रुषेर्निल्लुष् च ॥ १२४ ॥ लुषभः ॥ १२४ ॥

रासिबल्लिभ्यां च ॥ १२५ ॥ रासभः । बल्लभः ॥ १२५ ॥

जृविशिभ्यां झच् ॥ १२६ ॥ जरन्तः । वेशन्तः ॥ १२६ ॥

रुहिनन्दिजीविप्राणिभ्यः षिदाशिषि ॥ १२७ ॥ रोहन्तः । नन्दन्तः । जीवन्तः । प्राणन्तः । रोहन्ती ॥ १२७ ॥

तॄभूवहिवसिभासिसाधिगडिमण्डिजिनन्दिभ्यश्च ॥ १२८ ॥ तरन्तः । भवन्तः । वहन्तः । वसन्तः । भासन्तः । साधन्तः ।

(१२३) ऋषति गच्छतीति ऋषभः । वर्षतीति वृषभः । श्रेष्ठपर्यायो बलीवर्दो वा ॥

(१२४) रोषति हिनस्तीति लुषभः । मत्तहस्ती वा ॥

(१२५) रासति शब्दयतीति रासभः । खरो वा । बल्लते संवृणोतीति बल्लभः प्रियो वा ॥

(१२६) प्रत्ययादिझकारस्य झोऽन्त इत्यन्तादेशः । जीर्यति स जरन्तः । महिषो वा । विशति प्रवेशं करोतीति वेशन्तः अल्पजलाशयो वा । बाहुलकात्—अर्हति पूज्यो भवतीति, अर्हन्तः ॥

(१२७) रोहतीति रोहन्तः । वृक्षभेदो वा । नन्दति समृद्धियुक्तो भवतीति नन्दन्तः । पुत्रो वा । यो जीवति स जीवन्तः । औषधं वा । प्राणिति श्वासप्रश्वासान् प्रवर्तयति स प्राणन्तः । वायुर्वा । षित्वात् स्त्रियां ङीष् । प्राणन्ती । रोहन्ती । नन्दन्ती । जीवन्ती ॥

(१२८) झच् । यस्तरति येन यत्र वा स तरन्तः समुद्रस्तरन्ती नौका वा। यो भवतीति यत्र वा स भवन्तः । कालो वा । वहति कार्याणि प्रापयतीति वहन्तः वायुर्वा। यो वसति यत्र वा स वसन्तः ऋतुभेदो वा । भासयते दीप्यतेऽसौ भासन्तः । सूर्यो वा । साध्नोति कार्याणीति साधन्तः । भिक्षुको वा ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गण्डयन्तः । मण्डयन्तः । जयन्तः । नन्दयन्तः ॥ १२८ ॥

हन्तेर्मुट् हि च ॥ १२९ ॥ हेमन्तः ॥ १२९ ॥

भन्देर्नलोपश्च ॥ १३० ॥ भदन्तः । १३० ॥

ऋच्छेररः ॥ १३१ ॥ ऋच्छरः । १३१ ॥

अर्त्तिकमिभ्रमिचमिदेविवासिभ्यश्चित् ॥ १३२ ॥ अररः । कमरः । भ्रमरः । चमरः । देवरः । वासरः । १३२ ॥

गण्डयति सेचयतीति गण्डयन्तः । मेघो वा । मण्डयति शोभितं करोतीति मण्डयन्तः । भूषणं वा । जयतीति जयन्तो जयशीलः । स्त्रियां जयन्ती पुष्पभेदो वा । विजयन्तः कश्चिद्राजविशेषस्तस्य प्रासादो वैजयन्तः । वैजयन्ती पताका । नन्दन्ति येन स नन्दन्तः । आनन्दकरो वा । अतः पूर्वसूत्रेऽपि नन्दिः पठितः । अत्र पुनर्ग्रहणमनाशिष्यपि यथा स्यात् ॥

(१२९) यो हन्ति शीतेन स हेमन्तः । ऋतुभेदो वा ॥

(१३०) भन्दते कल्याणं करोतीति भदन्तः प्रव्रजितो वा ॥

(१३१) ऋच्छति गच्छति स ऋच्छरः । ऋच्छरा वेश्या वा । बाहुलकात्—वदतीति वदरम् । वदर्य्याः फलं वा । कन्दति वैकल्यं करोतीति कदरः श्वेतखदिरो वा । कपिलकादित्वाल्लत्वे गौरादित्वान् ङीष् कदली । कदरी । वदरी । मन्दरकन्दरशीकरकोटरशवरसमरबर्बरबर्करकर्परपिञ्जराम्बराडम्बरजर्जरकर्करनखरतोमरप्रभृतयोऽपि—अरप्रत्ययान्ता बहुलवचनादेव साधनीयाः ॥

(१३२) ऋच्छति गच्छति यतः स अररः । कपाटो वा । कामयतेऽसौ कमरः । कामुको वा । भ्राम्यतीति भ्रमरः षट्पदः । कामुको वा । चमति भक्षयतीति चमरः । मृगभेदो वा । गौरादित्वात् स्त्रियां ङीष् । चमरी सुरा गौः । चमर्य्या अयं चामरो बालसमूहः । दीव्यति क्रीडादिकं करोतीति देवरः । विधवाया द्वितीयः पतिः पत्युः कनिष्ठभ्राता । वासयतीति वासरः मङ्गलादिवारो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुवः क्ररन् ॥ १३३ ॥ कुररः । १३३ ॥

अङ्गिमदिमन्दिभ्य आरन् ॥ १३४ ॥ अङ्गारः । मदारः । मन्दारः ॥ १३४ ॥

गडेः कड च ॥ १३५ ॥ कडारः । १३५ ॥

शृङ्गारभृङ्गारौ ॥ १३६ ॥

कञ्जिमृजिभ्यां चित् ॥ १३७ ॥ कञ्जारः । मार्जारः । १३७ ॥

कमेः किदुच्चोपधायाः ॥ १३८ ॥ कुमारः ॥ १३८ ॥

(१३३) कौति शब्दयतीति कुररः । पक्षिभेदो वा ।

(१३४) अङ्गति गच्छति स अङ्गारः । निर्धूमोऽग्निर्भूमिविकारो वा । माद्यति मतो भवतीति मदारः । वराहो वा । मन्दते स्तौतीति मन्दारः । निम्बतरुरर्कवृक्षो वा । बाहुलकान्मन्दधातोरारुप्रत्ययोऽपि भवति । मन्दतेऽसौ मन्दारुः । निम्बार्कौ वा ॥

(१३५) गडति सिञ्चतीति कडारः । पीतवर्णो वा ॥

(१३६) शृणाति हिनस्तीति शृङ्गारः । हस्तिशोभा नाट्यरसो दम्पत्योरन्योऽन्यं सम्भोगस्पृहा वा । अत्र धातोर्नुम् ह्रस्वादेशश्च । बिभर्ति पुष्यतीति भृङ्गारः । सुवर्णपात्रविशेषो वा । स्त्रियां भृङ्गारी कीटजातिभेदो वा । भोंगर इति प्रसिद्धः ॥

(१३७) कञ्जति रौतीति कञ्जारः । मयूरो व्यञ्जनं वा । मार्ष्टि शुन्धतीति मार्जारः । बिडालो वा । स्त्रियां मार्जारी ॥

(१३८) चिदनुवर्तते । कामते भोगानिति कुमारः । शिशुर्युवराजो वा । कुमारक्रीडायामित्यस्मादपि पचाद्यचि कृते कुमारशब्दो व्युत्पद्यते तद्रूपायान्तरमर्थभेदश्च ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तुषारादयश्च ॥१३९॥ तुषारः । कासारः । सहारः ॥१३९॥

दीङो नुट् च ॥ १४० ॥ दीनारः ॥ १४० ॥

सर्त्तेरपः षुक् च ॥ १४१ ॥ सर्षपः ॥ १४१ ॥

उषिकुटिदलिकचिखजिभ्यः कपन् ॥१४२॥ उषपः । कुटपः । दलपः । कचपम् । खजपम् ॥ १४२ ॥

कणेः सम्प्रसारणञ्च ॥ १४३ ॥ कुणपम् ॥ १४३ ॥

कपश्चाक्रवर्मणस्य ॥ १४४ ॥

विटपविष्टपविशिपोलपाः ॥ १४५ ॥

(१३९) यस्तुष्यति येन वा तत्तुषारम् । हिमं वा । कासते शब्दयति निन्दति वा स कासारः । सरसी वा । सहतीति सहारः । आम्रभेदो वा । तर्कयति भाषतेऽसौ तर्कारः । स्त्रियां गौरादित्वात् तर्कारी । जयन्ती विशेषलता वा ॥

(१४०) दीयते चर्यति येन वा स दीनारः । सुवर्णाभरणं वा ॥

(१४१) सरति गच्छति स सर्षपः । कटुस्नेहवान् वा ॥

(१४२) ओषति दहति स उषपः । अग्निः सूर्यो वा । कुटतीति कुटपः । मानभाण्डं वा । दालयति विदारयतीति दलपः । प्रहारो वा । कचते बध्नातीति कचपम् । शाकपात्रं वा । खजति मथ्नाति मथ्यत इति खजपम् । घृतं वा ॥

(१४३) कणति शब्दं करोतीति कुणपः । शवो मृद्भेदो वा ॥

(१४४) चाक्रवर्मणस्य मते कपे सति प्रत्ययस्यादिरुदात्तः । अन्यमते सङ्घातस्याद्युदात्तत्वम् ॥

(१४५) कपप्रत्ययान्ता निपाताः वेटति शब्दयति वायुनेति विटपः । शाखाविस्तारो वा । विशन्ति यत्रेति विष्टपम् । भुवनं वा । त्रिविष्टपः । सुखविशेषभोगो वा । धातोर्वकारस्य पत्वम् । प्रत्ययस्य तुट् च । त्रिविष्टप इति वा । विशन्ति यत्रेति विशिपम् । मन्दिरं वा । प्रत्ययादेरित्वम् । बलते संवृणोतीत्युलपम् । कोमलतृणं वा । धात्वादेः सम्प्रसारणम् ॥

For Private And Personal Use Only

वृतेस्तिकन् ॥ १४६ ॥ वर्त्तिका ॥ १४६ ॥

कृतिभिदिलतिभ्यः कित् ॥ १४७ ॥ कृत्तिका । भित्तिका । लत्तिका ॥ १४७ ॥

इष्यशिभ्यां तकन् ॥ १४८ ॥ इष्टका । अष्टका ॥ १४८ ॥

इणस्तशन्तशसुनौ ॥ १४९ ॥ एतशः । एतशाः ॥ १४९ ॥

विपतिभ्यां तनन् ॥ १५० ॥ वेतनम् । पत्तनम् ॥ १५० ॥

दृदलिभ्यां भः ॥ १५१ ॥ दर्भः । दल्भः ॥ १५१ ॥

---

(१४६) वर्त्ततेऽसौ वर्त्तिका पक्षिभेदो वा । यस्तु वृतु धातोर्ण्वुल्-प्रत्यये वर्त्तका शब्दस्तत्र वार्त्तिकेनेत्वनिषेधाद्वर्त्तका इत्येव । तच्चोणादीनामव्युत्पन्नत्वाद्वर्त्तका व्युत्पन्न इति भेदः ॥

(१४७) कृन्ततीति कृत्तिका । नक्षत्रं वा । भिनत्तीति भित्तिका भित्तिर्वा । लततीति लत्तिका गोधा वा ॥

(१४८) इष्यतेऽसाविष्टका । अश्नुते सा अष्टका । वैदिककर्मविशेषो वा । बाहुलकात्—मस्यति परिणमतीति मस्तकम् । शिरो वा । दधातीति धातकम् । स्त्रियां धातकी पुष्पभेदः ॥

(१४९) एति प्राप्नोतीति एतशः । एतशाः । एतशौ । अश्वो ब्राह्मणो वा । एकोऽदन्तोऽपरः सान्तः ॥

(१५०) वेत्ति प्राप्नोति खादति वा तद्वेतनम् । भृतिर्वा । वेतनेन जीवति वैतनिकः कर्मकरः । पतति गच्छतीति पत्तनम् । नगरं वा ॥

(१५१) दृणाति विदारयतीति दर्भः । कुशो वा । दलते विशीर्णो भवतीति दल्भः । ऋषिश्चक्रं वा ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्त्तिगृभ्यां भनन् ॥ १५२ ॥ अर्भः । गर्भः ॥ १५२ ॥

इणः कित् ॥ १५३ ॥ इभाः ॥ १५३ ॥

असिसञ्जिभ्यां क्थिन् ॥ १५४ ॥ अस्थि । सक्थि ॥ १५४ ॥

प्लुषिकुषिशुषिभ्यः क्सिः ॥ १५५ ॥ प्लुक्षिः । कुक्षिः । शुक्षिः ॥ १५५ ॥

अशेर्नित् ॥ १५६ ॥ अक्षिः ॥ १५६ ॥

इषेः क्सुः ॥ १५७ ॥ इक्षुः ॥ १५७ ॥

अवितॄस्तॄतन्त्रिभ्य ईः ॥ १५८ ॥ अवीः । तरीः । स्तरीः । तन्त्रीः ॥ १५८ ॥

---

(१५२) इयर्त्ति गच्छतीत्यर्भः । शिशुर्वा । अल्पोऽर्भोऽर्भकः । गिरति गृणात्युपदिशतीति गर्भः । जठरं तत्स्थो वा । गर्भादप्राणिनीति तारकादित्वादितच् । गर्भिताः शालयः । प्राणिनि तु गर्भिणी ॥

(१५३) एतीति इभः । हस्ती वा ॥

(१५४) अस्यति प्रक्षिपति येन तत् अस्थि । कीकसं शरीरान्तरवयवो वा । सजतीति सक्थि । ऊरुदेशो वा ॥

(१५५) प्लोषति दहतीति प्लुक्षिः । अग्निर्वा । कुष्णाति निष्कृषतीति कुक्षिः । जठरं गर्भाशयो वा । शोषयतीति शुक्षिः । वायुर्वा । अन्तान्तर्गतो णिच् तस्य च पर्णशुड्त् णिलुक् ॥

(१५६) अश्नुते व्याप्नोति विषयान् येन तदक्षि । नेत्रं वा ॥

(१५७) इष्यते स इक्षुः । मधु तृणं वा ॥

(१५८) अवतीति अवीः । रजस्वला स्त्री वा । तरति यया सा तरीः । नौका वस्त्रादिरक्षकं भाण्डं वा । स्तृणोत्याच्छादयतीति स्तरीः । धूमो वा । तन्त्रयति कुटुम्बं धरतीति तन्त्रीः । वीणा वा । णिलोपः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यापोः किद् द्वे च ॥ १५९ ॥ ययीः । पपीः ॥ १५९ ॥
लक्षेर्मुट् च ॥ १६० ॥ लक्ष्मीः ॥ १६० ॥

इत्युणादिषु तृतीयः पादः ॥

(१५९) याति प्रापयति स ययीः । अश्वो वा । पिबति पाति रक्षतीति वा स पपीः । सूर्य्यश्चन्द्रो वा ॥

(१६०) लक्षयति पश्यत्यङ्कयति वा सा लक्ष्मीः । विभूतिर्वा । लक्ष्मीरस्यास्तीति लक्ष्मणः । लक्ष्म्या अच्चेति पामादिपाठान्मत्वर्थीयो नः ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे तृतीयः पादः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वातप्रमीः ॥ १ ॥

ऋतन्यञ्जिवन्यञ्ज्यर्पिमद्यत्यङ्गिकुयुकृशिभ्यः क्लिन्यतुजलिजिष्णुजिष्ठजिसन्स्यनिथिन्नुल्पसासानुकः ॥ २ ॥ रत्निः । तन्यतुः । अञ्जलिः । वनिष्णुः । अञ्जिष्ठः । अर्पिसः । मत्स्यः । अतिथिः । अङ्गुलिः । कवसः । यवासः । कृशानुः ॥ २ ॥

(१) वात इव प्रमिणोति प्रक्षिपतीति वातप्रमीः । अतिशीघ्रगामी हरिणविशेषो वा । पुंल्लिङ्ग एवायं शब्दः । वातप्रमीन् मृगान् । ङी तु वातप्रमी । अमि वातप्रमीम् । बाहुलकात्—उश्यते काम्यतेऽसौ उशी वाञ्छा तत्कुशला नरा अस्मिन् सन्तीति उशीनरो देशः । अत्र बहुलवचनादेव सम्प्रसारणम् ॥

(२) एभ्यो द्वादशधातुभ्यः क्लिनादयो द्वादश प्रयत्या यथासंख्यं भवन्ति । ऋच्छति गच्छतीति रत्निः । बद्धमुष्टिहस्तो वा । प्रसृताङ्गुलिररत्निः । तनु—यतुच् । तनोति विस्तृणोतीति तन्यतुः । वायूरात्रिर्वा । अञ्जू—अलिच् । अनक्ति व्यक्तं करोतीति, अञ्जलिः । संयुतौ करौ वा । वनु—इष्णुच् । वनोति याचतेऽसौ वनिष्णुः । अपानवायुर्वा । अञ्जू—इष्ठच् । अनक्ति प्रकटयति पदार्थानिति, अञ्जिष्ठः । सूर्यो वा । अर्पि—इसन् । अर्पयतीति, अर्पिसः । अग्रमांसं वा । माद्यति हृष्यतीति मत्स्यः । मीनो वा । अत—इथिन् । अतति निरन्तरं गच्छति भ्रमतीत्यतिथिः । अकस्मादागतः सज्जनो वा । न विद्यते नियता तिथिरस्येति व्युत्पत्यनन्तरम् । स्त्रियां कृदिकारादक्तिन इति ङीष् । अतिथी स्त्री । अङ्गि—उलि । अङ्गति चेष्टतेऽनेन सोऽङ्गुलिः । करशाखा वा । कु—अस । कौति वा कवत इति कवसः । कण्टकजातिर्वा । अच इति पाठान्तरम् । तदा कवत इति कवचम् । यौति मिश्रयतीति यवासः । कण्डकवृक्षभेदो वा । कृषति तनूकरोतीति कृशानुः । अग्निर्वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शः करन् ॥ ३ ॥ शर्करा ॥ ३ ॥

पुषः कित् ॥ ४ ॥ पुष्करम् ॥ ४ ॥

कलँश्च ॥ ५ ॥ पुष्कलम् ॥ ५ ॥

गमेरिनिः ॥ ६ ॥ गमी ॥ ६ ॥

आङि णित् ॥ ७ ॥ आगामी ॥ ७ ॥

भुवश्च ॥ ८ ॥ भावी ॥ ८ ॥

प्रे स्थः ॥ ९ ॥ प्रस्थायी ॥ ९

परमे कित् ॥ १० ॥ परमेष्ठी ॥ १० ॥

मन्थः ॥ ११ ॥ मन्थाः । मन्थानौ ॥ ११ ॥

(३) शृणातीति शर्करा । खण्डविकारो मृद्विकारो वा ॥

(४) पुष्णातीति पुष्करम् । अन्तरिक्षं कमलमुदकं वा ॥

(५) पुष धातोः कलनपि । पुष्यतीति पुष्कलम् पूर्णं वा ॥

(६) गमिष्यतीति गमी पथिको वा । भविष्यति गम्यादय इति कालनियमः ॥

(७) णित्वाद् वृद्धिः आगमिष्यतीत्यागामी ॥

(८) इनिः णित् । भविष्यतीति भावी ॥

(९) इनिः णित् । णित्वाद्युक् । प्रस्थातुमिच्छतीति प्रस्थायी गन्तुमनाः ॥

(१०) परमे उत्तमे व्यवहारे तिष्ठतीति परमेष्ठी । सर्वेषां पितामह ईश्वरो वा । सप्तम्या अलुक् षत्वं च ॥

(११) इनिः कित् कित्त्वान्नलोपः । मन्थयति विलोडयतीति मन्थाः । मथिन् शब्दस्य सर्वनामस्थान आत्वम् । मन्थानौ । मन्थानः । दध्यादिमन्थनदण्डो वज्रो वायुर्वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पतः स्थ च ॥ १२ ॥ पन्थाः ॥ १२ ॥
खजेराकः ॥ १३ ॥ खजाकः ॥ १३ ॥
वलाकादयश्च ॥ १४ ॥ वलाका । शलाका । पताका ॥ १४ ॥
पिनाकादयश्च ॥ १५ ॥ पिनाकः । तडाकः ॥ १५ ॥

(१२) पतन्ति गच्छन्ति यत्र स पन्था मार्गः । पन्थानौ । पूर्ववदात्वम् । पथे गताविल्यस्माद्धातोः पचाद्यचि कृते पथः । पथौ । पथाः । इत्यदन्तोऽपि दृश्यते ॥

(१३) खजति मथ्नातीति खजाकः पक्षिः । खजाका दर्विर्वा । बहुलवचनात्मन्द्यन्ते स्तूयन्ते तानि मन्दाकानि स्रोतांसि वा । तान्यस्याः सन्तीति मन्दाकिनी । नदीभेदः ॥

(१४) वलते संवृणोत्यसौ वलाका । बकपंक्तिः कामिनी वलाको बकपक्षी वा । मन्यते जानाति सा मनाका । हस्तिनी वा । पुनातीति पवाका । यां शलन्ति गच्छन्तीति शलाका । अञ्जनयष्टिका वा । पटति गच्छतीति पटाकः । पक्षी वा । पत्यते ज्ञायतेऽसौ पताका ध्वजा वा ॥

(१५) पाति रक्षति पिनाकः । त्रिशूलं धातुर्वा । ताडयत्याहन्तीति तडाका प्रभा वा । बहुलवचनात्—आगप्रत्यये सति तडागः । इत्यपि सिद्धं भवति । भन्दतेऽसौ भदाकः । कल्याणम् । श्यायति प्राप्नोतीति श्यामाकः ब्रीहिभेदो वा । समा इति प्रसिद्धः । मुगागमो निपातनम् । न भाति प्रकाशत इति नभाकम् । मेघयुतमाकाशं वा । यं पिनष्टि सम्यक्चूर्णयति स पिण्याकः । तिलकल्को वा । धातोः षकारस्य धत्वं युगागमश्च । वर्त्तते येन स वार्त्ताको वार्त्ताकी वा । वनभण्टा इति प्रसिद्धा । धातोर्वृद्धिः । गुवति पुरीषमुत्सृजतीति गुवाकः । पूगीफलं वा । कुटादित्वाद् गुणाभावः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कषिदूषिभ्यामीकन् ॥ १६ ॥ कषीका । दूषीका ॥ १६ ॥

अनिहृषिभ्यां किच्च ॥ १७ ॥ अनीकम् । हृषीकम् ॥ १७ ॥

चङ्कणः कङ्कण च ॥ १८ ॥ कङ्कणीका ॥ १८ ॥

शॄपॄवृजां द्वे रुक् चाभ्यासस्य ॥ १९ ॥ शर्शरीकः ॥ पर्परीकः । वर्वरीकः ॥ १९ ॥

फर्फरीकादयश्च ॥ २० ॥ फर्फरीकम् । दर्दरीकम् । तिन्तिडीकः। चञ्चरीकः । मर्मरीकः । कर्करीकम् । पुण्डरीकः ॥२०॥

(१६) कषति हिनस्तीति कषीका । पक्षिजातिर्वा । दूषयतीति दूषीका नेत्रमलं वा ॥

(१७) अनिति जीवयतीत्यनीकम् । विरुद्धं सैन्यं वा । हृष्यति तुष्टो भवतीति येन तत् हृषीकम् । ज्ञानेन्द्रियं वा ॥

(१८) यङ्लुगन्तात्कणधातोरीकन् कंकणादेशश्च । पुनः पुनः कणति शब्दयतीति कङ्कणीका । वाद्यसाधनविशेषो वा । घरियार इति प्रसिद्धः । किङ्किणीका क्षुद्रघण्टिका । बहुलवचनात् सिद्धम् ॥

(१९) शृणाति हिनस्तीति शर्शरीको हिंसकः । पिपर्ति पालयतीति पर्परीकः सूर्यो वा । वृणोति स्वीकरोतीति वर्वरीकः । कुटिलकेशो जनो वा ॥

(२०) स्फुरति चेतनो भवतीति फर्फरीकम् । पत्रादिसहितः शाखाग्रन्थिर्वा । ईकन्प्रत्यये धातोः फर्फरादेशः । दृणातीति दर्दरीकम् । वादित्रं वा । करोति कार्याणि येन तत् कर्करीकम् । शरीरं वा । कर्करीका गलन्तिका । कलशी इति प्रसिद्धा । अत्रोभयत्र धातोर्द्वित्वमभ्यासस्य रुक् च । तिम्यत्यार्द्रीकरोतीति तिन्तिडीकः। वृक्षजातिर्वा । मकारस्य डकारोऽभ्यासस्य नुट् च । चरति गच्छति भक्षयति वा स चञ्चरीकः। भ्रमरो वा । अभ्यासस्य नुम् । म्रियतेऽसौ मर्मरीकः । हीनजनो वा । पुणति शुभकर्माचरतीति पुण्डरीकम् । श्वेताम्भोजं सितपत्रं भेषजं व्याघ्रोऽग्निर्वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ईषेः किद् ध्रस्वश्च ॥ २१ ॥ इषीका । २१ ॥

ऋजेश्च ॥ २२ ॥ ऋजीकः । २२ ॥

सर्त्तेर्नुम् च ॥ २३ ॥ सृणीका । २३ ॥

मृडः कीकच् कङ्कणौ ॥ २४ ॥ मृडीकः । मृडङ्कणः ॥ २४ ॥

अलीकादयश्च ॥२५॥ अलीकम् । व्यलीकम् । वलीकम् । २५ ॥

कृतृभ्यामीषन् ॥ २६ ॥ करीषः । तरीषः ॥ २६ ॥

(२१) कित्वात् गुणाभावः । ईषते गच्छतीति इषीका । मुञ्जादिशलाका वा ॥

(२२) कित् । अर्जति गच्छतीति ऋजीकः । उपहतो वा । कित्वाद् गुणनिषेधः ॥

(२३) सरति प्राप्नोतीति सृणीका । लाला वा । ष्ठीवनभेदः । लार इति प्रसिद्धम् ॥

(२४) मृडति सुखयतीतिमृडीकः । सुखदाता । मृडङ्कणः । बालो वा । बहुलवचनात् । कायति शब्दयतीति कङ्कणः । करभूषणं वा ॥

(२५) कीकन् प्रत्ययान्ता अमी निपात्यन्ते । अलति वारयतीत्यलीकम् । मिथ्या वा । विपूर्वाद् व्यलीकमप्रियं खेदो वा । वलते संवृणोत्यनेन तत् वलीकम् । गृहच्छादनसामग्री वा । अन्येपि, वलते संवृतो भवतीति वल्मीकम् । छिद्रमृपिभेदो वा । तस्यापत्यं वाल्मीकिः । मुडागमः । वहतीति वाह्लीकः । गौरश्वो वा । धातोर्वृद्धिः । सुष्ठु प्रैतीति सुप्रतीकः अग्निर्वा । धातोस्तुट् च ॥

(२६) कीर्यते विक्षिप्यते स करीषः । शुष्कगोमयं वा । तरति येन स तरीषः । नौका वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शॄपॄभ्यां किच्च ॥ २७ ॥ शिरीषः । पुरीषम् ॥ २७ ॥

अर्जेर्ऋज च ॥ २८ ॥ ऋजीषम् ॥ २८ ॥

अम्बरीषः ॥ २९ ॥

कॄशॄपॄकटिपटिशौटिभ्य ईरन् ॥ ३० ॥ करीरः । शरीरम् परीरम् । कटीरः । पटीरः । शौटीरः ॥ ३० ॥

वशेः किच्च ॥ ३१ ॥ उशीरम् ॥ ३१ ॥

कशेर्मुट् च ॥ ३२ ॥ कश्मीरः ॥ ३२ ॥

(२७) शृणाति हिनस्तीति शिरीषः । वृक्षभेदो वा । पिपर्ति तत् पुरीषम् । शकृद्वा ॥

(२८ अर्जति सञ्चितो भवति यस्मात्तत्, ऋजीषम् । पिष्टपचनं वा । तवा इति प्रसिद्धम् ॥

(२९) अम्बते शब्दयतीति, अम्बरीषः । आकाशः स्वेदनो वा । भाड़ इति प्रसिद्धम् ॥

(३०) किरतीति करीरः । वृक्षभेदो वंशाङ्कुरो वा । शीर्य्यते हिंस्यत इति शरीरम् । प्राणिकायो वा । पूर्यतेऽनेनेति परीरम् । फलं वा । कट्यत आव्रियतेऽसौ कटीरः । कुटी जघनदेशो वा । पटति गच्छतीति पटीरः । कन्दुकः कामश्चन्दनवृक्षो वा । शौटति गर्वं करोतीति शौटीरः । त्यागी वीरो वा । ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् शौटीर्य्यम् । वैराग्यम् । बहुलवचनात्—हिण्डत इतस्ततो गच्छतीति हिण्डीरः । समुद्रफेनो दाडिमो वा । क्रिमीर-तूणीरजम्बीरकुम्भीरकुटीरादयोऽपीरन् प्रत्ययान्ता बाहुलकादेव बोद्धव्याः ॥

(३१) उश्यते काम्यते तदुशीरम् वीरणमूलं वा । खस २ इति प्रसिद्धम् ॥

(३२) ईरन्नित्येव । कष्टे गच्छति शास्ति वाऽसौ कश्मीरः । देशभेदो वा॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कृञ उच्च ॥ ३३ ॥ कुरीरम् ॥ ३३ ॥

घसेः किच्च ॥ ३४ ॥ क्षीरम् ॥ ३४ ॥

गभीरगम्भीरौ ॥ ३५ ॥

विषाविहा ॥ ३६ ॥

पच एलिमच् ॥ ३७ ॥ पचेलिमः ॥ ३७ ॥

शीङो धुक्लक्वलञ्वालनः ॥ ३८ ॥ शीधु । शीलम् । शैवलः । शेवालम् । शेपालः ॥ ३८ ॥

मृकणिभ्यामूकोकणौ ॥ ३९ ॥ मरूकः । काणूकः ॥ ३९ ॥

(३३) क्रियते तत् कुरीरम् । मैथुनं वा । कपिलकादित्वाल्लत्वे कुलीरः। जलजन्तुभेदो वा ॥

(३४) अद्यते भक्ष्यते यत्तत् क्षीरं दुग्धं वा ॥

(३५) गमधातोर्मकारस्य भकार एकस्मिन् पक्षे नुमागमश्च। गम्यते प्राप्यते ज्ञायते वा स गभीरः शान्तो महाशयो वा। विशेष्यलिङ्गावेतौ शब्दौ ॥

(३६) विशेषेण स्यति कर्मान्तं करोतीति विषा। बुद्धिर्वा। विशेषेण जहाति त्यजति दुःखमिति विहा। सुखलोको वा। स्वभावादनयोरव्ययत्वम् ॥

(३७) पचति पदार्थानिति पचेलिमः। अग्निः सूर्यो वा। यस्तु पचधातोः सामान्यवार्त्तिकेन कृत्यार्थे केलिमज् विधीयते स भावे कर्मणि कर्मकर्त्तरि वेतिभेदः ॥

(३८) शेते येन तत् शीधु । मद्यं वा । शीलं स्वभावः । शैवलम् । शेवालम् । बाहुलकात्—प्रत्ययवकारस्य पकारः । शेपालम् । जलनील्या नामान्येतानि । उदके लतारूपमुत्पन्नं सेवार इति प्रसिद्धम् ॥

(३९) म्रियते असौ मरूकः । मृगो वा । कणति शब्दयतीति काणूकः काको वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वलेरूकः ॥ ४० ॥ वलूकः ॥ ४० ॥

उलूकादयश्च ॥ ४१ ॥ उलूकः । वावदूकः । भल्लूकः । शम्बूकः ॥ ४१ ॥

शलिमण्डिभ्यामूकण् ॥४२॥ शालूकम् । मण्डूकः ॥४२॥

नियो मिः ॥ ४३ ॥ नेमिः ॥ ४३ ॥

अर्त्तेरूच्च ॥ ४४ ॥ ऊर्मिः ॥ ४४ ॥

भुवः कित् ॥ ४५ ॥ भूमिः ॥ ४५ ॥

अश्नोतेरशच् ॥ ४६ ॥ रश्मिः ॥ ४६ ॥

---

(४०) वलते संवृणोतीति वलूकः । पक्षी कमलमूलं वा ॥

(४१) ऊक प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । वलतेऽसावुलूकः । पक्षिभेदो वा । धातोः सम्प्रसारणम् । भृशं वक्तीति वावदूको वक्ता । यङ्लुगन्ता-दूकः । जलशुक्तिर्वा । धातोर्बुक् । बाहुलकादकप्रत्यये शम्बुक इत्यपि सिद्धम् । भल्लते परितोभाषतेऽसौ भल्लूकः । ऋक्षो वा । बाहुलकाद् ह्रस्वे भल्लुक इत्यपि । तथा भलतेऽसौ भालूकः स एव । मह्यतीति मधूकः । वृक्षभेदो वा । तथा । एलूकजम्बूकबन्धूकवास्तूकादयोऽप्यत्रैव द्रष्टव्याः ॥

(४२) शल्यते प्राप्यते यत्तत्, शालूकम् । मूलद्रव्यं वा । मण्डति शोभते ऽसौ मण्डूकः । भेको जलजन्तुर्वा ॥

(४३) नयतीति नेमिः । चक्रावयवो वा । बाहुलकात्—याति कार्याणि प्रापयतीति यामिः । आदेर्जत्वं जामिः । स्वसा कुलस्त्री वा ।

(४४) ऋच्छति गच्छतीत्यूर्मिः । जलतरङ्गो वा ।

(४५) भवन्ति पदार्था अस्यामिति भूमिः । उत्पत्तिस्थानम् । अल्पा भूमिर्भूमिका । कृदिकारादिति ङीष् भूमी ॥

(४६) अश्नुते व्याप्नोतीति रश्मिः । किरणो रज्जुर्वा ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दल्मिः ॥ ४७ ॥

वीज्याज्वरिभ्यो निः ॥४८॥ वेणिः ।ज्यानिः । जूर्णिः ॥४८॥

सृवृषिभ्यां कित् ॥ ४९ ॥ सृणिः । वृष्णिः ॥ ४९ ॥

अङ्गेर्नलोपश्च ॥ ५० ॥ अग्निः ॥ ५० ॥

वहिश्रिश्रुयुद्रुग्लाहात्वरिभ्यो नित् ॥ ५१ ॥ वह्निः । श्रेणिः । श्रोणिः ॥ योनिः । द्रोणिः । ग्लानिः । हानिः । तूर्णिः ॥५१ ॥

(४७) दलति येन विदृणातीति दल्मिः । सूर्यकिरण उत्तमायुधं वा ॥

(४८) वीयते क्षिप्यते स वेणिः । केशविन्यासो वा । निपातनाणत्वम् । जिनाति वयोहीनो भवतीति ज्यानिः । क्षतिर्वा । ज्वरति रोगी भवतीति जूर्णिः । स्त्रीरोगो वा । बाहुलकात्—क्षौति शब्दयतीति क्षोणिः । ङीष् क्षोणी । भूमिर्वा । क्षोणातीति क्षोणिः । क्षणी ॥

(४९) सरति गच्छतीति सृणिः । अङ्कुशं वा । वर्षतीति वृष्णिः । क्षत्रियो वैश्यो वा ।

(५०) अङ्गति गच्छति प्राप्नोति जानाति वा सोऽग्निः । वह्निः । प्रसिद्धो वा ॥

(५१) वहतीति वह्निः । अग्निर्वा । श्रयति सेवतेऽसौ श्रेणिः । पङ्क्तिर्वा । निपूर्वान्निश्रेणी । अधिरोहणी वा । शृणोतीति श्रोणिः । कटिप्रदेशो वा । यौति संयोजयति पृथक् करोति वा स योनिः । कारणमुपस्थेन्द्रियं वा । द्रवन्ति गच्छन्ति यत्र स द्रोणिः । सेचनी देशविशेषो वा । ग्लायति यस्मिन् स ग्लानिः । दौर्बल्यं दौर्मनस्यं वा । हीयते जहाति वा स हानिः । अपचयो वा । प्रहाणिः । परिहाणिः । कृत्यच इति णत्वम् । त्वरति सम्यग्भ्रमतीति तूर्णिः । मनो वा । बहुलवचनात्—शेतेऽसौ शिनिः । क्षत्रियो वा । धातोर्ह्रस्वत्वं च । म्लायतीति म्लानिः । आनन्दक्षयो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

घृणिपृश्निपार्ष्णिचूर्णिभूर्णयः ॥ ५२ ॥

वृदृभ्यां विन् ॥ ५३ ॥ वर्विः । दर्विः ॥ ५३ ॥

जॄशॄस्तॄ जागृभ्यः क्विन् ॥ ५४ ॥ जीर्विः । शीर्विः स्तीर्विः । जागृविः ॥ ५४ ॥

दिवो द्वे दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥ ५५ ॥ दीदिविः ॥ ५५ ॥

कृविघृष्विच्छविस्थविकिकीदिवि ॥ ५६ ॥

(५२) जिघर्त्ति चरति दीप्यते वा स घृणिः । किरणो वा । स्पृशति संयुक्तो भवतीति पृश्निः । अल्पशरीरो वा । धातोः सलोपः पर्षति सिञ्चतीति पार्ष्णिः । पादतलं वा । धातोर्वृद्धिः । चरति गच्छति भक्षयति चूर्णयति प्रेरयतीति वा चूर्णिः । विवरणं वा । बिभर्त्ति धरति सर्वमिति भूर्णिः । पृथिवी वा । बाहुलकात्—घुरति शब्दयतीति घूर्णिः ॥

(५३) वृणोतीति वर्विः । भक्षको वा । दृणाति यया सा दर्विः । सूपचालनपात्रं वा । ङीष् । दर्वी ॥

(५४) जीर्य्यतीति जीर्विः । पशुर्वा । शृणातीति शीर्विः । स्तृणोत्याच्छादयतीति स्तीर्विः । अध्वर्युर्वा । जागर्त्तीति जागृविः नृपतिर्वा ॥

(५५) दीव्यतीति दीदिविः । सुखमन्नं वा । क्विन् प्रत्ययस्य बाहुलकादेवेत्सञ्ज्ञालोपौ न भवतः ॥

(५६) करोति येन स कृविः । तन्तुवायद्रव्यं वा । घर्षति सिञ्चतीति घृष्विः । वराहो वा । छ्यति सूक्ष्मं करोतीति छविः । दीप्तिर्वा । धातोर्ह्रस्वत्वं च । तिष्ठतीति स्थविः । तन्तुवायो वा । अत्रापि ह्रस्वः । किकिना शब्देन दीव्यतीति किकिदीविः । चाषो वा । नीलकण्ठ इति प्रसिद्धः । किकीदिविः । किकिदिविः । किकिदीवः । किकिदिवः । किकीदीविः । इति पंचभेदा बहुलवचनादेव मन्तव्याः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पातेर्डतिः ॥ ५७ ॥ पतिः । ५७ ॥

शकेर्ऋतिन् ॥ ५८ ॥ शकृत् ॥ ५८ ॥

अमेरतिः ॥ ५९ ॥ अमतिः ॥ ५९ ॥

वहिवस्यर्त्तिभ्यश्चित् ॥ ६० ॥ वहतिः । वसतिः । अरतिः ॥ ६० ॥

अञ्चेः को वा ॥ ६१ ॥ अङ्कतिः । अञ्चतिः ॥ ६१ ॥

हन्तेरंह च ॥ ६२ ॥ अंहतिः ॥ ६२ ॥

रमेर्नित् ॥ ६३ ॥ रमतिः ॥ ६३ ॥

(५७) पाति रक्षतीति पतिः । स्वामी वा ।

(५८) शक्नोतीति शकृत् । बाहुलकात्—यजतीति यकृत् । कालखण्डं वा । धातोर्जकारस्य ककारः ॥

) ५९) अमति गच्छतीति, अमतिः कालो वा । बाहुलकात्—व्रतमाचरतीति व्रततिः । विस्तरो व्रतती लता वा । मालयति गन्धं धारयतीति मालती मालतिः । सुमना वा । चमेली इति प्रसिद्धा । स्थापयति धर्म्ममिति स्थपतिः । वाग्मी यज्ञकर्त्ता वा । णयन्तस्य स्थाधातोः पुकि सति ह्रस्वत्वम् ॥

(६०) वहति प्रापयति पदार्थान् प्राप्नोति वेति वहतिः । पवनो वा । वसन्ति यस्येति वसतिर्वसती वा गृहं रात्रिर्वा । ऋच्छति गच्छतीति, अरतिः क्रोधो वा । बाहुलकात्—अलति भूषयति समर्थो वा भवति । स अलतिः । गीतमात्रिका वा ॥

(६१) अञ्चति गच्छति पूजयति वा स अङ्कतिः । अञ्चतिः । वायुर्वा ॥

(६२) अतिः । हन्त्यनेनेति अंहतिः । दानं वा ॥

(६३) रमन्तेऽस्मिन् स रमतिः कालः कामो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सूङः क्रिः ॥ ६४ ॥ सूरिः ॥ ६४ ॥

अदिशादिभूशुभिभ्यः क्रिन् ॥ ६५ ॥ अद्रिः । शद्रिः । भूरिः । शुभ्रिः ॥ ६५ ॥

वङ्क्र्यादयश्च ॥ ६६ ॥ वङ्क्रिः । वप्रिः । अंह्रिः । तन्द्रिः । भेरिः ॥ ६६ ॥

राशदिभ्यां त्रिप् ॥ ६७ ॥ रात्रिः । शत्रिः ॥ ६७ ॥

अदेस्त्रिनिश्च ॥ ६८ ॥ अत्री । अत्रिः ॥ ६८ ॥

पतेरत्रिन् ॥ ६९ ॥ पतत्रिः ॥ ६९ ॥

(६४) सूते प्राणिनः प्रसवति समर्थयतीति, सूरिः । पण्डितो वा । स्त्रियां सूरी ॥

(६५) योऽत्ति, अदन्ति यचेति वा स, अद्रिः । पर्वतो मेघो वृक्षः सूर्यो वा । शीयते शातयतीति शद्रिः । शर्करा वा । भवतीति भूरि बहु सुवर्णं वा । भूरि प्रयोजनमस्य स भौरिकः । कनकाध्यक्षो वा । शोभतेऽसौ शुभ्रिः । चतुर्वेदविद् ब्रह्मा वा ॥

(६६) वङ्कतेऽसौ वङ्क्रिः । वाद्यभेदो गृहदारु वा । वपन्ति यस्मिन् स वप्रिः क्षेत्रं वा । सम्प्रसारणाभावः । बाहुलकात्—अंहयति भाषतेऽसावंह्रिः । पादो वा । तन्दिः सौत्रो धातुः । तन्दति क्लिश्नातीति तन्द्रिः मोहो वा । स्त्रियां तन्द्री । बिभेति येन स भेरिः । वाद्यविशेषो वा । भेरी वा ॥

(६७) राति सुखं ददातीति रात्रिः । प्रसिद्धा वा । शीयते छिनत्तीति शत्रिः हस्ती वा ॥

(६८) चात् त्रिप् । अत्ति भक्षयतीति अत्री । अत्रिणौ । पापं वा । अत्रिः । मुनिभेदो वा । तस्यापत्यमात्रेयः ॥

(६९) पततीति पतत्रिः । पक्षी वा । पतत्रयः । पक्षवाचकात्पतत्रशब्दान्मत्वर्थे इनिः । पतत्री । पतत्रिणौ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मृकणिभ्यामीचिः ॥ ७० ॥ मरीचिः । कणीचिः ॥ ७० ॥

श्वयतेश्चित् ॥ ७१ ॥ श्वयीचिः ॥ ७१ ॥

वेञो डिच्च ॥ ७२ ॥ वीचिः ॥ ७२ ॥

ऋहनिभ्यामूषन् ॥ ७३ ॥ अरूषः । हनूषः ॥ ७३ ॥

पुरः कुषन् ॥ ७४ ॥ पुरुषः । पूरुषः ॥ ७४ ॥

पॄनहिकलिभ्य उषच् ॥७५॥ परुषः । नहुषः । कलुषम् ॥७५॥

पीयेरूषन् ॥ ७६ ॥ पीयूषम् । पेयूषः ॥ ७६ ॥

मस्जेर्नुम् च ॥ ७७ ॥ मञ्जूषा ॥ ७७

(७०) म्रियतेऽसौ मरीचिः । दीप्तिर्महर्षिर्वा । कणति शब्दयतीति कणीचिः । पत्रादियुक्ता शाखा शब्दो वा ॥

(७१) श्वयति गच्छति वर्धते वा स श्वयीचिः । व्याधिर्वा ॥

(७२) वयति तन्तून् सन्तनोतीति वीचिः । डित्वाट्टिलोपः । तरङ्गो वा ॥

(७३) ऋच्छति गच्छतीति, अरूषः । सूर्यो वा । हन्तीति हनूषो दस्युः ॥

(७४) पुरत्यग्रं गच्छतीति पुरुषः पुमान् । अन्येषामपि दृश्यत इति दीर्घे पूरुषो वा ॥

(७५) पिपर्तीति परुषम् । निष्ठुरं वचो वा । नह्यति बध्नातीति नहुषः । राजर्षिः सर्पविशेषो वा । कलते शब्दयतीति कलुषम् । पापम् ॥

(७६) पीयति पीयते वा तत् पीयूषम् । पेयूषः । नूतनं पयोऽमृतं वा । सप्तरात्रप्रसूतायाः क्षीरम् । बहुलवचनात्—अङ्कते लक्षयतीति अङ्कूषः । नकुलो वा ॥

(७७) धातोर्नुम् । स चाचोऽन्त्यात्परः । जश्त्वश्चुत्वे । मज्जति शुद्धो भवतीति मञ्जूषा । काष्ठमयं द्रव्यं वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गण्डेश्च ॥ ७८ ॥ गण्डूषः । गण्डूषा ॥ ७८ ॥

अर्त्तेररुः ॥ ७९ ॥ अररुः ॥ ७९ ॥

कुटः किश्च ॥ ८० ॥ कुटरुः ॥ ८०

शकादिभ्योऽटन् ॥ ८१ ॥ शकटः । कङ्कटः । देवटः । करटः ॥ ८१ ॥

(७८) गण्डति वदनावयवं दिशतीति गण्डूषः । जलादिना पूर्णं मुखम् । कुल्ला इति प्रसिद्धम् ॥

(७९) ऋच्छति प्राप्नोति येन तत् । अररुः । आयुधं वा ॥

(८०) कुटतीति कुटरुः । वस्त्रगृहं वा ॥

(८१) शक्नोतीति शकटः । शकटं यानविशेष ऋषिर्वा । यस्याऽपत्यं शाकटायनः । वृणोतीति वरटः । कीटभेदो वरटा हंसयोषिद्वा । कङ्कते गच्छतीति कङ्कटः । कवचो वा । सरति प्रसरतीति सरटः । कृकलासो वा । गिरगट इति प्रसिद्धः । देवते व्यवहरतीति देवटः । शिल्पी वा । कम्पते येन स कपटः । माया वा । धातोर्नलोपः । कर्कमर्ककर्पाः सौत्रा धातवः । कर्कतीति कर्कटः । जलजन्तुभेदो वा । मर्कतीति मर्कटः । वानरो वा । स्त्रियां गौरादित्वान् ङीष् । मर्कटी । कर्पतीति कर्पटः । छिन्नं पुराणं वस्त्रं वा । पर्पति गच्छतीति पर्पटः । ऊषरभूमिर्वा । कखति हसतीति कक्खटम् । कठिनं वा । कुगागमः । चर्पति सान्त्वयतीति येन स चर्पटः । चर्पटो वा । प्रसृताङ्गुलिर्हस्तो वा । एकत्र प्रत्ययादेरेत्वमपरत्र रेफागमश्च । मयते प्राप्नोति यं स मयटः । प्रासादो वा । किरति विक्षिपतीति करटः । काको वा । एवमन्येऽपिशब्दा अटन् प्रत्ययान्ता यथाप्रयोगं साध्याः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कृकदिकडिकटिभ्योऽम्बच् ॥ ८२ ॥ करम्बम् । कदम्बः । कडम्बः । कटम्बः ॥ ८२

कदेर्णित् पक्षिणि ॥ ८३ ॥ कादम्बः ॥ ८३ ॥

कलिकर्द्योरमः ॥ ८४ ॥ कलमः । कर्दमः ॥ ८४ ॥

कुणिपुल्योः किन्दच् ॥ ८५ ॥ कुणिन्दः । पुलिन्दः ॥ ८५ ॥

कुपेर्वा वश्च ॥ ८६ ॥ कुविन्दः । कुपिन्दः ॥ ८६ ॥

नौ षञ्जेर्घथिन् ॥ ८७ ॥ निषङ्गथिः । ८७ ॥

उद्यर्त्तेश्चित् ॥ ८८ ॥ उदरथिः । ८८ ॥

सर्त्तेर्णिच्च ॥ ८९ ॥ सारथिः ॥ ८९ ॥

(८२) करोतीति करम्बम् । व्यामिश्रम् । कदतीति कदम्बः । वृक्षभेदो वा । कडत्यावृणोतीति कडम्बः । अग्रभागो वा । कटतीति कटम्बो वादित्रं वा ॥

(८३) कर्दति विकलो भवतीति कादम्बः पक्षिभेदो वा वक प्रसिद्धः ॥

(८४) कलते संङ्ख्यातीति कलमः । शालिभेदो वा । कर्दति कुत्सितं शब्दयतीति कर्दमः पापं वा ॥

(८५) कुणयते शब्द्यतेऽसौ कुणिन्दः । शब्दो वा । पोलति महान् भवतीति पुलिन्दः । शबरश्चाण्डालभेदो वा । बाहुलकात्—अलति भूषयतीति अलिन्दः । गृहैकदेशो वा । प्रज्ञादित्वादणि आलिन्द इत्यपि सिद्धम् ॥

(८६) कुप्यति क्रुद्धो भवति स कुविन्दः । कुविन्दः तन्तुवायो वा ॥

(८७) नितरां सजति सङ्गं करोतीति निषङ्गथिः । आलिङ्गको वा । घित्वात् कुत्वम् ॥

(८८) उदृच्छन्त्यूर्ध्वं गच्छन्त्यापोऽस्मिन् स उदरथिः । समुद्रो वा ॥

(८९) सारयतीति नियमेन चालयतीति सारथिः । नियन्ता वा ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ ॥ ९० ॥ खर्जूरः । कर्पूरः । धुस्तूरः । वल्लूरम् । पिञ्जूलम् । लाङ्गूलम् ॥ ९० ॥

कुवश्चट् दीर्घश्च ॥ ९१ ॥ कूची ॥ ९१ ॥

समीणः ॥ ९२ ॥ समीचः । समीची ॥ ९२ ॥

सिवेष्टेरू च ॥ ९३ ॥ सूचः । सूची ॥ ९३ ॥

अत्र योर्लोपो णित्वाद् वृद्धिः

(९०) खर्ज्यादिभ्य ऊरः । खर्जति मार्जयतीति खर्जूरः । वृक्षभेदो रजतं वा । स्त्रियां गौरादित्वान् ङीष् । खर्जूरी । कल्पते समर्थो भवतीति कर्पूरः । सुगन्धिद्रव्यं वा । बाहुलकादत्र लत्वाभावः । धुनोति कम्पयतीति धुस्तूरः । कनकाह्वयः । धतूरा इति प्रसिद्धः । वल्लते संवृणोतीति वल्लूरम् । शुष्कमांसं वा । शालयति गमयतीति शालूरः । मण्डूको वा । मल्लते धरतीति मल्लूरः । कस्ते गच्छति प्राप्नोति शान्ति वा स कस्तूरः । स्त्रियां कस्तूरी प्रसिद्धा । सुगन्धिभेदः । पिञ्जादिभ्य ऊलः । पिङ्क्ते वर्णयतीति पिञ्जूलम् । कुशवर्तिर्वा । कञ्चते दीप्यतेऽसौ कञ्चूलः । स्त्रीगात्राभरणं वा । लङ्गति गच्छतीति लाङ्गूलम् । पुच्छं वा । धातोर्वृद्धिः । ताम्यति काङ्क्षति यत ताम्बूलमिति । प्रसिद्धम् धातोर्बुक् । धातोर्दुक् दीर्घत्वं च । शृणाति हिनस्तीति शार्दूलः । व्याघ्रो वा । धातोर्दुक् वृद्धिश्च । दुनोत्युपतापयतीति दुकूलम् । स्त्रिया अधोवस्त्रम् । धातोः कुक् । कुस्यति श्लिष्यतीति कुसूलः । धान्यपात्रं वा ।

(९१) कौति शब्दयतीति कूचः । स्तनं हस्तो वा । स्त्रियां कूची चित्रलेखनी ॥

(९२) सम्यगेति गच्छतीति समीचः । समुद्रो वा । समीची हरिणी ॥

(९३) इवभागस्य टेरू आदेशः । सीव्यति येन स सूचः । दर्भाङ्कुरो वा । सूचीति प्रसिद्धा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शमेर्वन् ॥ ९४ ॥ शंवः ॥ ९४ ॥

उल्वादयश्च ॥ ९५ ॥ उल्वम् । विल्वम् ॥ ९५ ॥

स्थः स्तोऽम्बजवकौ ॥ ९६ ॥ स्तम्बः । स्तवकः ॥ ९६ ॥

शाशपिभ्यां ददनौ ॥ ९७ ॥ शादः । शब्दः ॥ ९७ ॥

अब्दादयश्च ॥ ९८ ॥ अब्दः । कुन्दः ॥ ९८ ॥

(९४) शाम्यतीति शंवः । मुसलस्य लोहमुखं वा । शामो इति प्रसिद्धा ॥

(९५) वन् प्रत्ययान्ता निपाताः । उच्यति समवैतीति उल्वः । गर्भो वा । चकारस्य लत्वं गुणाभावश्च । शोचतीति शुल्वम् । ताम्रं वा । पूर्ववत्सर्वम् । नयति प्रापयतीति शुभगुणानिति निंवः । वृक्षभेदो वा । बीयते काम्यते तत् विंवम् । मण्डलमोषधिविशेषो वा । अत्रोभयत्र नी वी धातोर्नुमागमो ह्रस्वत्वं च । स्त्रियां गौरादित्वात् । विंबी । विंबफलमिवोष्ठौ यस्याः सा विंबोष्ठी कन्या । दधाति धान्यहेतुर्भवतीति धन्वम् । धनुर्वा । तद्योगाद्धन्वी जनः । जमति भक्षयतीति जंवः । पङ्को वा ॥

(९६) अम्बच् अवक इत्येतौ प्रत्ययौ । तिष्ठतीति स्तम्बः । शाखाशून्यो व्रीह्यादेर्गुच्छो वा । स्तवकः । पुष्पगुच्छो वा ॥

(९७) श्यति सूक्ष्मं करोतीति शादः । कर्दमो बालतृणं वा । शप्यत आहूयतेऽनेन स शब्दो नादः । पस्य बः ॥

(९८) ददन् प्रत्ययान्ता निपाताः । अवति रक्षणादिकं करोतीति अब्दः । संवत्सरोऽवसरो मेघो वा । कौति शब्दयतीति कुन्दः । पुष्पजातिर्वा । धातोर्नुम् । वृणोतीति वृन्दं समूहो वा । नुम् गुणाभावश्च । कनति दीप्यतेऽसौ कन्दः । सस्य मूलं सूकरो वा। तुदति व्यथतीति तुन्दः स्थूलमुदरं वा । तुन्दी स्थूलोदरो । धातोर्नुम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वलिमलितनिभ्यः कयन् ॥ ९९ ॥ वलयम् । मलयः । तनयम् ॥ ९९ ॥

वृह्रोः षुग्दुकौ च ॥ १०० ॥ वृषयः । हृदयम् ॥ १०० ॥

मीपीभ्यां रुः ॥ १०१ मेरुः । पेरुः ॥ १०१ ॥

जत्वादयश्च ॥१०२॥ जत्रु । जत्रुणी । अश्रु । अश्रुणी ॥१०२॥

रुशातिभ्यां क्रुन् ॥ १०३ ॥ रुरुः । शत्रुः ॥ १०३ ॥

(९९) वलते संवृणोतीति वलयः । करभूषणं वा । मलते धरतीति मलयः । पर्वतो वा । तनोति सुखमिति तनयः । पुत्रो वा । बाहुलकात्-आमयति पीडयतीति आमयः । रोगो वा ॥

(१००) वृणोतीति वृषयः । आश्रयो वा । षुक् । हरति विषयानिति हृदयम् । मनो वा । दुक् ॥

(१०१) मिनोति प्रक्षिपतीति मेरुः । सुमेरुः । पर्वतो वा । पीयते पिबतीति वा । पेरुः । आदित्यो वा । बाहुलकात्—पिबतीति पारुः । स एव ॥

(१०२) जायते तत् जत्रु । स्कन्धसन्धिर्वा । नस्य तः । जत्रुणी । जत्रूणि । शेतेऽसौ शिग्रुः । शोभाञ्जनस्तरुः । सहिजना इति प्रसिद्धः । शाकं वा । मनुष्यविशेषो वा । तत्र शिग्रोरपत्यं शैग्रवः । विशिषेण तनोतीति वितद्रुः । नदी वा । नकारस्य दः । कवतेऽसौ कद्रुः । वर्णभेदो वा । वस्य दः । अस्यति प्रक्षिपति जलमिति अस्रुः । बहुलवचनात्—शकारभेदे । अश्रुः । नेत्रजलं वा ॥

(१०३) रौति शब्दं करोतीति रुरुः । मृगभेदो वा । शीयते शातयतीति शत्रुः । प्रज्ञादित्वादण् । शात्रवः । वैरी ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जनिदाच्युसृवृमदिषमिनमिभृञ्भ्य इत्वन्त्वन्त्नण्क्विन्शक्स्यढडटोटचः ॥ १०४ ॥ जनित्वः । दात्वः । च्यौत्नः । सृणिः । वृशः । मत्स्यः । षण्ढः । नटः । भरटः ॥ १०४ ॥

अन्येऽपि दृश्यन्ते ॥ १०५ ॥ पेत्वम् ॥ १०५ ॥

कुसेरुम्भोमेदेताः ॥ १०६ ॥ कुसुम्भम् । कुसुमम् । कुसीदम् । कुसितः ॥ १०६ ॥

सानसिवर्णसिपर्णसितण्डुलाङ्कुशचषालेल्वलपल्वलधिष्ण्यशल्याः ॥ १०७ ॥

---

(१०४) जायते जनयति वा स जनित्वः । मातापितरौ वा । यो ददाति यत्र वा स दात्वः । यज्ञकर्म वा । च्यवते गच्छतीति च्यौत्नम् । बलं वा । सरतीति सृणिः । चन्द्रोऽङ्कुशो वा । वृणोतीति वृशः । ओषधिर्वा । माद्यतीति मत्स्यः । मीनो वा । स्त्रियां मत्सी । मत्स्या । सनतीति षण्ढः । अकृतदारो वा । नमतीति नटः । वंशावरोहीति प्रसिद्धः । डित्वाट्टिलोपः । बिभर्तीति भरटः । कुलालो वा ॥

(१०५) इत्वनादय इति शेषः । पीयते यत् पेत्वम् । अमृतं वा । कष्यते बध्यतेऽसौ कच्छः । शाकमूलं वा । सरतीति सरटः । वायुर्वा । ध्यायते तद् ध्यात्वम् । चिन्ता वा । जुहोतीति हौत्नः । यजमानो वा । लूयतेऽसौ लूनिः । ब्रीहिर्वा । इत्यादि ॥

(१०६) कुस्यति श्लिष्यतीति कुसुम्भम् । महारजनं वा । कुसुमम् । पुष्पं वा । कुसीदम् । वृद्धिजीविका वा । कुसितः । देशो वा ॥

(१०७) सनोति ददाति सन्यते वा स सानसिः । हिरण्यं वा । असिप्रत्यय उपधावृद्धिश्च । वृणोतीति वर्णसिः । जलं वा । धातोर्नुक् । पिपर्तीति पर्णसिः । जलगृहं वा । पूर्ववत्सर्वम् । तण्डति ताडयति ताड्यते वा । स तण्डुलः । उलच् । तुषरहितो व्रीहिर्वा । अङ्कते लक्षयति येन

For Private And Personal Use Only

मूशक्यबिभ्यः क्लः ॥ १०८ ॥ मूलम् । शक्लः । अम्ब्लः अम्लः ॥ १०८ ॥

माछाशसिभ्यो यः ॥१०९॥ माया । छाया । सस्यम् ॥१०९॥

सनोतेः ॥ ११० ॥ सव्यम् ॥ ११० ॥

जनेर्यक् ॥ १११ ॥ जन्यम् । जाया ॥ १११ ॥

अघ्न्यादयश्च ॥११२॥ अघ्न्या । कन्या । बन्ध्या ॥११२॥

स, अङ्कुशः । शस्त्रभेदो वा। उश्च । चषति भक्षयतीति चषालः । यूपकङ्कणं वा । इलति स्वपितीति,इल्वलः। नक्षत्रविशेषो वा । पलति धृष्णोति गच्छतीति पल्वलम् । अल्पसरो वा । अत्रोभयत्र वलच् गुणाभावश्च। प्रगल्भो भवतीति धिष्ण्यः । स्थानम्त्वोऽग्निरालयो वा । ऋकारस्येकारो वा ॥ यप्रत्ययश्च। शलति गच्छतीति शल्यम्। शस्त्रविशेषो बाणाग्रभागो वा ॥

(१०८) मनते बध्नातीति मूलमिति प्रसिद्धम् । शक्नोतीति शक्लः । प्रियंवदो वा अम्बते शब्दं करोतीत्यम्बलः । बाहुलकात्—अमति गच्छतीति, अम्लः । रसविशेषो वा ॥

(१०९) मात्यन्तर्भवतीति माया । छलं मिथ्याजालो वा । छ्यति प्रकाशमिति छाया । प्रकाशावरणमुत्कोचक प्रतिबिम्बो वा ।शस्यते यत्तत् सस्यम्। क्षेत्रपक्वमन्नं गुणो वा । बाहुलकात्—अनिति जीवयतीत्यन्यः । इतरो वा ॥

(११०) सुनोत्यभिषवतीति सव्यम् । वामभागो वा ॥

(१११) या जायते यस्यां वा सा जाया पत्नी । ये विभाषेतिव्यवस्थितविभाषया पत्न्यां जाया नित्यमात्वमन्यत्र जन्यम् । निर्वादो युद्धं वा॥

(११२) यगन्ता निपाताः । यो न हन्यते न हन्तीति वा स, अघ्न्यः । प्रजापालको वा । धातोरुपधालोपो हस्य घत्वं च । अघ्न्या गौर्वा। सन्दधाति यस्यां वेलायां सा सन्ध्या । आतो लोपः । सायङ्कालः प्रतिज्ञा वा । सम्यग् ध्यायन्ति परं ब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या। इति तु स्त्रियां

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्नामदिपद्यर्त्तिपृशकिभ्यो वनिप् ॥ ११३॥ स्नावा । मद्वा । पद्वा । अर्वा । पर्व । शक्वा । शक्वरी ॥ ११३ ॥

शीङ्कुशिरुहिजिक्षिसृधृभ्यः क्वनिप् ॥ ११४ ॥ शीवा । कुश्वा । रुह्वा । जित्वा । क्षित्वा। सृत्वा । धृत्वा ॥ ११४ ॥

ध्याप्योः सम्प्रसारणं च ॥ ११५ ॥ धीवा । पीवा ॥ ११५॥

अदेर्ध च ॥ ११६ ॥ अध्वा ॥ ११६ ॥

क्तिन्नित्यधिकारे , आतश्चोपसर्ग इत्यङ् । कन्यते दीप्यते काम्यते गच्छति वा सा कन्या । कुमारी वा । बध्यतेऽसौ बन्ध्या अप्रसूता वा । कौति शब्द-यतीति कुड्यम् । भित्तिर्वा । धातोर्डुक् । मन्यते येन तन्मध्यम् । द्वयोर-न्तरालं वा । नस्य धः । उह्यते यतद् वह्यम् । मनुष्यविशेषो वा । अर्हति व्याप्नोतीत्यहल्या । रात्रिर्वा । अहल्ये यतेऽस्यामिति व्युत्पत्यनन्तरम् । पूर्वत्र धातोरलुगागमः । ऋषति गच्छतीति ऋष्यः मृगभेदो वा । कष्टे गच्छति शास्ति वा स कश्यः । मद्यं वा । इत्यादि ॥

(११३) स्नाति शुच्यतीति स्नावा । रसिको वा । स्नावानौ । स्नावानः । माद्यतीति मद्वा । कल्याणदातेश्वरो वा । पद्यन्ते यत्र स पद्वा । पन्था वा । ऋच्छतीत्यर्वा । अश्वो निन्द्यो वा । पिपर्तीति पर्व । ग्रन्थिर्वा । शक्नो-तीति शक्वा । हस्ती वा । स्त्रियां ङीब्रेफौ । शक्वरी । नदी । छन्दोभेदो वा ॥

(११४) शेतेऽसौ शीवा । अजगरो वा । क्रोशतीति कुश्वा । शृगालो वा । रोहति बीजादुत्पद्यत इति रुह्वा वृक्षो वा । जयतीति जित्वा । जयशील: । क्षयति नाशयति क्षिपति निवसति गच्छति वा स क्षित्वा । वायुर्वा । सरतीति सृत्वा । प्रजापतिर्वा । धारयतीति धृत्वा । व्यापको जगदीश्वरो वा । स्त्रियां जित्वरीत्यादि बोध्यम् ॥

(११५) ध्यायतीति धीवा । कर्मकारो वा । स्त्रियां धीवरी । मत्स्याधानं पात्रम्। प्यायते वर्द्धतेऽसौ पीवा । स्थूलो वा । पीवरी तरुणी ॥

(११६) अत्ति भक्षयतीति, अध्वा । मार्गो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रईरशदोस्तुट् च॥११७॥प्रेत्वी।प्रशत्वा।प्रेत्वरी।प्रशत्वरी॥११७॥
सर्वधातुभ्य इन् ॥११८॥ पचिः । तुण्डिः । वलिः । वटिः ।
मणिः । वल्हिः यजिः । गण्डिः । तडिः । धाडिः । काशिः ।
वाशिः । घटिः । घटी । यतिः । केलिः । मसिः । कोटिः ।
जटिः । कटिः । हलिः । हेलिः । पणिः कलिः ॥ ११८ ॥

(११७) प्रेतेऽसौ प्रेत्वा । सागरो वा । प्रेत्वरी । प्रशीयतेऽसौ प्रशत्वा समुद्रो वा । प्रशत्वरी नदी ॥

(११८) पचति येन स पचिः । अग्निर्वा । तुण्डति छिनत्तीति तुण्डिः । वलते संवृणोतीति वलिः । महाराजो वा । वाटयति ग्रथ्नाति स वटिः । विभाजको वा । मणति शब्दयतीति मणिः । बहुमूल्यः पाषाणो वा । प्रशंसितो मणिर्मणिकः । तदेव माणिक्यम् । वल्हते प्रधानो भवतीति वल्हिः । वल्हिका नाम क्षत्रिया जनपदो वा । यजतीति यजिः । सङ्गन्ता होता वा । गण्डति स गण्डिः । वदनैकदेशो वा । ताडयतीति तडिः । पीडकः । धाडते विशेषेण छिनत्तीति धाडिः । पुष्पचयो वा । काश्यते दीप्यतेऽसौ काशिः । देशभेदो वा । तद्देशान्तर्गत्वाद्वाराणसी नगरी काशिः। काशी । तस्य देशस्य राजा काश्यः । वाश्यते शब्दयतीति वाशिः काष्ठ-भेदिनी वा । घटतेऽसौ घटिः । घटी । यततेऽसौ यतिः । नियमधारी सन्न्यासी वा । केलति चलति यस्यां सा केलिः । क्रीडा वा । मस्यति परिणमते स मसिः । मसी । पात्राञ्जनं वा । कुटतीति कोटिः । सङ्ख्यावरण-मग्रभागो वा । बाहुलकाद् गुणः । जटति सङ्घातं करोतीति जटिः जटाधारी वा । कटतीति कटिः । कटी । शरीरमध्यं वा । हलति येन विलिखतीति हलिः । कृषीवलः । कृषिसाधनं वा । हेलति विरुद्धं बहुभाषत इति हेलिः । प्रहेलिः । यः पणायति व्यवहरति स पणिः विपणिः । वणिजां वीथी वा । कलन्ते स्पर्द्धमाना भाषन्ते यत्र स कलिः । कलहो विग्रहो वा । नन्दति यत्रेति नन्दिः । वृद्धिर्वा । इत्यादीन्यनेकान्युदाहरणानि सन्ति ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हृपिषिरुहिवृतिविदिछिदिकीर्त्तिभ्यश्च ॥ ११९ ॥ हरिः । पेशिः । रोहिः । वर्त्तिः । वेदिः । छेदिः । कीर्त्तिः ॥ ११९ ॥

इगुपधात् कित् ॥ १२० ॥ कृषिः । ऋषिः । रुचिः । । शुचिः । लिपिः ॥ १२० ॥

भ्रमेः सम्प्रसारणञ्च ॥ १२१ ॥ भृमिः । भ्रमिः ॥ १२१ ॥

क्रमितिमिशतिस्तम्भामत इच्च ॥ १२२ ॥ क्रिमिः । कृमिः । तिमिः । शतिः । स्तिमिः ॥ १२२ ॥

(११९) हरतीति हरिः । सर्पो मण्डूकोऽश्वः सिंहः सूर्यो वा । इगुपधात् किदिति वक्ष्यते यद्बाधनार्थं पिष्यादीनां ग्रहणम् । तत्र हि कित्वाद् गुणनिषेधः प्राप्तः स न स्यात् । पिनष्टि येन स पेषिः । वज्रो वा । रोहतीति रोहिः । व्रतो वा । वर्त्तते सा वर्तिः । दीपोपकरणं वा । विद्यते या सा वेदिः । यज्ञभूमिर्वा । छिनत्तीति छेदिः । वर्धकिश्छेना वा। कीर्त्यते संशब्द्यते सा कीर्तिः । पुण्यं यशो वा ॥

(१२०) कृष्यते विलेख्यते या सा कृषिः । खेतीति प्रसिद्धा । ऋषति गच्छति प्राप्नोति जानाति वा स ऋषिः । मन्त्रार्थद्रष्टा वा । रुच्यते सा रुचिः दीप्तिर्वा । शुच्यतीति शुचिः । शुद्धिर्वा लिम्पतीति लिपिः । लेखो वा । बाहुलकात्—वत्वे लिविः । इत्यपि । लिविं करोतीति लिविकरः । लिप्यर्थ एव । तूलते निष्कर्षतीति तूलिः । तूली । कूर्चिका । दध्यादिना सह पक्वः क्षीरविकारो वा ।

(१२१) भ्राम्यतीति भृमिः। वायुर्वा।बाहुलकात्—भ्रमिरित्यपि सिद्धम्॥

(१२२) क्राम्यति पादान् विक्षिपतीति क्रिमिः । क्षुद्रजन्तुर्वा । सम्प्रसारणानुवृत्तेः कृमिरित्यपि । ताम्यत्याकाङ्क्षतीति तिमिः । मत्स्यभेदो वा । शतिस्तम्भौ सौत्रौ धातू । शितिः कृष्णः । शुक्लो वा । स्तभ्नातीति स्तिमिः । समुद्रो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मनेरुच्च ॥ १२३ ॥ मुनिः । १२३ ॥

बर्णेर्बलिश्चाहिरण्ये ॥ १२४ ॥ बलिः ॥ १२४ ॥

वसिवपियजिराजिव्रजिसदिहनिवाशिवादिवारिभ्य इञ् ॥ १२५ ॥ वासिः । वापिः । याजिः । राजिः । व्राजिः । सादिः । निघातिः । वाशिः । वादिः । वारिः ॥ १२५ ॥

नहो भश्च ॥ १२६ ॥ नाभिः ॥ १२६ ॥

कृषेर्वृद्धिश्छन्दसि ॥ १२७ ॥ कार्षिः ॥ १२७ ॥

(१२३) किदित्येव । मन्यते जानातीति मुनिः । मननशीलः । मुनिरियं ब्राह्मणी । बह्वादित्वान् मुनी । मुनेर्भावः कर्म वा मौनम् ॥

(१२४) वर्णिः सौत्रो धातुः वर्णयति स बलिः । राजकरः सत्कारसामग्री शरीराङ्गं वा । हिरण्ये तु वर्णिः सुवर्णम् ॥

(१२५) वस्त आच्छादयति वसति वा स वासिः । छेदनवस्तु वा । वपन्ति यस्मिन्निति वापिर्वापी वा । जलाशयभेदो वा । यजतीति याजिः । यष्टा वा । राजते दीप्यतेऽसौ राजिः । राजी । पंक्तिर्वा । राजीवं पद्मम् । व्रजतीति व्राजिः । वायुसमूहो वा । सीदतीति सादिः । सारथिर्वा । हन्ति यया सा घातिः । निघातिर्लोहघातां धारा । वाश्यते शब्दयतीति वाशिः । अग्निर्वा । वादयति व्यक्तमुच्चारयति स वादिः । विद्वान् वा । वारयति निवारयतीति वारिः । गजबन्धनी शृङ्खला वा । जले नपुंसकम् । वारि । बाहुलकात्—हरतीति हारिः । पथिकसंसृतिर्वा । संप्रहारिः । योद्धा । खटति काङ्क्षतीति खाटिः । शुष्कव्रणस्थानं वा ॥

(१२६) नह्यति दृष्टं नाडीर्वा, बध्नातीति नाभिः । क्षत्रियः प्राण्यङ्गं वा । नाभी ङीष् ॥

(१२७) कर्षत्याकर्षतीति कार्षिः । अग्निर्वा । लोके तु कृषिः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शः शकुनौ ॥ १२८ ॥ शारिः । शारिका ॥ १२८ ॥

कञ उदीचां कारुषु ॥ १२९ ॥ कारिः ॥ १२९ ॥

जनिघसिभ्यामिण् ॥ १३० ॥ जनिः । घासिः ॥ १३० ॥

अज्यतिभ्यां च ॥ १३१ ॥ आजिः । आतिः ॥ १३१ ॥

पादे च ॥ १३२ ॥ पदाजिः । पदातिः ॥ १३२ ॥

अशिपणाय्योरुडायलुकौ च ॥१३३॥ राशिः। पाणिः ॥१३३॥

---

(१२८) शृणाति हिनस्तीति शारिः पक्षी । स्त्री शारिका । शुकशारिकमिति पक्ष एकवद्भावः । शारीन् हन्तीति शारिका वा । शकुनेरन्यत्र शरिहिंसः । कपिलकादित्वाल्लत्वम् । शालिः अपिशलिर्मुनिविशेषस्तस्यापत्यमापिशलिः । बाह्वादित्वादिञ् ॥

(१२९) करोतीति कारिः । शिल्पी । शिल्पिनोऽन्यत्र करिः ॥

(१३०) जायतेऽसौ जनिः । जननं वा । घसति भक्षयतीति घासिः । अग्निर्वा । बाहुलकात्—शल्यते प्राप्यतेऽसौ शालिः । व्रीहयो वा । पलति गच्छतीति पालिः । खड्गादेरग्रभागो वा । प्रत्ययान्तरकरणं स्वरार्थम् ॥

(१३१) अजन्ति क्षिपन्ति शस्त्रादिकं यत्र स आजिः । संग्रामो वा । अतति निरन्तरं गच्छतीति, आतिः । तित्तिरिभेदो वा । शोभनः—आती स्वाती नक्षत्रम् ॥

(१३२) पद्भ्यामजत्यततीति वा स पदाजिः । पदातिः । पदगः । पादस्यपदाज्याति० सूत्रेण पदादेशः ॥

(१३३) अशेरुट् पणायते रायलुक् । अश्नुते व्याप्नोतीति राशिः । समूहो वा । पणायति व्यवहरति येन स पाणिः । हस्तो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वातेर्डिच्च ॥ १३४ ॥ विः ॥ १३४ ॥
प्रे हरतेः कूपे ॥ १३५ ॥ प्रहिः ॥ १३५ ॥
नौ व्यो यलोपः पूर्वस्य च दीर्घः ॥१३६॥ नीविः ॥१३६॥
समाने ख्यः स चोदात्तः ॥ १३७ ॥ सखा ॥ १३७ ॥
आङि श्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्च ॥१३८॥ अश्रिः। अहिः ॥१३८॥
अच इः ॥१३९॥ रविः। कविः। पविः। अरिः। अलिः ॥१३९॥

(१३४) वाति वायुवद्गच्छतीति विः। पक्षी वा। डित्वादाकारलोपः। अटन्ति वयोऽस्यामित्यटविर्नगरी। पदस्य विः पद्वी ॥

(१३५) हृञ्-डित्। प्रहरति जलमस्मात् स प्रहिः कूपो वा। कूपादन्यत्र हरिः ॥

(१३६) पूर्वस्योपसर्गस्य दीर्घः। निवीयते संव्रियते सा नीविः। नीवी। मूलधनं दुकूलबन्धनं वा ॥

(१३७) समानं ख्यातीति सखा। सखायौ। सखायः। मित्रं सहायो वा ॥

(१३८) आश्रयति तद्वेति, अश्रिः। कोणो वा। आहन्तीति, अहिः। मेघः सर्पो वा। अत्राङुपसर्गस्यैव ह्रस्वत्वम् ॥

(१३९) अजन्ताद्धातोरिः प्रत्ययः। लुनाति छिनत्तीति लविः। छेदको लोहो वा। पुनातीति पविः। वज्रं हीरकं वा। तरति येन स तरिः। वस्त्रादिस्थापनभाण्डं वा। स्त्रियां तरी। रौतीति रविः। सूर्यो वा। कौति शब्दयत्युपदिशति स कविः। मेधावी विद्वान्। क्रान्तदर्शनो वा। स्त्रियां कवी। ऋच्छति प्राप्नोति परपदार्थानित्यरिः। शत्रुर्वा। कपिलकादित्वाल्लत्वे। अलिः। भ्रमरो वा। नखेनातिक्रामतीति नखयति तस्मात्। नखिः। सूचयतीति सूचिः ॥ इत्यादि ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खनिकष्यज्यसिवसिवनिसनिध्वनिग्रन्थिचरिभ्यश्च॥ १४० ॥ खनिः । कषिः । अजिः । असिः । वसिः । वनिः । सनिः । ध्वनिः । ग्रन्थिः । चरिः ॥ १४० ॥

वृतेश्छन्दसि ॥ १४१ ॥ वर्त्तिः ॥ १४१ ॥

भुजेः किच्च ॥ १४२ ॥ भुजिः ॥ १४२ ॥

कॄगॄशॄपॄकुटिभिदिछिदिभ्यश्च ॥ १४३ ॥ किरिः । गिरिः । शिरिः । पुरिः । कुटिः । भिदिः । छिदिः ॥ १४३ ॥

(१४०) खनति येन खन्यते यत्रेति वा स खनिः। धनस्थानं वा। बाहुलकाद्दीर्घत्वे खानिरित्यपि। कषति हिनस्तीति कषिः। हिंसको वा। अनक्ति व्यनक्ति कार्यमित्यञ्जिः। प्रेषणाकर्त्ता। ङीष्। अञ्जी मङ्गलार्थः। अस्यति चिपत्यनेनेत्यसिः। खड्गो वा। वस्त आच्छादयत्यनेनेति वसिः। वस्त्रं वा। वनति संभजतीति वनिः। अग्निर्वा। धान्यवनिर्धान्यराशिः। वन्यते याच्यत इति वनिः। तं वनिं याचनमिच्छतीति वनीयति तदन्ताण्वुल्। वनीयकः। प्रार्थकः। सनोति ददातीति सनिः। अध्येषणं वा। ध्वन्यत उच्चार्यते स ध्वनिः। शब्दो वा। यं ग्रन्थाति समुदेति स ग्रन्थिः पर्व। चरतीति चरिः पशुर्वा॥

(१४१) वर्त्तते तत्र येन वा स वर्त्तिः। योगक्रिया साधनद्रव्यं मार्गो वा॥

(१४२) भुनक्ति पालयति भक्षयति वा स भुजिः। अग्निर्वा॥

(१४३) किदिति वर्त्तते। किरतीति किरिः। वराहो वा। गिरति गृणाति वा स गिरिः। गोचर्मचिरोगः पर्वतो मेघो वा। शृणातीति शिरिर्हन्ता। पिपर्त्तीति पुरिः नगरं नदी वा। कुटतीति कुटिः कुटी। शाला वा। भिनत्ति येन स भिदिः। वज्रं वा। छिनत्त्यनेन स छिदिः। परशुर्वा। बहुलवचनात्—तरति प्लवतेऽसौ तित्तिरिः। पक्षिभेदो वा। तृधातोरिः प्रत्ययः स च कित् सन्वत्कार्यमभ्यासस्य तुगागमश्च॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुण्ठिकम्प्योर्नलोपश्च ॥ १४४ ॥ कुठिः । कपिः ॥१४४॥

सर्वधातुभ्यो मनिन् ॥१४५॥ कर्म । चर्म । भस्म । जन्म । शर्म । हेम । श्लेष्मा । तर्म । स्थाम । दाम । छद्म । सुत्रामा ॥१४५॥

बृंहेर्नोऽच्च ॥ १४६ ॥ ब्रह्म ॥ १४६ ॥

अशिशकिभ्यां छन्दसि ॥१४७॥ अश्मा । शक्मा ॥१४७॥

(१४४) कुण्ठति गतिं प्रतिहन्तीति कुठिः । पर्वतो वृक्षो वा । कम्पतेऽसौ कपिः वानरो वर्णभेदो वा । कपिवर्णमस्यास्तीति कपिशः । कपिलवर्णः । लोमादिपाठादत्र मत्वर्थीयः शप्रत्ययः ॥

(१४५) क्रियते तत् कर्म क्रिया वा । अर्द्धर्चादित्वादुभयलिङ्गः कर्मशब्दः । कर्माणि कुरुते शुभम् । चरति गच्छति येन तच्चर्म । प्रसिद्धम् । भसितं दीपितमिति यत्तद्भस्म । जायते यत्र तज्जन्म । उत्पत्तिः । शृणातीति शर्म । सुखं गृहं वा । हिनोति वर्धते येन तत् हेम । सुवर्णं वा । श्लिष्यतीति श्लेष्मा । कफोद्भावो वा । श्लेष्माऽस्यास्तीति पामादित्वान्मत्वर्थे नः प्रत्ययः । श्लेष्मणः । सिध्मादित्वात् । श्लेष्मलः । तरतीति तर्म यूपाग्रं वा । तर्मणी । तर्माणि । तिष्ठति येन तत् स्थाम । बलं वा । स्थामनी । ददातीति दाम । स्रग्वा । छादयतीति छद्म । माया वा । इस्मन्निति ह्रस्वत्वम् । सुष्ठु त्रायत इति सुत्रामा । ओषति दहतीति, ऊष्म । अन्येषामपीति दीर्घः । ऊष्मा । ग्रीष्मर्तुर्बाष्पो वा ॥

(१४६) बृंहति वर्धते तद् ब्रह्म । ईश्वरो वेदस्तत्वं तपो वा ॥

(१४७) अश्नात्यश्नुते व्याप्नोति वा स, अश्मा । मेघः पाषाणो वा । भाषायामपि दृश्यते । अश्मानं दृषदं मन्ये । शक्नोतीति शक्मा सूर्यो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हृभृधृसृस्तृशृभ्य इमनिच् ॥ १४८ ॥ हरिमा । भरिमा । धरिमा । सरिमा । स्तरिमा । शरिमा ॥ १४८ ॥

जनिमृङ्भ्यामिमनिन् ॥१४९॥ जनिमा । मरिमा ॥१४९॥

वेञः सर्वत्र ॥ १५० ॥ वेमा ॥ १५० ॥

नामन्सीमन्व्योमन्रोमन्लोमन्पाप्मन्ध्यामन् ॥१५१॥

(१४८) छन्दसीति वर्त्तते । हरति स हरिमा । कालो वा । भर्त्तुं योग्यो भरिमा । कुटुम्बं वा । ध्रियत इति धरिमा । रूपं वा । सरतीति सरिमा । वायुर्वा । स्तीर्यत आच्छाद्यत इति स्तरिमा । तल्पं वा । शृणातीति शरिमा । प्रसवो वा ॥

(१४६) छन्दसीत्यनुवर्त्तते । जायत इति जनिमा । जन्म । म्रियत इति मरिमा मृत्युः ॥

(१५०) वयति वस्त्राणि येन स वेमा । तन्तुवायदण्डः । वस्त्रनिर्माणसामग्री वा । सर्वत्र वचनाच्छन्दसीति निवृत्तम् ॥

(१५१) सप्तामी मनिनन्ता निपात्यन्ते । म्नायतेऽभ्यस्यते येन तत् नाम संज्ञा । स्वार्थे वार्त्तिकेन धेयट् । नामैव नामधेयम् । सिनोति बध्नातीति सीमा । अवधिर्वा । व्ययति संवृणोतीति व्योम । अन्तरिक्षं वा । रौति शब्दयतीति रोम । लूयते छिद्यते तल्लोम । गात्रकेशा वा । पिबतीति पाप्मा । किल्बिषं वा । धातोः पुक् । ध्यायते स ध्यामा परिमाणं । तेजो वा । बाहुलकात्—यक्षयति पूजयतीति यक्ष्मा । राजरोगो वा । सुवति प्रेरयतीति सोमा । चन्द्रो वा । हूयतेऽसौ होमा । आहुतिर्वा । दधाति यद्यस्य वेति धाम स्थानं तेजो वा ॥

For Private And Personal Use Only

मिथुने मनिः ॥१५२॥ सुशर्मा । सुधर्मा ॥१५२॥
सातिभ्यां मनिन्मनिणौ ॥१५३॥ साम । आत्मा ॥१५३॥
हनिमशिभ्यां सिकन् ॥१५४॥ हंसिका । मक्षिका ॥१५४॥
कोररन् ॥ १५५ ॥ कवरः ॥ १५५ ॥
गिर उडच् ॥ १५६ ॥ गरुडः ॥ १५६ ॥
इन्देः कमिन्नलोपश्च ॥ १५७ ॥ इदम् ॥ १५७ ॥
कायतेर्डिमिः ॥ १५८ ॥ किम् ॥ १५८ ॥

(१५२) यत्रोपसर्गौ धातुक्रियया सम्बद्धस्तत् मिथुनम् । तस्मिन् सत्युक्तेभ्यो वक्ष्यमाणेभ्यश्च धातुभ्यो मनिः प्रत्ययः स्यान्नतु मनिन् । स्वर-भेदार्थो नियमः । सुष्ठु शृणातीति सुशर्म्मा । राजविशेषो वा । सुधरतीति सुधर्मा । इत्यादि ॥

(१५३) स्यति कर्माणि समापयतीति सामवेदभेदो वा । अतति निरन्तरं कर्मफलानि प्राप्नोति व्याप्नोति वा स आत्मा । आत्मने हित-मात्मनीनम् ॥

(१५४) हन्तीति हंसिका । हंसस्त्री वा। मशति शब्दयतीति रोषं करोति वा सा मक्षिका । प्रसिद्धा । जातिर्वा ॥

(१५५) कौत्युपदिशतीति कबरः । पाठको वा । केशविन्यासः कबरो । अन्यत्र कबरा कन्या पाठिकेत्यर्थः ॥

(१५६) गिरति निगलतीति गरुडः । पक्षिभेदो वा ॥

(१५७) इन्दति परमैश्वर्यहेतुर्भवतीति, इदम् । प्रत्यक्षविषयबोधकः सर्वनामसंज्ञको वा ॥

(१५८) कायति शब्दयतीति किम् । प्रश्नाद्यर्थे वा ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् ॥१५९॥ वस्त्रम् ।अस्त्रम् ।छत्रम् ॥१५९॥

भ्रस्जिगमिनमिहनिविश्यशां वृद्धिश्च ॥ १६० ॥ भ्राष्ट्रः । गान्त्रम् । नान्त्रम् । हान्त्रम् । वेष्ट्रम् । आष्ट्रम् ॥ १६० ॥

दिवेर्द्युच्च॥ १६१ ॥ द्यौत्रम् ॥ १६१ ॥

उषिखनिभ्यां कित् ॥१६२॥ उष्ट्रः । खात्रम् ॥ १६२ ॥

सिविमुच्योष्टेरू च ॥१६३॥ सूत्रम् । मूत्रम् ॥ १६३ ॥

(१५९) वस्त आच्छाद्यत इति वस्त्रम् । अस्यति क्षिपतीति, अस्त्रम् । छादयति घर्मादिकमपवारयतीति छत्रमिति प्रसिद्धम् । इस्मन्त्रन्क्विषुचेति ह्रस्वादेशः । पतति यो गच्छति येन वा तत्पत्रम् । वाहनं वा। राजतेऽसौ राष्ट्रः राष्ट्रं राज्यं देशो वा। जातिविशेषो वा । अन्योपि । गच्छत्यनया सा गन्त्री । महच्छकटं वा । पिबत्यनेन तत् पात्रम् । पाति रक्षतीति पात्रः सज्जनो वा । दशति यया सा दंष्ट्रा दन्तो वा । इत्यादि ॥

(१६०) भृज्जति यत्रेति भ्राष्ट्रः । अम्बरीषो वा । गच्छति येन तद्गान्त्रम् । शकटं वा । नमति येन तन्नान्त्रम् । स्तोत्रं वा । हन्यते तत् हान्त्रम् । मरणं वा । विशन्ति यत्रेति वेष्ट्रम् । लोको वा । अश्नुते व्याप्नोतीति आष्ट्रम् । आकाशो वा ॥

(१६१) वृद्धिरित्यनुवर्त्तते । दीव्यति द्योतते प्रकाशते तद् द्यौत्रम् ॥

(१६२) ओषति दहत्युष्ट्रः । पशुजातिभेदो वा । खन्यते तत् खात्रम् । खनित्रम् । जलाधारविशेषो वा । जनसनखनामित्यात्वम् ॥

(१६३) सीव्यति येन यदर्थं बध्नाति तत् सूत्रम् । तन्तुः । शास्त्रैकदेशो वा । मुच्यते यत्तत् मूत्रम । प्रस्रावो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अमिचिमिशसिभ्यः क्तः ॥ १६४ ॥ अन्त्रम् । चित्रम् । मित्रम् । शस्त्रम् ॥ १६४ ॥

पुवो ह्रस्वश्च ॥ १६५ ॥ पुत्रः ॥ १६५ ॥

स्त्यायतेर्ड्रट् ॥ १६६ ॥ स्त्री ॥ १६६ ॥

गुधृवीपचिवचियमिसदिक्षदिभ्यः स्त्रः ॥ १६७ ॥ गोत्रम् । गोत्रा । धर्त्रम् । वेत्रम् । पक्त्रम् । वक्त्रम् । यन्त्रम् । सत्रम् । क्षत्रम् ॥ १६७ ॥

(१६४) अमति जानाति प्राप्नोति येन तत् अन्त्रम् । उदरनाड़ी वा। चीयते तत् चित्रम् । चित्रा । नक्षत्रं वा । चैत्रो मासः । मिनोति मान्यं करोतीति मित्रम् । सुहृद्वा । नित्यनपुंसकम् । क्वचित् पुंल्लिङ्गो वा। शत्रो मित्र इत्यादिषु । अर्यम्मित्रम् । इर्यम्मित्रम् । शोभनानि मित्राण्यस्याः सन्तीति सुमित्रा तस्या अपत्यं सौमित्रिः । बाह्वादित्वादिञ् । शंसति छिनत्तीति येन तत् शस्त्रम् । आयुधं वा ॥

(१६५) पुनाति पवित्रं करोतीति पुत्रः । आत्मजो वा ॥

(१६६) स्त्यायति शब्दयति गुणान् गृह्णाति वा सा स्त्री । प्रसिद्धा भार्य्या वा ।

(१६७) गवते शब्द्यत इति गोत्रम् । नाम । वंशो वा । गोत्रा पृथिवी । धरतीति धर्त्रम् । गृहं वा । वेति गच्छतीति वेत्रम् । लताविशेषो वा । पचति येन यत्र वा तत् पक्त्रम् । गार्हपत्यं वा । वक्ति येन तद् वक्त्रम् । मुखं वा। यच्छति उपरमति येन तद्यन्त्रम् । कलाविशेषो वा । सीदन्ति यत्रेति सत्रम् । यज्ञो वा । सतः सत्पुरुषान् त्रायते तत् सत्रमिति व्युत्पत्यन्तरम्। क्षद सौत्रो धातुः । क्षदति रक्षतीति क्षत्रम् । वर्णभेदो वा । क्षतात्त्रायत इत्यपि ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हुयामाश्रुभसिभ्यस्त्रन् ॥१६८॥ होत्रम् । यात्रा । मात्रा । श्रोत्रम् । भस्त्रा ॥ १६८ ॥

गमेरा च ॥ १६९ ॥ गात्रम् ॥ १६९ ॥

दादिभ्यश्छन्दसि ॥ १७० ॥ दात्रम् । पात्रम् ॥ १७० ॥

भूवादिगृभ्यो णित्रन् ॥ १७१ ॥ भावित्रम् । वादित्रम् । गारित्रम् ॥ १७१ ॥

चरेर्वृत्ते ॥ १७२ ॥ चारित्रम् ॥ १७२ ॥

अशित्रादिभ्य इत्रोत्रौ ॥ १७३ ॥ अशित्रम् । वहित्रम् धरित्री । त्रोत्रम् । वरुत्रम् ॥ १७३ ॥

---

(१६८) हूयत इति होत्रं होमः । यायत इति यात्रा गमनं वा । मातीति मात्रा । मानं भूषणं वा । श्रूयतेऽनेन तत् श्रोत्रम् । कर्णं वा । बिभस्ति दीप्यते यया सा भस्त्रा । अग्निज्वलनो वा ॥

(१६९) गच्छति चेष्टतेऽनेनेति गात्रम् । अवयवः । शरीरं वा ॥

(१७०) दाति लुनाति तत् दात्रम् । धान्यादिछेदनसाधनं वा । पिबत्यनेनेति पात्रम् । योग्यो भाजनं वा । पूर्वत्रापि पात्रमिति साधितम् । तत्र प्रत्ययस्य षित्वात्पात्री । ब्राह्मणीत्यपि साधितम् । क्षयति नश्यति निवासहेतुर्भवतीति क्षेत्रम् । केदारः । कलत्रं वा । एवमन्येपि शब्दा द्रष्टव्याः ।

(१७१) भवतीति भावित्रम् । लोकत्रयी वा । वाद्यते तद्वादित्रम् । तूर्यादिर्वा । गीर्य्यते भक्ष्यते तद् गारित्रम् । ओदनो वा ॥

(१७२) चरतीति चारित्रम् । वृत्तान्तम् । समाचारो वा । इत्रच्प्रत्यये चरित्रं सुशीलम् ॥

(१७३) अश्यादिभ्य इत्रः । अश्नुते व्याप्नोतीति अशित्रम् । चरुर्वा । कटतीति कटित्रम् । कवचभेदो वा । वहति येन तद्वहित्रम् । वाहनं वा । बध्नातीति बधित्रम् । कामो वा । धरतीति धरित्री । पृथिवी वा । त्रादिभ्य उत्रः । त्रायते येन तत्त्रोत्रम् । प्रहारो वा । लुनाति छिनत्ति येन तल्लोत्रम् । चौरचिन्हं वा । वृणोतीति वरुत्रम् । प्रावरणं वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अमेर्द्विषति चित् ॥ १७४ ॥ अमित्रः ॥ १७४ ॥
आः समिण्निकषिभ्याम् ॥१७५॥ समया । निकषा ॥१७५॥
चितेः कणः कश्च ॥ १७६ ॥ चिक्कणम् ॥ १७६ ॥
सूचेः स्मन् ॥ १७७ ॥ सूक्ष्मम् ॥ १७७ ॥
पातेर्डुमसुन् ॥ १७८ ॥ पुमान् ॥ १७८ ॥
रुचिभुजिभ्यां किष्यन् ॥१७९॥ रुचिष्यम् । भुजिष्यः ॥१७९॥
वसेस्तिः ॥ १८० ॥ वस्तिः ॥ १८० ॥

(१७४) शत्रौ वाच्येऽमेरित्रः । अमति गच्छतीति अमित्रः । शत्रुः ॥

(१७५) समेतीति समया । निकषति हिनस्तीति निकषा । समीपवाचकौ वा । स्वरादिपाठादनयोरव्ययत्वम् । बाहुलकाद्—दीव्यतीति दिवा । दिनं वा । दुष्यतीति दोषा । रात्रिर्वा । अनयोरपि तत्रैव पाठादव्ययत्वम् । स्वदते स्वादु क्रियते या सा स्वधा । न्यायेनैश्वर्यक्रिया । तृप्तिर्वा । धातोरीस्य धः ॥

(१७६) चेतति जानाति येन तत् चिक्कणम् । स्निग्धं वा ॥

(१७७) सूचयति पैशुन्यं करोतीति सूक्ष्मम् । अत्यल्पं वा ॥

(१७८) पाति रक्षतीति पुमान् । पुमांसौ । पुमांसः । असुङादिकार्यम् । शोभनः पुमान् यस्याः सा सुपुंसी । असुङ् । उगितत्वान् ङीप् ॥

(१७९) रोचते तत्, रुचिष्यम् । इष्टं वा । भुनक्तीति भुजिष्यः । दासो वा ॥

(१८०) वस्त आच्छादयति सा वस्तिः । वसनस्य दशाः कोणो नाभेरधोभागो वा । बाहुलकात्—शास्ति शिक्षत इति शास्तिः । राजदण्डो वा । यजतीति यष्टिः । यष्टी वा । काष्ठदण्डो वा । अस्यते क्षिप्यते या सा, अस्तिः । अगं वृक्षमस्यत्युत्पाटयति स अगस्तिः । मुनिर्वा । तस्यापत्यमागस्त्यः । शकन्ध्वादित्वादत्र पररूपम् । पुलं महत्त्वमसते गच्छति प्राप्नोतीति पुलस्तिः । ऋषिर्वा । तस्यापत्यं पौलस्त्यः । गभमन्धकारमस्यतीति गभस्तिः । किरणो वा । दूयते परितापयतीति दूतिः । दूती वा । इतस्ततः समाचारज्ञापिका स्त्री वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सावसेः ॥ १८१ ॥ स्वस्ति ॥ १८१ ॥

वौ तसेः ॥ १८२ ॥ वितस्तिः ॥ १८२ ॥

पदिप्रथिभ्यां नित् ॥ १८३ ॥ पत्तिः । प्रथितिः ॥ १८३ ॥

दृणातेर्ह्रस्वः ॥ १८४ ॥ दृतिः ॥ १८४ ॥

कॄतॄकृपिभ्यः कीटन्॥१८५॥ किरीटम्। तिरीटम्। कृपीटम्।१८५॥

रुचिवचिकुचिकुटिभ्यः कितच् ॥ १८६ ॥ रुचितम् । उचितम् । कुचितम् । कुटितम् ॥ १८६ ॥

कुटिकुषिभ्यां क्मलन्॥१८७॥ कुट्मलम्। कुष्मलम्।१८७॥

---

(१८१) सुष्टु, अस्ति वर्त्तते इति स्वाती । कल्याणं वा । बहुलवचनाद्—भूमावनिषेधः । स्वरादित्वादव्ययत्वं च ॥

(१८२) विशेषेण तस्यत्युपक्षिपति वा सा वितस्तिः । द्वादशाङ्गुलं परिमाणं वा ॥

(१८३) पद्यते गच्छत्यसौ पत्तिः । पदातिः । पुरुषो वा । प्रथ्यते या सा प्रथितिः । प्रख्यातिर्वा । तितुत्रेति सूत्रेऽग्रहादीनामिति वार्तिकेनेट् ॥

(१८४) दीर्यतेऽसौ दृतिः । चर्ममयं पात्रं वा ॥

(१८५) किरति विक्षिपतीति किरीटम् । मुकुटं । शिरोवेष्टनं वा । तरतीति तिरीटम् । शिरोवेष्टनम् । लोध्रो वा । कल्पतेऽसौ कृपीटम् । कुक्षिरुदकं वा । बाहुलकादत्र लत्वाभावः ॥

(१८६) रोचते तत् रुचिरम् । मिष्टं वा । वक्तुं योग्यमुचितम् । योग्यं वा । कोचति शब्दतारं करोतीति कुचितम् । परिमितं वा । कुटतीति कुटितम् । कुटिलं वा ॥

(१८७) कुटतीति कुड्मलम् । मुकुलम् (फूलती हुई कली) इतिप्रसिद्धम् । कुष्णाति निष्कर्षतीति कुष्मलम् । पर्णं वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुषेर्लश्च ॥ १८८ ॥ कुल्मलम् ॥ १८८ ॥
सर्वधातुभ्योऽसुन् ॥ १८९ ॥ चेतः । सरः । सदः ॥ १८९ ॥
रपेरत एच्च ॥ १९० ॥ रेपः ॥ १९० ॥

(१८८) कुष्णातीति कुल्मलम् । पापं वा ॥

(१८९) वर्चते दीप्यतेऽसौ वर्चः । तेजः । पुरीषं वा । रक्षतीति रक्षः । पालको दुष्टो वा । प्रज्ञादित्वादणि स एव राक्षसः । रुणद्धि येन स रोधः । तटो वा । चेतति जानाति येन तत्, चेतः । चित्तं वा । सरन्ति गच्छन्त्यापो यत्र तत् सरः । तडागो वा । स्त्रीत्वविवक्षायां गौरादित्वात्सरसी । महासरो वा । सरस्वान् समुद्रः । सरो विज्ञानमुदकं वा विद्यतेऽस्यां सा सरस्वती । वाक् । नदी वा । रोदतीति रोदः । गौरादित्वाद्रोदसी । द्यावापृथिव्यौ वा । वेति गच्छतीति वयः । कालकृताऽवस्था वा । अथवा वेति खादतीति वयः । वय एव वायसः काकः । प्रज्ञादित्वादण् । सीदन्त्यत्रेति सदः । सभा वा । एति प्राप्नोतीति, अयः । लोहं वा । अयः कामयतेऽसावयस्कान्तश्चुम्बकमणिः । अनिति जीवति येनेति अनः । ओदनं पक्वान्नं वा । अनो महत्सम्पद्यते यत्र तन्महानसम् । पाकस्थानम् । समासान्तष्टच् । ताम्यति काङ्क्षति येन तत् तमः । गुणः क्लेशो रात्रिरन्धकारो वा । तमशब्दोऽच्प्रत्ययान्तोऽदन्तोऽपि दृश्यते । महति पूजयति पूज्यो भवति वेति महः । महद्वा । महसी । महांसि । अच्प्रत्ययेऽकारान्तोऽपि । सहते यत्रेति सहः । बलं । मार्गशीर्षो वा । सहसा बलेन सह प्रवर्तते स साहसिको दस्युर्दुष्टकर्मा वा । सहो बलं विद्यते यत्रेति सहस्यः । पौषो मासः । तपति दुःखीभवति तप्यते समर्थो वा भवति येन तत् तपः । धर्मसेवनम् । माघमासो वा । तपसि साधुस्तपस्यः । फाल्गुनो मासः । ग्रीष्मेऽकारान्तस्तपशब्दः । मिमीते येन स माः । मासो वा । इत्यादि ॥

(१९०) रप्यत उच्यत इति रेपः । अवद्यम् । वचो वा । बहुलवचनादन्यत्रापि । पीयते तत् पयः । उदकम् । दुग्धं वा । पयोऽस्या अस्तीति पयस्विनी गौः । पयस्वी तड़ागः । विनिः । धातोरीत्वम् । पुनर्गुणोऽसत्ययादेशः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अशोर्देवने युट् च ॥ १९१ ॥ यशः ॥ १९१ ॥
उब्जेर्बले बलोपश्च ॥ १९२ ॥ ओजः ॥ १९२ ॥
श्वेः सम्प्रसारणं च १९३ ॥ शवः ॥ १९३ ॥
श्रयतेः स्वाङ्गे शिरः किच्च ॥ १९४ ॥ शिरः ॥ १९४ ॥
अर्त्तेरुच्च ॥ १९५ ॥ उरः ॥ १९५ ॥
व्याधौ शुट् च ॥ १९६ ॥ अर्शः ॥ १९६ ॥
उदके नुट् च ॥ १९७ ॥ अर्णः ॥ १९७ ॥
इण आगसि ॥ १९८ ॥ एनः ॥ १९८ ॥

(१९१) अश्यते दीव्यते क्रीडादि क्रियते येन तत्, यशः । कीर्त्तिर्वा ॥

(१९२) उब्जति कोमलो भवतीति ओजः । पराक्रमो वा । ओजसा वर्त्तते औजसिकः । ठक् ॥

(१९३) श्वयति गच्छतीति शवः । मृतकशरीरं वा । बाहुलकात्—वहति यत् इति ऊधः । गवादेर्दुग्धस्थानं वा । धातोः सम्प्रसारणे कृते दीर्घत्वं धकारश्चान्तादेशः । घट इवोधो यस्याः सा घटोध्नी । कुण्डोध्नी । गौर्महिषी वा ॥

(१९४) श्रीयत आश्रीयते तत् शिरः । मस्तकम् । शिरसी । शिरांसि ॥

(१९५) स्वाङ्ग इत्यनुवर्त्तते । ऋच्छति प्राप्नोति येन तत्, उरः । हृदयस्थानं वा । पिच्छादित्वादिलच् । बहूरोऽस्यास्तीत्युरसिलः ॥

(१९६) ऋच्छति प्राप्नोति दुखं येन तत्, अर्शः । गुदरोगो वा । अर्शोऽस्यास्तीत्यर्शसः पुमान् । अर्श आदित्वादच् ॥

(१९७) अर्तेरित्येव । ऋच्छति गच्छतीत्यर्णो जलम् । अर्णोऽस्मिन्नस्तीत्यर्णवः समुद्रः । वप्रत्यये सलोपः ॥

(१९८) ईयते प्राप्यते दुःखमनेन तदेनः । पापं वा ॥

For Private And Personal Use Only

रिचेर्धने घिच्च ॥ १९९ ॥ रेक्णः ॥ १९९ ॥

चायतेरन्ने ह्रस्वश्च ॥ २०० ॥ चनः ॥ २०० ॥

वृङ्शीङ्भ्यां रूपस्वाङ्गयोः पुट् च ॥२०१॥वर्पः।शेपः।२०१॥

स्रुरिभ्यां तुट् च ॥ २०२ ॥ स्रोतः । रेतः ॥ २०२ ॥

पातेर्बले जुट् च ॥ २०३ ॥ पाजः ॥ २०३ ॥

उदके थुट् च ॥ २०४ ॥ पाथः ॥ २०४ ॥

अन्ने च ॥ २०५ ॥ पाथः ॥ २०५ ॥

अदेर्नुम् धौ च ॥ २०६ ॥ अन्धः ॥ २०६ ॥

---

(१९९) रिणक्ति व्ययं करोति यत् तत् रेक्णः । सुवर्णं वा । घित्वात्कुत्वम् ॥

(२००) चायते पूज्यतेऽनेन तत् चनो भक्तम् । प्रत्ययस्य नुडागमे सति यलोपो ह्रस्वश्च ॥

(२०१) व्रियते स्वीक्रियते तत् वर्पो रूपम् । शेते येन तत् शेपः । लिङ्गेन्द्रियं वा । अकारान्तोऽपि मेढ्रवाची शेपशब्दो दृश्यते । शुन इव शेपोऽस्य स शुनःशेपो मुनिः । षष्ठ्या अलुक् । बाहुलकात्—वर्णव्यत्यये वर्फः । शेफ इत्यपि सिद्धम् ॥

(२०२) स्रवति चलतीति स्रोतः । स्वतो जलक्षरणं वा । रीयते स्रवतीति रेतः । वीर्यं वा ॥

(२०३) पाति रक्षतीति पाजः । बलं वा ॥

(२०४) पातेरेव । पातीति पाथो जलम् ॥

(२०५) थुट् । पाति रक्षतीति पाथो भक्तम् ॥

(२०६) अन्न इत्यनुवर्त्तते । अद्यते भक्ष्यते तदन्धोऽन्नमोदनो वा ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्कन्देश्च स्वाङ्गे ॥ २०७ ॥ स्कन्धः ॥ २०७ ॥

आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा ॥ २०८ ॥ अप्नः । अपः । आपः ॥ २०८ ॥

रूपे जुट् च ॥ २०९ ॥ अब्जः ॥ २०९ ॥

उदके नुम्भौ च ॥ २१० ॥ अम्भः ॥ २१० ॥

नहेर्दिवि भश्च ॥ २११ ॥ नभः ॥ २११ ॥

इण आगोऽपराधे च ॥ २१२ ॥ आगः ॥ २१२ ॥

अमेर्हुक् च ॥ २१३ ॥ अंहः ॥ २१३ ॥

रमेश्च ॥ २१४ ॥ रंहः ॥ २१४ ॥

---

(२०७) स्कन्दते गच्छति चेष्टते शुष्यति वा येन तत् स्कन्धो बाहुमूलं वृक्षावयवो वा । अकाराऽन्तोप्ययम् ॥

(२०८) आप्यते सुखं येन तत् अप्नः । अपः । अपत्यं सुकर्म वा । ह्रस्वस्यापि विकल्पे । आप इत्यपि भवति । आपोभिर्मार्जनमित्यादि सत्प्रयोगदर्शनात् ॥

(२०९) आप इत्येव । आप्यते यत् तदब्जो रूपम् । अद्भ्यो जात इति निर्वचने अब्जः । कमलं वा ॥

(२१०) आप इत्येव । आप्यते तत् अम्भः । उदकम् । अम्भसा वर्त्तत इत्याम्भसिको मत्स्यः ॥

(२११) नह्यति घर्मं बध्नातीति नभो मेघधूल्यादियुक्त आकाशः । श्रावणमासो वा । नभोऽस्मिन् शुद्धमस्तीति नभस्यो भाद्रो मासः ॥

(२१२) ईयते प्राप्यते ज्ञायते वा तत्, आगोऽपराधो दण्डो वा ॥

(२१३) अमन्ति प्राप्नुवन्ति दुःखं येन तत्, अंहः । पापं वा ॥

(२१४) चात्—हुक् । रमते येन तत् रंहः । वेगो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देशेऽह च ॥ २१५ ॥ रहः ॥ २१५ ॥

अञ्च्यञ्जियुजिभृजिभ्यः कुश्च ॥२१६॥ अङ्कः । अङ्गः । योगः । भर्गः ॥ २१६ ॥

भूरञ्जिभ्यां कित् ॥ २१७ ॥ भुवः । रजः ॥ २१७ ॥

वसेर्णित् ॥ २१८ ॥ वासः ॥ २१८ ॥

चन्देरादेश्च छः ॥ २१९ ॥ छन्दः ॥ ॥ २१९ ॥

पचिवचिभ्यां सुट् च ॥ २२० ॥ पक्षः । वक्षः ॥ २२० ॥

(२१५) चाद्रमेरसुन् । रमन्तेऽस्मिन्निति रहः । एकान्तो विश्वासदेशो वा । रह एकान्ते भवं रहस्यम् । वेदान्तं वा । देशादन्यत्र रहोऽव्ययं शब्दान्तरं वास्ति । रहो मैथुनसमयस्तत्र भवं रहस्यं मैथुनम् । दिगादित्वाद्यत् ॥

(२१६) अञ्चति गच्छति येन तत् अङ्कः । सङ्ख्याद्योतकं चिन्हं वा । अनक्ति व्यक्तीकरोतीति अङ्गः । पक्षो वा । अवयवेऽङ्गशब्दोऽदन्तः । युज्यते स योगः । समाधिः । कालो वा । भर्जति पक्वं भवतीति भर्गः । प्रजापतिः । तेजो वा । बाहुलकात्—उच्यते यत्र तत् ओकः । स्थानं वा । न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वम् ॥

(२१७) भवन्ति यस्मिन्निति भुवः । अन्तरिक्षं वा । रजति तत् रजः । लोकः । सूक्ष्मधूलिः । स्त्रीपुष्पम् । गुणो वा । आकारान्तश्च ॥

(२१८) वस्त आच्छादयति शरीरादिकमनेन तत् वासो वस्त्रं वा । असुनो णिद्वद्भावाद्वृद्धिः ॥

(२१९) चन्दति हृष्यति येन दीप्यते वा तत् छन्दः । गायत्र्यादि । कपटमिच्छाऽभिप्रायो वशो वा । छन्दानुवृत्तिः । इत्यादि प्रयोगदर्शना-दकारान्तोऽप्ययं शब्द इति मन्तव्यम् ॥

(२२०) पचतीति पक्षः । पूर्वोत्तरपक्षौ वा । वक्ति येन तद्वक्षः । हृदयं वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि॥२२१॥ वक्षाः। हासाः। धासाः।२२१॥
इणश्चासिः ॥ २२२ ॥ अयाः ॥ २२२ ॥
मिथुनेऽसिः ॥ २२३ ॥ सुपयाः । सुयशाः ॥ २२३ ॥
नञि हन एह च ॥ २२४ ॥ अनेहाः ॥ २२४ ॥
विधाञो वेध च ॥ २२५ ॥ वेधाः ॥ २२५ ॥
नुवो धुट् च ॥ २२६ ॥ नोधाः ॥ २२६ ॥
गतिकारकोपपदयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वञ्च ॥ २२७ ॥
सुतपाः । जातवेदाः ॥ २२७ ॥

(२२१) सुट् । वहति भारमिति वक्षाः । अनड्वान् वा । हीयते हीनो भवतीति हासाः । चन्द्रमा वा । दधातीति धासाः । पर्वतो वा ॥

(२२२) एति प्राप्नोति अयाः । अग्निर्वा । स्वरादिपाठादव्ययम् । अत एव दीर्घादिरासिः प्रत्ययः ॥

(२२३) यत्रोपसर्गो धातुक्रियया संयुक्तस्तन्मिथुनम् । तत्र सति येभ्यो धातुभ्योऽसुन् विधीयते तेभ्यः सर्वेभ्योऽसिरेव स्यात् । स्वरभेदार्थं सूत्रमिदम् । सुपयाः । सुतपाः । सुपेशाः । न्योजाः । सुजवाः । सस्रोताः । इत्यादयो द्रष्टव्याः ॥

(२२४) न हन्यते विच्छिन्नो न भवतीत्यनेहाः । कालो वा । अनेहसौ । अनेहसः ॥

(२२५) विशेषेण दधातीति वेधाः । वेधसौ । वेधसः । वेधसम् । विद्वान् । विधाता । जगदीश्वरो वा ॥

(२२६) नौति स्तौति नूयते स्तूयते वा स नोधाः । ऋषिर्वा ॥

(२२७) गतिकारकोपपदाद्धातोरसिः प्रत्ययो भवति तस्मिन् सति गतिकारकोपपदयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । उत्तरपदप्रकृतिस्वरस्यापवादः । सुतपाः । सुतेजाः । सुवक्षाः । कारके । उग्रतेजाः । हिरण्यरेताः । जातवेदाः । सर्ववेदाः । विश्ववेदाः । वृद्धेभ्यः शृणोतीति वृद्धश्रवाः । विष्टर आसने शृणोतीति विष्टरश्रवाः । इत्यादि ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चन्द्रे मो डित् ॥ २२८ ॥ चन्द्रमाः ॥ २२८ ॥

वयसि धाञः ॥ २२९ ॥ वयोधाः ॥ २२९ ॥

पयसि च ॥ २३० ॥ पयोधाः ॥ २३० ॥

पुरसि च ॥ २३१ ॥ पुरोधाः २३१ ॥

पुरूरवाः ॥ २३२ ॥

चक्षेर्बहुलं शिच्च ॥ २३३ ॥ नृचक्षाः । २३३ ॥

उषः किच्च ॥ २३४ ॥ उषः । २३४ ॥

दमेरुनसिः ॥ २३५ ॥ दमुनाः । २३५ ॥

(२२८) चन्द्रमानन्दं मिमीतेऽसौ चन्द्रमाः। सोमो वा । चन्द्रमसौ। चन्द्रमसः ॥

(२२९) वयो दधातीति वयोधाः । तरुणो वा ॥

(२३०) धाञ इत्येव । पयो दधातीति पयोधाः। समुद्रो वा । मेघविशेषः । स्तनो वा ॥

(२३१) धाञ इत्येव। पुरोऽग्रे यजमानं दधातीति पुरोधाः। पुरोहितो वा॥

(२३२) पुरु बहु रौत्युपदिशति ब्रवीति वा स पुरूरवाः । राजर्षिर्वा ॥

(२३३) विशेषेण चष्टेऽसौ विचक्षाः । उपाध्यायो वा । नृन् चष्टे पश्यति ख्याति वा स नृचक्षाः । ईश्वरो दृष्टो वा । शित्वाभावपक्षे । आचष्टेऽसौ । आख्याः । प्रख्याः । प्रजापतिर्वा ॥

(२३४) असिः । ओषति दहतीति उषः । कर्णच्छिद्रं । पर्वतभेदः । स्त्रियां सूर्योदयात्प्राक् प्रभातप्रकाशः। उषा वा । उषःकाले बुध्यत इत्युषर्बुधः । अग्निर्बालः। संयमी वा । कप्रत्ययान्ताट्टापि कृते। उषा रात्रिरित्यपि भवति॥

(२३५) दाम्यत्युपशमयतीति दमुनाः । अग्निर्वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अङ्गेरसिः ॥ २३६ ॥ अङ्गिराः । २३६ ॥

सर्त्तेरप्पूर्वादसिः ॥ २३७ ॥ अप्सराः ॥ २३७ ॥

विदिभुजिभ्यां विश्वेऽसिः ॥ २३८ ॥ विश्ववेदाः । विश्वभोजाः ॥ २३८ ॥

वशेः कनसिः ॥ २३९ ॥ उशनाः । २३९ ॥

इत्युणादिषु चतुर्थः पादः ॥

———:o:———

(२३६) अङ्गति प्राप्नोति जानाति वा स, अङ्गिराः । ईश्वरोऽग्निर्ऋषिभेदो वा । तस्यापत्यमाङ्गिरसः । असिप्रत्ययस्य रुडागमः ॥

(२३७) अप्सरति विरुद्धं गच्छतीत्यप्सराः । उपसर्गान्त्यलोपः । अथवाऽप्सु जलेषु प्राणेषु वा सरन्तीत्यप्सरसः । किरणा वा । अथवा न प्सान्ति भक्षयन्ति रक्षां कुर्वन्तीत्यप्सरसः । प्रत्ययस्य रुट् । नित्यबहुवचनान्तः स्त्रीलिङ्गश्च ॥

(२३८) विश्वं सर्वं वेत्ति जानातीति विश्ववेदाः । जगदीश्वरो वा । विश्वे विद्यते विश्वं वा विन्दति स विश्ववेदाः । अग्निर्वा । विश्वं भुनक्ति । प्रलयसमये कारणरूपेण स्वात्मनि स्थापयति वा विश्वं पालयतीति विश्वभोजाः । ईश्वरो राजा वा ॥

(२३९) वष्टि कामयते स उशनाः । शुक्राचार्यो वा । सम्प्रसारणादिकार्यम् ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे चतुर्थः पादः ॥

———:o:———

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अदिभुवो डुतच् ॥ १ ॥ अद्भुतम् । १ ॥

गुधेरूमः ॥ २ ॥ गोधूमः । २ ॥

मसेरूरन् ॥ ३ ॥ मसूरः । ३ ॥

स्थः किच्च ॥ ४ ॥ स्थूरः । ४ ॥

पातेरतिः ॥ ५ पातिः । ५ ॥

वातेर्नित् ॥ ६ ॥ वातिः । ६ ॥

अर्त्तेश्च ॥ ७ ॥ अरतिः ॥ ७ ॥

तृहेः क्नो हलोपश्च ॥ ८ ॥ तृणम् ॥ ८ ॥

वृञ्लुटितनिताडिभ्य उलच् तण्डश्च ॥९॥ तण्डुलाः ॥९॥

(१) अदित्यव्ययं कदाचिदर्थे । अद् भवतीत्यद्भुतम् । आश्चर्यम् । अद्भुतमधीते । अद्भुताध्यापकः ॥

(२) गुध्यति वेष्टयतीति गोधूमः । अन्नविशेषो वा । गोधूमस्य विकारो गोधूममयः ॥

(३) मस्यति परिणमतेऽसौ मसूरः । व्रीहिभेदो वेश्या वा ॥

(४) तिष्ठतीति स्थूरः । मनुष्यो वा । तस्यापत्यं स्थौर्यः ॥

(५) पाति रक्षतीति पातिः । स्वामी । सम्पातिः । पक्षिराजो वा ॥

(६) वाति गच्छतीति वातिः । सूर्यश्चन्द्रो वा ॥

(७) अर्यते गम्यते सा अरतिः । उद्वेगो वा ॥

(८) तृह्यते हन्यते तत्, तृणम् । प्रसिद्धमेव ॥

(९) व्रियन्ते लुट्यन्ते तन्यन्ते ताड्यन्ते वा ते तण्डुलाः । प्रसिद्धा वा । वृञादीनां स्थाने तण्डादेशः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दंसेष्टटनौ न आ च ॥ १० ॥ दासः ॥ १० ॥

दंशेश्च ॥ ११ ॥ दाशः ॥ ११ ॥

उदि चेर्डैसिः ॥ १२ ॥ उच्चैः ॥ १२ ॥

नौ दीर्घश्च ॥ १३ ॥ नीचैः ॥ १३ ॥

सौ रमेः क्तो दमे पूर्वपदस्य च दीर्घः ॥१४॥ सूरतः ॥१४॥

पूञो यण् णुग्घ्रस्वश्च ॥ १५ ॥ पुण्यम् ॥ १५ ॥

स्रंसेः शिः कुट् किच्च ॥ १६ ॥ शिक्यम् ॥ १६ ॥

अर्तेः क्युरुच्च ॥ १७ ॥ उरणः ॥ १७ ॥

(१०) दंसयति दशति पश्यति वा स दासः । सेवकः शूद्रो वा । टित्वान् ङीप् । दासी । नकारस्याकारः । नित्करणं पच आद्युदात्तार्थम् ॥

(११) टटनौ नकारस्य चात्वम् । दशति मत्स्यादिकमिति दाशो धीवरः । स्त्रियां दाशी । धीवरी ॥

(१२) उच्चीयते वर्ध्यतेऽसावुच्चैः । महान् वा । स्वरादित्वादव्ययम् ॥

(१३) चेरित्येव । निचीयत इति नीचैः । अधोऽधमो वा । अस्यापि स्वरादित्वादेवाव्ययत्वम् ॥

(१४) सुष्ठु रमत इति सूरतः । उपशान्तः । कृपालुर्वा । दमार्थादन्यत्र सुरतः । क्रीडायुक्तः ॥

(१५) पवते पवित्रो भवति येन तत् पुण्यम् । सुकृतो धर्मो वा ॥

(१६) स्रंसते गच्छतीति शिक्यम् । काचः । छींका इति प्रसिद्धः । तत्र धृतं वस्तु शैक्यम् ॥

(१७) ऋच्छति गच्छतीति उरणः । मेषो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हिंसेरीरन्नीरचौ ॥ १८ ॥ हिंस्रीरः ॥ १८ ॥
उदि दृणातेरलचौ पूर्वपदान्त्यलोपश्च ॥१९॥ उदरम् ॥१९॥
डित्खनेर्मुट् चोदात्तः ॥ २० ॥ मुखम् ॥ २० ॥
अमेः सन् ॥ २१ ॥ अंसः ॥ २१
मुहेः खो मूर्च ॥ २२ ॥ मूर्खः ॥ २२ ॥
नहेर्हलोपश्च ॥ २३ ॥ नखः ॥ २३ ॥
शीङो ह्रस्वश्च ॥ २४ ॥ शिखा ॥ २४ ॥
माङ ऊखो मय च ॥ २५ ॥ मयूखः ॥ २५ ॥

(१८) हिनस्तीति हिंस्रीरः । व्याघ्रो दुष्टो वा । प्रत्ययद्वयं स्वरभेदार्थम् ॥

(१९) उद् दृणाति येनान्नमिति उदरम् । कुक्षिस्थानम् । प्रत्ययभेदोऽत्रापि स्वरभेदार्थः ॥

(२०) खनेरलचौ । तयोर्डित्वं धातोर्मुडागमश्च । तस्योदात्तत्वम् । खनत्यन्नादिकमनेनेति मुखमास्यम् । मुखे भवो मुख्यो रोगः । शरीरावयवाद्यत् । मुखमिवोत्तमं मुख्यम् । शाखादित्वादिवार्थे यः ॥

(२१) अमति गच्छति प्राप्नोति येन स, अंसः । स्कन्धो विभागो वा । अंसोऽस्यास्तीत्यंसलः ॥

(२२) मुह्यति विक्षिप्त इव भवतीति मूर्खः । मूर्खस्य भावो मौर्ख्यं । मूर्खिमा वा । बाहुलकात्–खस्येनादेशाभावः ॥

(२३) नह्यति बध्नाति रुधिरादिकमिति नखः । प्राण्यङ्गं वा ॥

(२४) खः । शेतेऽसौ शिखा । चूडाकेशभेदो ज्वाला वा । ह्रस्वविधानसामर्थ्याद् गुणाऽभावः ॥

(२५) मिमीते मान्यहेतुर्भवतीति मयूखः । किरणः । कान्तिः । करो ज्वाला वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कलिगलिभ्यां फगस्योच्च ॥ २६ ॥ कुल्फः । गुल्फः ॥२६॥

स्पृशेः श्वण्शुनौ पृ च ॥ २७ ॥ पार्श्वः । पर्शुः ॥ २७ ॥

श्मनि श्रयतेर्डुन् ॥ २८ ॥ श्मश्रु ॥ २८ ॥

अश्नोतेरादयश्च ॥ २९ ॥ अश्रु ॥ २९ ॥

जनेष्टन् नलोपश्च ॥ ३० ॥ जटा ॥ ३० ॥

अच् तस्य जङ्घ च ॥ ३१ ॥ जङ्घा ॥ ३१ ॥

हन्तेः शरीरावयवे द्वे च ॥ ३२ ॥ जघनम् ॥ ३२ ॥

क्लिशेरन् लो लोपश्च ॥ ३३ ॥ केशः ॥ ३३ ॥

(२६) कलति संख्यातीति कुल्फः । शरीरावयवो रोगो वा । गलति भक्षयतीति गुल्फः । पादग्रन्थिर्वा ॥

(२७) स्पृशति येन स पार्श्वः । कक्षयोरधोभागो वा । पर्शुः । आयुधं वा ॥

(२८) श्मनि मुखे श्रयतीति, श्मश्रु । श्मश्रुणी । श्मश्रूणि । पुरुषमुखरोमाणि वा ॥

(२९) अश्नुते व्याप्नोतीति, अश्रु । नेत्रजलं वा । डुन् प्रत्ययो रुडागमश्च । एवमन्येऽपि यथायोग्यं द्रष्टव्याः ॥

(३०) जायतेऽसौ जटा । दीर्घाः केशा वा । जटा अस्य सन्तीति जटालः । सिध्मादित्वाल्लच् । जटिलः । पिच्छादित्वादिलच् ॥

(३१) तस्य जनेः । जायतेऽसौ जङ्घा । जानोरधोभागो वा ॥

(३२) हन्ति येन यद् वा हन्यते तज्जघनम् । जानोरुपरिभागो वा । इवार्थे शाखादित्वाद्यः । जघनमिव जघन्यं नीचम् ॥

(३३) क्लिश्यति येन स केशः । शिरलोमानि वा । केशा अस्य सन्तीति केशवः । केशिकः । केशी ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

फलेरितजादेश्च पः ॥ ३४ ॥ पलितम् ॥ ३४ ॥

कृञादिभ्यः संज्ञायां वुन् ॥३५॥ करकः । कटकः । नरकम् । कोरकः ॥ ३५ ॥

चीकयतेराद्यन्तविपर्ययश्च ॥ ३६ ॥ कीचकः । ३६ ॥

पचिमच्योरिच्चोपधायाः ॥ ३७ ॥ पेचकः । मेचकः । ३७ ॥

जनेररष्ठ च ॥ ३८ ॥ जठरम् । ३८ ॥

वचिमनिभ्यां चिच्च ॥ ३९ ॥ वठरः । मठरः । ३९ ॥

ऊर्जिदृणातेरलचौ ॥ ४० ॥ ऊर्दरः । ४० ॥

(३४) फलति निष्पन्नं पक्वमिव भवतीति पलितम् । केशश्वैत्यं वा । फस्य पः ॥

(३५) करोतीति करकः । करका । वृष्टिपाषाणो वा । करको दाडिमः । कमण्डलुर्वा । कटति वर्षत्यावृणोति वा स कटकः । बाहुभूषणम् । शिखरो वा । नृणाति नयतीति नरकम् । पापभागो वा । सरति गच्छतीति सरकम् । गमनं वा । अलति भूषितो भवतीत्यलकम् । शीतादिकं वा । अलति वारयति येभ्यस्तेऽलकाः । कुटिलाः केशा वा । कुरति शब्दयतीति कोरकः । कलिका (कली) इति प्रसिद्धा ॥

(३६) चीकयते सहतेऽसौ कीचकः । वंशभेदो वा ॥

(३७) पचतीति पेचकः । उलूकपक्षी वा । मचते शब्दयतीति मेचकः । कृष्णवर्णो मयूरपक्षचिन्हं वा ॥

(३८) जायतेऽस्मादिति जठरम् । उदरम् । कठिनं वा ॥

(३९) अन्त्यस्य ठः । वक्तीति वठरः । मूर्खो वा । मन्यतेऽसौ मठरः । मुनिभेदो मत्तो वा । तस्यापत्यं माठरः । माठर्यः ॥

(४०) ऊर्क् पराक्रमं रसं वा दृणातीति, ऊर्दरः । शूरो दुष्टो वा । स्वरभेदार्थं प्रत्ययद्वयम् ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कृदरादयश्च ॥ ४१ ॥ कृदरः । मृदरः । सृदरः । ४१ ॥

हन्तेर्युन्नाद्यन्तयोर्घत्वतत्वे ॥ ४२ ॥ घातनः । ४२ ॥

क्रमिगमिक्षमिभ्यस्तुन् वृद्धिश्च ॥ ४३ ॥ क्रान्तुः । गान्तुः । क्षान्तुः ॥ ४३ ॥

हर्यतेः कन्यन् हिरच् ॥ ४४ ॥ हिरण्यम् ॥ ४४ ॥

कृञः पासः ॥ ४५ ॥ कर्पासः ॥ ४५ ॥

जनेस्तुरश्च ॥ ४६ ॥ जर्तुः ॥ ४६ ॥

ऊर्णोतेर्डः ॥ ४७ ॥ ऊर्णा ॥ ४७ ॥

---

(४१) कृत्स्नं दृणातीति कृदरः । कुशूलो वा । मृदं दृणातीति मृदरः । व्याधिर्बिलं वा । सृष्टिं दृणातीति सृदरः सर्पः ॥

(४२) हन्तीति घातनः । मारको वा ॥

(४३) क्रामति पादान् विक्षिपतीति क्रान्तुः । पक्षी वा । गच्छतीति गान्तुः । पथिको वा । आगान्तुरभ्यागतः । क्षमतेऽसौ क्षान्तुः । सहनशीलो वा ॥

(४४) हर्यते काम्यते तत्, हिरण्यम् । सुवर्णं वा ॥

(४५) क्रियत उत्पाद्यतेऽसौ कर्पासः । सस्य भेदो वा । कर्पासस्यविकारः कार्पासं वस्त्रम् । बिल्वादित्वादण् ।

(४६) जायते यत इति जर्तुः । उपस्थेन्द्रियम् । हस्ती वा ॥

(४७) ऊर्णोत्याच्छादयति यया सा, ऊर्णा । अविमेषयो रोमाणि वा । ऊर्णां याति प्राप्नोतीत्यूर्णायुः । मेषो मेषोर्णा कम्बलो वा । ऊर्णा इव नाभिरस्य स ऊर्णनाभः । समासान्तोऽच् ऊर्णनाभिरिति वा । समासान्तस्य विधेरनित्यत्वात् । लूताक्रिर्वा ॥

For Private And Personal Use Only

दधाते र्यन्नुट् च ॥ ४८ ॥ धान्यम् ॥ ४८ ॥

जीर्यतेः क्रिन् रश्च वः ॥ ४९ ॥ जिव्रिः ॥ ४९ ॥

मव्यतेर्यलोपो मश्चापतुट्चालः ॥५०॥ ममापतालः ॥५०॥

ऋजेः कीकच् ॥ ५१ ॥ ऋजीकः ॥ ५१ ॥

तनोतेर्डउः सन्वच्च ॥ ५२ ॥ तितउः ॥ ५२ ॥

अर्भकपृथुकपाका वयसि ॥ ५३ ॥

अवद्यावमाधमार्वरेफाः कुत्सिते ॥ ५४ ॥ अवद्यम् ॥५४॥

(४८) दधाति पुष्णाति लोकानिति धान्यम् । व्रीहिर्वा । धाने पोषणे साधु धान्यमित्यपि ॥

(४९) यो जीर्यति येन वा स जिव्रिः । कालः पक्षी वा । हलि-चेति बाहुलकाद्दीर्घाभावः ॥

(५०) मव्यति बध्नातीति ममापतालः । बन्धनहेतुर्विषयो वा ॥

(५१) अर्जति गच्छतीति, ऋजीकः । सूर्यो धूमो वा ॥

(५२) तनोति विस्तृणोति येन तत् तितउः । चालनी पेषणशोधकपात्रम् ॥

(५३) ऋध्यति वर्धतेऽसावर्भकः । ऋधुधातोर्वुन् धस्य भः । प्रथते वर्धते स पृथुकः । कुकन् प्रत्ययः सम्प्रसारणं च । पिबतीति पाकः । कन् प्रत्ययः । अर्भकपृथुकपाका बालकपर्यायाः ॥

(५४) वदितुमयोग्यमवद्यम् । नञ्पूर्वाद्वदधातोर्यत् । अवतीत्यवमम् । अमः प्रत्ययः । तत्रैव वस्य धः । अधमम् । ऋच्छति गच्छतीत्यर्वा । वन् । अश्वो वा । रिफति निन्दतीति रेफः । कुत्सितपर्याया इमे ॥

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लीरीङोर्ह्रस्वः पुट् च तरौ श्लेषणकुत्सनयोः ॥ ५५ ॥
लिप्तम् । रिप्रम् ॥ ५५ ॥

क्लिशेरीच्चोपधायाः कन् लोपश्चलो नाम् च ॥ ५६ ॥
कीनाशः ॥ ५६ ॥

अश्नोतेराशुकर्मणि वरट् च ॥ ५७ ॥ ईश्वरः ॥ ५७ ॥

चतेरुरन् ॥ ५८ ॥ चत्वारः ॥ ५८ ॥

प्राततेररन् ॥ ५९ ॥ प्रातः ॥ ५९ ॥

अमेस्तुट् च ॥ ६० ॥ अन्तः ॥ ६० ॥

दहेर्गोहलोपो दश्च नः ॥ ६१ ॥ नगः ॥ ६१ ॥

---

(५५) लीयते श्लिष्यत इति लिप्तम् । श्लिष्टम् । रीयते तत्, रिप्रम् । कुत्सितम् । तरौ प्रत्ययौ पुडागमः ॥

(५६) क्लिश्नातीति कीनाशः । कृषीवलो न्यायाधीशो वा । धातोरुपधाया ईत्वं लकारलोपः कन् प्रत्ययो नामागमश्चान्त्यादचः परः ॥

(५७) अश्नुते, आशु शीघ्रं करोति जगद्रचयति स, ईश्वरः । स्वामी वा । टित्वादीश्वरी । वरच् प्रत्यये ईश्वरा ॥

(५८) चतते याचतेऽसौ चतुः । संख्यावाची वा । चत्वारः । चतस्रः ॥

(५९) प्रकृष्टमतति गच्छतीति प्रातः । प्रभातकालो वा । स्वरादित्वादव्ययम् ॥

(६०) अमति गच्छतीति यद्वेति, अन्तः । मध्यं वा । पूर्ववदव्ययम् ॥

(६१) दहति दह्यते वा स नगः । पर्वतो वृक्षो वा । बाहुलकान्नकारस्य नाकारो नागः । सर्पभेदो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिचेः संज्ञायां हनुमौ कश्च ॥ ६२ ॥ सिंहः ॥ ६२ ॥

व्याङि घ्रातेश्च जातौ ॥ ६३ ॥ व्याघ्रः ॥ ६३ ॥

हन्तेरच् घुर च ॥ ६४ ॥ घोरम् ॥ ६४ ॥

क्षमेरुपधालोपश्च ॥ ६५ ॥ क्ष्मा ॥ ६५ ॥

तरतेर्ड्रिः ॥ ६६ ॥ त्रयः ॥ ६६ ॥

ग्रहेरनिः ॥ ६७ ॥ ग्रहणिः ॥ ६७ ॥

प्रथेरमच् ॥ ६८ ॥ प्रथमः ॥ ६८ ॥

चरेश्च ॥ ६९ ॥ चरमः ॥ ६९ ॥

(६२) सिञ्चतीति सिंहः । प्रसिद्धो वा । हकारप्रत्ययो नुमागमः । चस्य कः । ककारस्य च लोपः । हिनस्तीति सिंहः । इति पृषोदरादित्वाद्-व्याद्यन्तविपर्ययः ॥

(६३) विशेषेण समन्ताज् जिघ्रतीति व्याघ्रः । हस्ती वा ॥

(६४) हन्तीति घोरम् । भयानकं वा ॥

(६५) क्षमते सहते सर्वमिति क्ष्मा । पृथिवी वा ॥

(६६) तरतीति त्रिः । संख्यावाची वा । त्रयः । त्रीन् । त्रिभ्यः ॥

(६७) गृह्णातीति ग्रहणिः । कृदिकारादिति ङीष् । ग्रहणी । संग्रहणी । व्याधिभेदो वा ॥

(६८) प्रथते प्रख्यातो भवतीति प्रथमः । आद्य उत्तमो नूतनो वा ॥

(६९) चरति गच्छतीति भक्षयति वा स चरमः । अन्त्यः पश्चिमो वा ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मङ्गेरलच् ॥ ७० ॥ मङ्गलम् ॥ ७० ॥

इत्युणादिषु पञ्चमः पादः समाप्तः ॥

मन्थानंविशदंविधायबहुलंव्युत्पन्नपक्षेन वा
ऽव्युत्पन्नेनदलेनयेनविधिवद्वाग्वारिधिर्मन्थितः ।
व्यक्ताव्यक्ततराणियत्रवचसां रत्नान्यदीप्यन्त वै
भूयात्सोयमुणादिरुत्तमगणोध्येतुर्यशोवृद्धये ॥ १ ॥

(७०) मङ्गति प्राप्नोति सुखं येन तन्मङ्गलम् । प्रशस्तम् । मङ्गलो वारभेदो वा । मङ्गलस्य भावो माङ्गल्यम् ॥

इतिश्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतोणादिव्याख्यायां
वैदिकलौकिककोषे पञ्चमः पादः समाप्तः ॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

———:o:———

For Private And Personal Use Only

अथोणादिशब्दसूचीपत्रम् ॥

—:0:—

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
अ			अन्तः	५	६०	अर्कः	३	४०
अक्षम्	३	८९	अन्त्रम्	४	१६४	अर्णः	४	१९७
अक्षरम्	३	७०	अन्धः	४	२०६	अरणिः	२	१०२
अक्षः	३	६५	अन्नम्	३	१०	अरण्यम्	३	१०२
अक्ष्णाम्	३	१७	अनलः	१	१०६	अरतिः	४	६०
अग्रम्	२	२८	अन्यः	४	१०९	अरतिः	५	७
अगस्तिः	४	१८०	अपः	४	२०८	अर्थः	२	४
अघ्न्यः	४	११२	अप्रः	४	२०८	अर्भः	३	१५२
अङ्कः	४	२१६	अप्सराः	४	२३७	अर्भकः	५	५३
अङ्कतिः	४	६१	अपष्ठुः	१	२५	अर्मः	१	१४०
अङ्गः	४	२१६	अब्जः	४	२०९	अर्यमा	१	१५९
अञ्चतिः	४	६१	अब्दः	४	९८	अररः	३	१३२
अञ्जलिः	४	२	अभ्रकम्	२	३२	अरुः	४	७९
अटविः	४	१३४	अमतः	३	११०	अर्वा	५	५४
अण्डः	१	११४	अमत्रम्	३	१०५	अर्शः	४	१९६
अणवः	१	९	अमतिः	४	५९	अर्शसानः	२	८८
अत्कः	३	४३	अमनिः	२	१०२	अर्हन्तः	३	१२६
अत्नः	३	६	अम्बरम्	३	१३१	अलकम्	५	३५
अतसः	३	११७	अम्बरीषः	४	२९	अलका	५	३५
अद्रः	१	१२३	अम्बुः	४	१०८	अलतिः	४	६०
अद्मनिः	२	१०५	अम्भः	४	२१०	अवगथः	२	९
अधमः	५	५४	अम्लः	४	१०८	अवद्यम्	५	५४
अध्वर्युः	१	३७	अयः	४	१८९	अवनिः	२	१०२
अनः	४	१८९	अयस्कान्तः	४	१८९	अवभृथः	२	३
अन्तः	३	८६						

शब्दाः	पा॰	सू॰	शब्दाः	पा॰	सू॰	शब्दाः	पा॰	सू॰
अवमम्	५	५४	अञ्जिष्ठः	४	२	अणुः	१	८
अव्यथिषः	१	४८	अतिथिः	४	२	अद्भुतम्	५	१
अश्रसः	३	११७	अत्रिः	४	६८	अन्धुः	१	२७
अशनिः	२	१०२	अद्रिः	४	६५	अमुः	१	७५
अश्वः	१	१५१	अनिलः	१	५४	अम्बु	१	२७
अष्ट	१	१५७	अपिशलिः	४	१२८	अरुः	२	११७
अष्टका	३	१४८	अभिज्ञातः	३	८६	अर्जुनः	३	५८
अंसः	५	२१	अमित्रः	४	१७४	अर्जुनम्	३	५९
अस्त्रम्	४	१५९	अरिः	४	१३९	अरुणः	३	६०
असनः	२	७८	अर्चिः	२	१०८	अश्रु	५	२९
अस्मद्	१	१३९	अर्पिसः	४	२	असुः	१	१०
अस्तम्	२	१२	अलिः	४	१३९	अस्तुः	४	१०२
अहः	१	१५८	अक्लिनः	२	४६	असुरः	१	४२
अंहः	४	२१३	अविषः	१	४५	अङ्कूषः	४	७६
अंहतिः	४	६२	अश्रिः	४	१२८	अन्दूः	१	९३
अहल्या	४	११२	अशित्रम्	४	१७३	अरुषः	४	७३
अङ्गारः	३	१३४	अशिरः	१	५२	अग्रेगूः	२	६८
अध्वा	४	११६	असिः	४	१४०	अनेहाः	४	२२४
अपवा	१	१५४	अस्तिः	४	१८०	**आ**		
अयाः	४	२२२	अस्थि	३	१५४	आखनिकः	२	४५
अर्वा	४	११३	अहिः	४	१३८	आगः	४	२१२
अलाबूः	१	८७	अंहिः	४	६६	आडम्बरः	३	१११
अश्मा	४	४७	अत्रिः	४	६८	आपः	२	५८
अक्षि	३	१५६	अनीकम्	४	१७	आपः	४	२०८
अग्निः	४	५०	अवीः	३	१५८	आपणिकः	२	४५
अङ्गिराः	४	२२६	अलीकम्	४	२५	आपतिकः	२	४५
अजिः	४	१४०	अङ्कुशः	४	१०७	आपनिकः	२	४५
अजिनम्	२	४८	अङ्कुरः	१	३८	आमयः	४	९९
अजिरम्	१	५३	अङ्गुलिः	४	२	आम्रम्	२	१६

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दाः	पादः	सूत्रम्
आमलकः	२	३१
आर्द्रम्	२	१८
आवसथः	३	११६
आष्ट्रम्	४	१६०
आख्याः	४	२२३
आगामी	४	७
आत्मा	४	१५३
आजिः	४	१३१
आतिः	४	१३१
आमिक्षा	३	६६
आमिषम्	१	४६
आविः	२	१०८
आखुः	१	३३
आतुरः	१	४१
आयुः	१	२
आयुः	२	११८
आलुः	१	५
आशुः	१	१
आशुशुक्षणिः	२	१०३
आडू	१	८६
आरू	१	८५
इ		
इदम्	४	१५०
इन्द्रः	२	२८
इध्मः	१	१४५
इनः	३	२
इभः	३	१५३
इल्वलः	४	१०७

शब्दाः	पादः	सूत्रम्
इष्टका	३	१४८
इध्मः	१	१४५
इरा	२	२८
इरिणम्	२	५१
इषिरः	१	५१
इषीका	४	२१
इक्षुः	३	१५७
इक्षुकुट्टकः	२	३२
इन्दुः	१	१२
इषुः	१	१३
ई		
ईर्मम्	१	१४५
ईश्वरः	५	५७
ईष्वः	१	१५३
उ		
उक्थम्	२	७
उग्रः	२	२८
उग्रतेजः	४	२२७
उज्झकः	२	३७
उत्सः	३	६८
उदकम्	२	३९
उदकधरः	२	२२
उदरम्	५	१९
उदरथिः	४	८८
उदश्वित्	२	५७
उन्द्रः	२	१३
उपदेष्टा	२	९४
उपह्वरः	३	१

शब्दाः	पादः	सूत्रम्
उरः	४	१९५
उरणः	५	१७
उल्कः	३	४२
उलपः	३	१४५
उल्वः	४	९५
उशनाः	४	२३९
उस्रः	२	१३
उषः	४	२३४
उष्ट्रः	४	१६२
उष्णः	३	२
उषपः	३	१४३
उषर्बुधः	४	२३४
उचा	१	१५९
उषाः	४	२३४
उष्मा	४	१४५
उचितम्	४	१८६
उष्णिक्	२	७१
उद्गीथः	२	१०
उशी	४	१
उशीनरः	४	१
उशीरम्	४	३१
उरुः	१	३१
उल्मुकम्	३	८४
उलूकः	४	४१
उन्नेता	२	९४
उच्चैः	५	१२
ऊ		
ऊधः	४	१९३
ऊमः	३	२

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
ऊमम्	१	१४४	एतः	३	८६	कटम्बः	४	८२
ऊर्णनाभः	५	४७	एतशः	३	१४९	कट्वरम्	३	१
ऊर्णनाभिः	५	४७	एतशाः	३	१४९	कटिः	४	११८
ऊर्दरः	५	४०	एधतुः	१	७७	कटित्रम्	४	१७३
ऊर्णा	५	४७	एनः	४	१९८	कटीरः	४	३०
ऊर्णायुः	५	४७	एवः	१	१५२	कटुः	१	८
ऊष्मा	४	१४५	एलकः	४	४१	कटोलः	१	६६
ऊर्मिः	४	४४	**ओ**			कठाकुः	३	७७
ऊरुः	१	३०	ओकः	३	४१	कठिनम्	२	४९
ऋ			ओकः	४	२१६	कठेरः	१	५८
ऋक	२	५७	ओजः	४	१९२	कठोरः	१	६४
ऋक्थम्	२	७	ओदनः	२	७६	कडत्रम्	३	१०६
ऋत्वम्	३	६६	ओम्	१	१४२	कडम्बः	४	८२
ऋत्वः	३	६७	ओष्ठः	२	४	कडारः	३	१३५
ऋक्षरः	३	७५	ओतुः	१	६९	कणीचिः	४	७०
ऋक्षरः	३	१३१	**क**			कण्ठः	१	१०३
ऋज्रः	२	२८	कक्खटम्	४	८१	कण्वम्	१	१५१
ऋञ्जसानः	२	८७	कक्षम्	३	६२	काण्डोलः	१	६६
ऋतम्	३	८९	कङ्कटः	४	८१	कदम्बः	४	८२
ऋषभः	३	१२३	कङ्कणः	४	२४	कदरः	३	१३१
ऋष्यः	४	११२	कङ्कणीका	४	१८	कद्रुः	४	१०२
ऋषिः	४	१२०	कच्छः	४	१०५	कदली	१	१०१
ऋजीकः	४	२२	कच्छू	१	८४	कदली	३	१३१
ऋजीकः	५	५१	कचपम्	३	१४२	कनकम्	२	३२
ऋजीषम्	४	२८	कंचूलः	४	९	कन्तुः	१	२७
ऋजुः	१	२७	कंजारः	३	१३७	कन्तुः	१	७३
ऋतुः	१	७२	कटकम्	२	३२	कन्दः	४	९८
ए			कटकः	५	३५	कन्दरः	३	१३१
एकः	३	४३	कटप्रूः	२	५७	कन्दुः	१	१४
एतत्	१	१३३						

For Private And Personal Use Only

शब्दाः	पाद	सूत्र	शब्दाः	पाद	सूत्र	शब्दाः	पाद	सूत्र
कन्या	४	११२	क्रतुः	१	७६	कश्यः	४	११२
कपटम्	४	८१	कर्दमः	४	८४	कशेरुः	१	८८
कपालम्	१	११८	कर्पटः	४	८१	कशेरूः	१	८८
कपिः	४	१४४	कर्परः	३	१३१	कषिः	४	१४०
कपिलः	१	५५	कर्पासः	५	४५			
कपोतः	१	६२	कर्पूरः	४	९०	कषाकुः	३	७७
कपोलः	१	६६	कर्बुरः	१	४१	कषीका	४	१६
कफेलूः	१	९३	करभः	३	१२२	क्षत्रम्	४	१६७
कबरः	४	१५५	कर्म	४	१४५	क्षत्ता	२	९४
कमठः	१	१००	करम्बम्	४	८२	कंसः	३	६२
कम्बलः	१	१०७	क्रयिकः	२	४४	कस्तूरः	४	९०
कम्बूः	१	९३	करीरः	४	३०	कस्तूरी	४	९०
कमरः	३	१२२	कर्वः	१	१५५	काकः	३	४३
कमलम्	१	१०४	कर्वरः	२	१२१	काकुः	१	[illegible]
कमलः	१	१०४	करीषः	४	२६	काणूकः	४	३९
करिः	४	१२९	कर्षूः	१	८०	काण्डम्	१	११५
कर्कः	३	४०	कलिः	४	११८	कादम्बः	४	८३
करकः	५	३५	कल्कः	३	४०	कारिः	४	१२९
कर्कटः	४	८१	कललम्	३	१०६	कारुः	१	१
कर्कन्धूः	१	९३	कलापकम्	२	३२	क्रान्तुः	५	४३
कर्करः	३	१३६	कलभः	३	१२२	कार्षिः	४	१२७
कर्करीकम्	४	२०	कलमः	४	८४	कार्षकः	२	३८
कर्करेटुः	१	३७	कलिलम्	१	५४	काशिः	४	११८
करटः	४	८१	कलुषम्	४	७५	काशूः	१	८५
करेटुः	१	३७	कविः	४	१३९	काष्ठम्	२	२
कर्णः	३	१०	कवलः	१	१०६	काष्ठपुत्तिका	२	३२
करण्डः	१	१२९	कवसः	४	२	क्षान्तुः	५	४३
करुणा	३	५३	कश्मलम्	१	१०९	क्षमा	५	६५
करेणुः	२	१	कश्मीरः	४	३२	कासारः	३	१२९

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
किकीदिविः	४	५६	कुटितम्	४	१८६	कुररः	३	१३३
किङ्कणीका	३	१८	कुटपः	४	१४२	कुरीरम्	४	३३
किम्	४	१५८	कुट्मलम्	४	१०९	क्रुश्वा	४	११४
किरिः	४	१४३	कुट्मलः	१	१०९	कुरवः	१	२४
किरीटम्	४	१८५	कुटरुः	४	८०	कुल्फः	२	२६
किरणः	२	८१	कुटीरः	४	३०	कुल्मलम्	४	१८८
क्रिमिः	४	१२२	कुटिलम्	४	१८६	कुलीरः	४	३३
किर्मीरः	४	३०	कुटिलः	१	५४	कुलालः	१	११८
किरीरः	४	३०	कुठिः	४	१४४	कुशलः	१	१०६
किल्बिषम्	१	५०	कुठेरः	१	५८	कुष्ठम्	२	२
किंवदन्ती	३	५०	कुड्मलः	१	१०९	क्षुद्रः	२	१३
किंशारुः	१	४	कुड्यम्	४	११२	क्षुधुनः	३	५५
किशोरः	१	६५	कुण्डम्	१	११५	कुष्मलम्	४	१८७
क्षित्वा	४	११४	कुण्डिनः	२	४९	क्षुमा	१	१४५
क्षिपणिः	२	१०७	कुण्डलम्	१	१०४	क्षुरः	२	२८
क्षिपणुः	३	५२	कुणिन्दः	४	८५	कुसितः	४	१०६
क्षिपण्युः	३	५१	कुणपः	३	१४३	कुसीदम्	४	१०६
क्षिप्रम्	२	१३	कुणालः	३	७६	कुसुम्भम्	४	१०६
कीकसम्	३	११७	कुत्सम्	३	६६	कुसुमम्	४	१०६
कीचकः	५	३६	कुन्तिः	३	५०	कुसूलः	४	९०
कीनाशः	५	५६	कुन्दः	४	९८	कुहुः	१	३७
कीर्त्तिः	४	११९	कुपिन्दः	४	८६	कुहकः	२	३७
क्षीरम्	४	३४	कुविन्दः	४	८६	कूची	४	९१
कुक्कुरः	१	४१	कुब्रः	२	२८	कूपः	३	२७
कुकुरः	१	४१	कुबेरः	१	५९	क्रूरः	२	२१
कुक्षः	३	६८	कुम्भीरः	४	३०	ककवाकुः	१	६
कुक्षिः	३	१५५	कुमारः	३	१३८	कृच्छ्रम्	२	२१
कुक्षितम्	४	१८६	कुमारयुः	१	३७	कृतकम्	३	३७
कुटिः	४	१४३	कुरङ्गः	१	१२१	कृमिका	३	१४७

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
कृतुः	३	३०	कोमलम्	१	१०९	**ग**		
कृत्सम्	३	६६	कोरकः	५	३५	गगनम्	२	७१
कृत्स्नम्	३	१७	क्रोष्टुः	१	९८	गङ्गा	१	१२३
कृदरः	५	५४१	कोशलः	१	१०६	गडेरः	१	५८
कृन्तत्रम्	३	१०९	कोष्ठः	२	४	गडोलः	१	६६
कृपीटम्	४	१८५	क्षोणिः	४	४८	गण्डः	१	११४
कृपणः	२	७९	क्षोत्ता	२	९४	गण्डयन्तः	३	१२८
कृपाणः	२	९०	क्षौमम्	१	१४०	गण्डिः	४	११८
कृमिः	४	११२	**ख**			गण्डुः	१	७
कृविः	४	५६	खजपम्	३	१४२	गण्डूषः	४	७८
कृशानुः	४	२	खजाकः	४	१३	गण्डोलः	१	६६
कृषिः	४	१२०	खट्वा	१	१५१	गतिला	१	५७
कृषिः	४	१२७	खड्गः	१	१२४	गदयित्नुः	३	२९
कृषकः	२	३८	खडूः	१	८२	गन्त्री	४	१५९
कृषिकः	२	४०	खड्डूः	१	८२	गन्तुः	१	६९
कृष्णः	३	४	खण्डः	१	११४	गभीरः	४	३५
कृसरः	३	७३	खदिरः	१	५३	गभस्तिः	४	१८०
केतुः	१	७४	खनिः	४	१४०	गमथः	३	११३
क्लेणिः	४	४८	खनित्रम्	४	१६२	गमी	४	६
क्लेदा	१	१५९	खरुः	१	३६	गम्भीरः	४	३५
क्लेदुः	१	१०	खर्जूः	१	८०	गर्गः	१	१२८
केलिः	४	११८	खर्जूरः	४	९०	गरुडः	४	४६
केवलः	१	१०६	खलतिः	३	११२	गरुत्	१	९४
केशः	५	३३	खष्पः	३	२८	गर्तः	३	८६
क्षेत्रम्	४	१७०	खाटिः	४	१२५	गर्दभः	३	११२
क्षेमम्	१	१४०	खात्रम्	४	१६२	ग्रन्थिः	४	१४०
कोकिलः	१	५४	खिद्रः	२	१३	गर्भः	३	१५२
कोटरः	३	१३१	खिदिरः	१	५१	गर्मुत्	१	९५
कोटिः	४	११८	खुरः	२	२८	गर्वः	१	१५५

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
गर्वरः	२	१२१	गृध्नुः	१	२३	चक्षुः	२	११९
ग्रहणिः	५	६७	गृहयाय्यः	३	२६	चकोरः	१	६४
गवयः	२	६८	गेष्णुः	३	१६	चङ्कुरः	१	३८
गह्वरः	३	१	गोत्रम्	४	१६७	चञ्चरीकः	४	२०
गातुः	१	७३	गोत्रा	४	१६७	चटुलः	१	९६
गात्रम्	१	१६९	गोधूमः	५	२	चण्डः	१	११४
गाथा	२	४	गोपीथः	२	९	चण्डालः	१	११७
गान्त्रम्	४	६०	गोरोचनम्	२	७८	चण्डिला	१	५७
गान्तुः	५	४३	गौरः	१	६५	चतुरः	१	३८
ग्रामः	१	१४३	गौरः	२	२८	चत्वरम्	१	१२१
गारित्रम्	४	१७१	गौः	२	६८	चत्वारः	५	५८
ग्लानिः	४	५१	ग्लौः	२	६४	चनः	४	२००
गिरिः	४	१४३	**घ**			चन्दनम्	२	७८
ग्रीवा	१	१५४	घटिः	४	११८	चन्द्रः	२	१३
ग्रीष्मः	१	१४९	घतनः	५	४२	चन्द्रमाः	४	२२८
गुडः	१	११५	घर्मः	१	१४९	चन्दिरम्	१	५१
गुडेरः	१	५८	घासिः	४	१३०	चपटः	४	८१
गुत्सः	३	६८	घुण्डः	१	११५	चपेटः	४	८१
गुधेरः	१	६१	घुरणः	२	८३	चपलम्	१	१११
गुपिलः	१	५६	घूर्णिः	४	५२	चम्पा	३	२८
गुरुः	१	२४	घृणा	३	४	चमूः	१	८०
गुर्विणी	२	५४	घृणिः	४	५२	चमरः	३	१३२
गुल्फः	५	२६	घृतम्	३	८९	चमसः	३	११७
गुवाकः	४	१५	घृष्विः	४	५६	चरिः	४	१४०
गुहेरः	१	६१	घोरम्	५	६४	चरुः	१	७
गुहिलः	१	५६	**च**			चरकः	२	३२
गूथः	२	१२				चरित्रम्	४	१७२
गृत्सः	३	६९	चक्रधरः	२	२२	चर्पटः	४	८१
गृध्रः	२	२४	चक्रुः	१	२२	चर्म	४	१४५

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
चरमः	५	६९	छविः	४	५६	जन्यम्	४	१११
चर्षकः	२	३२	छागः	१	१२४	जन्युः	३	२०
चषालः	४	१०७	छातः	३	८६	जन्हुः	३	३६
चाटु	१	३	छाया	४	१०९	जम्भलः	१	१०६
चत्वालः	१	११६	छित्वरम्	३	१	जम्बः	४	९५
चारित्रम्	४	१७२	छिद्रकम्	२	३७	जम्बीरः	४	३०
चारु	१	३	छिद्रम्	२	१३	जम्बूः	१	९३
चिक्कणम्	४	१७६	छिदिः	४	१४३	जम्बूकः	४	४१
चिकुराः	१	४१	छिदिरः	१	५१	जयन्तः	३	१२८
चित्रभानुः	३	३२	छेदिः	४	११९	जर्जरः	३	१३१
चित्रम्	४	१६४	छेमण्डः	१	१२९	जरठः	१	१००
चित्रा	४	१६४	ज			जर्णः	३	१०
चीरम्	२	२५	जगत्	२	८४	जर्तुः	५	४६
चीवरम्	३	१	जघनम्	५	३२	जरूथम्	२	६
चुक्रम्	२	१४	जङ्घा	५	३१	जरन्तः	३	१२६
चुत्रः	२	२८	जघ्नुः	१	२२	जरायुः	१	४
च्युपः	३	२४	जटा	५	३०	जरसानः	२	८६
चूर्णिः	४	५२	जटायुः	२	११८	जसुरिः	२	७३
चेतः	४	१८९	जटिः	४	११८	जह्नकः	२	३४
च्यौत्नः	४	१०४	जठरम्	५	३८	जागृविः	४	५४
छ			जतुः	१	१८	जातवेदाः	४	२२७
छगलः	१	११३	जत्रु	४	१०२	जानु	१	३
छत्वरम्	३	१	जन्म	४	१४५	जामाता	२	९५
छत्रम्	४	१५९	जन्म	१	१४५	जामिः	४	४३
छदिः	२	१०८	जनित्वः	४	१०४	जाया	४	१११
छद्म	४	१४५	जनिः	४	१३०	ज्यानिः	४	४८
छन्दः	४	२१९	जनिमा	४	१४९	जायुः	१	१
छर्दिः	२	१०८	जनुः	२	११५	जिगत्नुः	३	३१
छलम्	१	१०४	जन्तुः	१	७३	जिह्वा	४	११४

For Private And Personal Use Only

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
जिनः	३	२	तट्ट	१	१३२	त्रपुः	१	१०
जिव्रिः	५	४९	तन्त्रीः	३	१५८	तर्म	४	१४५
जिह्मः	१	१४१	तन्तुः	१	६९	त्रयः	५	६६
जिह्वा	१	१५४	तन्द्रिः	४	६६	तरलः	१	१०६
जीमूतः	३	९१	तनयम्	४	९९	तर्षः	३	६२
जीरः	२	२३	तन्यतुः	४	२	तरसम्	३	११७
जीरदानुः	२	२३	तनुः	१	७	त्रसरेणुः	३	३८
जीविः	४	५४	तनुः	२	११७	तरसानः	२	८६
जीवातुः	१	७८	तनूः	१	८०	तलिनम्	२	५३
जीवथः	३	११३	तपः	४	१८९	तलुनः	३	५४
जीवन्तः	३	१२७	तपुः	२	११७	तल्पम्	३	२८
जुहुराणः	२	९१	तपसः	३	११७	त्वक्	२	६३
जुहूः	२	६०	तमः	४	१८९	त्वष्टा	२	९५
जूः	२	५७	तमतः	३	११७	तविषी	१	४८
जूर्णिः	४	४८	तमालः	१	११८	तसरः	३	७५
जैवातृकः	१	७९	त्यद्	१	१३२	त्सरुः	१	७
ज्योतिः	२	११०	तर्कारः	३	१३९	तातः	३	९०
त			तर्कारी	३	१३९	ताम्रम्	२	१६
तक्रम्	२	१३	तर्कुः	१	१६	तामरसम्	३	११७
तकिला	१	५७	तरङ्गः	१	१२०	ताम्बूलम्	४	९०
तक्षकः	२	३२	तरण्डः	१	१२९	तालु	१	५
तक्षा	१	१५६	तरणिः	२	१०२	ताविषी	१	४८
तडाका	४	१५	तरिः	४	१३९	तिग्मम्	१	१४६
तडागः	४	१५	तरीः	३	१५८	तिज्जिलः	१	५६
तडिः	४	११८	तरीषः	४	२६	तितउ	५	५२
तडित्	१	९८	तरुः	१	७	तित्तिरिः	४	१४३
तण्डुलः	४	१०७	तरुणः	३	५४	तिथः	२	१२
तण्डुला	५	९	तर्द्रूः	१	८९	तिन्तिडीकः	४	२०
ततम्	३	८८	तरन्तः	३	१२८	तिमिः	४	१२२

शब्दाः	पादः	सूत्रम्
तिमिरम्	१	५१
तिरीटम्	४	१७५
त्रिफला	१	१०४
त्रिविष्टपम्	३	१४५
त्रिविष्टपः	३	१४५
तीक्ष्णम्	३	१८
तीव्रम्	२	२८
तीर्थम्	२	७
तीवरः	३	१
तुण्डिः	४	११
तुण्डिलः	१	५४
तुत्थः	२	७
तुन्दः	४	९८
तुषारः	३	१३९
तुहिनम्	२	५२
तूणीरः	४	३०
तूर्णिः	४	५१
तूलिः	४	१२०
तूस्तम्	३	८६
तृषम्	५	८
तृपत्	२	८५
तृप्रः	२	१३
तृपला	१	१०४
तृफला	१	१०४
तृष्णा	३	१२
तोत्रम्	४	१७३
तोमरः	३	१३१
द		
दक्षिणः	२	५०
दक्षिणा	२	५०
दक्षाय्यः	३	९६
दण्डः	१	११४
दण्डधरः	२	२२
दद्रुः	१	९०
दद्रूः	१	९०
दधिषाय्यः	३	९७
दन्तः	३	८६
दमुनाः	४	२३५
दभ्रम्	२	१३
दमथः	३	११३
दरत्	१	१३०
दरथः	३	११३
दर्दरीकम्	४	२०
दर्भः	३	१५१
दर्दुरः	१	४०
दर्द्रूः	१	९०
दर्त्रः	१	१५५
दर्विः	३	८४
दर्विः	४	५३
द्रविणम्	३	५०
दर्शतः	३	११०
दरसानः	२	८६
दलपः	३	१४२
दल्भः	३	१५१
दल्मिः	४	४७
दनु	१	१५६
दशेरः	१	५८
दंष्ट्रा	४	१५९
दस्मः	१	१४५
दस्युः	३	२०
दस्रः	२	१३
दक्रः	२	१३
दाकः	३	४०
दात्रम्	४	१७०
दात्वः	४	१०४
दानुः	३	३२
दाम	४	१४५
दारु	१	३
दारुणम्	३	५३
दाः	२	५७
दाशः	५	११
दासः	५	१०
दिधिषूः	१	९३
दिनम्	२	४९
दिवसम्	३	१२१
दिवा	१	१५६
दिवा	४	१७५
दीदिविः	४	५५
दीनः	३	२
दीनारः	३	१४०
दुकूलम्	४	९०
द्यावा	१	१५६
द्रुः	१	३५
द्रुमः	१	३५

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
द्रुहिणः	२	४९	**ध**			धासाः	४	२२१
दुण्डु	१	२५	धनम्	२	८१	धिषणा	२	८२
दुहिता	२	९५	धनुः	१	७	धिष्ण्यम्	४	१०७
दूतः	३	९०	धनुः	२	११७	धीरः	२	२४
दूतिः	४	१८०	धनूः	१	८०	धीवरः	३	१
दूः	२	५७	धन्वम्	४	९५	धीवरी	४	११५
दूरम्	२	२०	धन्वा	१	१५६	धीवा	४	११५
दूषीका	४	१६	धमकः	२	३५	ध्रुवम्	२	६१
दृतिः	४	१८४	धमनिः	२	१०२	ध्रुवकः	२	३२
दृप्रः	२	१३	धरणिः	२	१०२	धुस्तूरः	४	९०
दृम्फूः	१	९३	धर्मम्	४	१६७	धूकः	३	४०
दृशानः	२	९०	धरित्री	४	१७३	धूमः	१	१४५
दृशुः	१	२३	धर्मः	१	१४०	धूमकेतुः	१	७४
दृषद्	१	१३१	धरिमा	४	१४८	धूर्तः	३	८६
देवटः	४	८१	धर्षणिः	२	१०४	धूसरः	३	७३
देवयुः	१	३७	धवाणकः	३	८३	धूत्वा	४	११४
देवरः	३	१३२	ध्वनिः	४	१४०	धृषुः	१	२१
देवलः	१	१०६	धवलः	१	१०६	धेनः	३	११
देविलः	१	५६	धाकः	३	४०	धेनुः	३	३४
देवा	२	९९	धाणकः	३	८३	**न**		
देष्णुः	३	१६	धातकी	३	१४८	नक्षत्रम्	३	१०५
दोः	२	६९	धाता	२	९४	नखम्	५	२३
द्योतनः	२	९८	धातुः	१	६९	नखरः	३	१३१
द्रोणः	३	१०	धानाः	३	६	नखिः	४	१३९
द्रोणिः	४	५१	धान्यम्	५	४८	नगः	५	६१
दोषा	४	१७५	धाम	४	१५१	नटः	४	१०४
			ध्यात्वम्	४	१०५	नदथुः	३	५२
द्यौः	२	६८	ध्यामा	४	१५१	नदनुः	३	१२७
द्यौत्रम्	४	१६१	ध्राडिः	४	११८	नन्दयन्तः	३	१२८

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
नन्दिः	४	११८	निद्रा	२	१७	पक्षः	४	२२०
ननन्दा	२	९८	निधनम्	२	८१	पङ्गुः	१	३६
ननान्दा	२	९८	निधुवनम्	२	८०	पतङ्गः	१	११९
नप्ता	२	९५	निम्बः	४	९५	पचतः	३	११०
नभः	४	२११	निर्ऋथः	२	८	पचिः	४	११८
नभसः	३	११७	निशीथः	२	९	पचेलिमः	४	३७
नभस्यः	४	२११	निष्कः	३	४५	पञ्चन्	१	१५७
नमतः	३	११०	निषङ्गथिः	४	८७	पञ्चालः	१	११८
नभाकम्	४	१५	निषद्वरः	२	१२२	पटाकः	४	१४
नमसः	३	११७	निहाका	३	४४	पटीरः	४	३०
न्यङ्कुः	१	१७	नीकः	३	४७	पटलः	१	१०४
नयनम्	२	७८	नीचैः	५	१३	पटुः	१	१८
नरकम्	५	३५	नीथः	२	२	पटोलः	१	६६
नलिनम्	२	४९	नीपः	३	२३	पट्टः	१	१५२
नवन्	१	१५६	नीरम्	२	१२	पण्डः	१	११४
नंशुकः	२	३०	नीलङ्गुः	१	३६	पण्डा	१	११४
नहुषः	४	७५	नीविः	४	१३६	पणसः	३	११७
ना	२	१००	नीवारम्	३	१	पणिः	४	११८
नाकुः	१	१८	नृचक्षाः	४	२३३	पताका	४	१४
नागः	५	६१	नृतूः	१	९१	पत्तिः	४	१८३
नान्तम्	४	१६०	नेत्रः	१	१४०	पतिः	४	५७
नापितः	३	८७	नेमिः	४	४३	पत्तनम्	३	१५०
नाभिः	४	१२६	नेष्टा	२	९५	पतत्रम्	३	१०५
नाम	४	१५१	नोधाः	४	२२६	पतद्रम्	४	१५९
नारङ्गः	१	१२२	न्योजाः	४	२२३	पतत्रिः	४	६४
निकषा	४	१७५	नौः	२	६४	प[illegible]रः	१	५८
निघण्टुः	१	३७	**प**			पतसः	३	११७
निवातिः	४	१२५	पक्त्रम्	४	१६६	पत्सलः	३	७४
निघ्रावः	१	१५३	पक्षः	३	६९	पथः	४	१२

For Private And Personal Use Only

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
पथिलः	१	५७	परीरम्	४	३०	पशुः	१	२७
पदाजिः	४	१३२	पर्परीकः	४	१९	पाकः	३	[illegible]३
पदातिः	४	१३२	परिव्राट्	२	[illegible]९	पाकः	५	५३
पद्मम्	१	१४०	पर्वतः	३	११०	पाकुकः	२	३०
पद्रः	२	१३	पर्वा	४	११३	पाजः	४	२०३
पद्मा	४	११३	प्रशस्वा	४	११७	पाण्डुः	१	३७
पविः	४	१३९	प्रशत्वरी	४	११७	पाणिः	४	१३३
पन्थाः	४	१२	प्रशास्ता	२	९५	पातालम्	१	११७
पनः	३	१०	पर्शुः	१	३३	पातिः	५	५
पनसः	३	११७	पर्शुः	५	२७	पात्रम्	४	१५९
पपीः	३	१५९	परशुः	१	३३	पाटम्	४	१७०
पपुः	१	२२	पर्षत्	१	१२०	पाथः	४	२०४
पम्पा	३	२८	प्रस्थायी	४	९	पाथः	४	२०५
पयः	४	१९०	परुः	२	११७	पाथिः	२	११४
पयोधाः	४	२३०	परुषः	४	७५	पादुः	१	८५
प्रख्याः	४	२३३	प्रहाणिः	४	५१	पापम्	३	२३
पर्जन्यः	३	१०३	परिहाणिः	४	५१	पाप्मा	४	१५१
परिज्वा	१	१५९	प्रह्निः	४	१३५	पायुः	१	१
पर्णम्	३	६	प्रहेलिः	४	११८	पारुः	४	१०१
पर्णमुट्	२	२२	प्रह्वः	१	१५३	पारक्	१	१३६
पर्णकट्	२	२२	प्लक्षः	३	६३	प्राकर्षिकः	२	४१
पर्णशुट्	२	२२	पलाण्डुः	१	३७	प्राट्	२	५७
पर्णसिः	४	१०७	पलितम्	५	३४	प्राणथः	३	११३
प्रतिदिवा	१	१५६	पलितः	३	९२	प्राणन्तः	३	१२७
प्रथितिः	४	१८३	पललम्	१	१०६	प्रातः	५	५९
प्रथमः	५	६८	पलालम्	१	११८	प्रापणिका	२	४१
पर्पः	३	२८	पल्वलः	४	१०७	प्राहट्	२	५७
पर्पटः	४	८१	पवाका	४	१४	पार्श्वम्	५	२७
परमेष्ठी	४	१०	पविः	४	१३९	पार्ष्णिः	४	५१

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
पालिः	४	१३०	पुरिः	४	१४३	पेचकः	५	२७
पाशधरः	२	२२	पुरीषम्	४	२७	पेलम्	४	१०५
पाषाणः	२	९	पुरुः	१	२३	पेयूषम्	४	७६
पांसुः	१	२७	पुरुषः	४	७४	पेरुः	४	१०१
पिङ्गलः	१	१०९	प्रुष्वः	१	१५१	प्रेल्वरी	४	११७
पिञ्जरः	३	१३१	पुरूरवाः	४	२३२	प्रेल्वा	४	११७
पिञ्जूलम्	४	९०	पुरोधाः	४	२३१	पेशलः	१	१०६
पिण्याकः	४	१५	प्लुषिः	३	१५५	पेषिः	४	११९
पिण्डिलः	१	५४	पुलिनम्	२	५३	पोतः	३	८६
पिता	२	९५	पुलिन्दः	४	८५	पोता	२	९५
पिनाकः	४	१५	पुलस्तिः	४	१८०	पोथः	२	१२
पियालः	३	७६	पुष्करम्	४	४	पोषयित्नुः	३	२९
पिशितम्	३	९५	पुष्कलम्	४	५	**फ**		
पिशुनः	३	५५	पुष्पप्रचायिका	२	३२	फण्डः	१	११४
पीतुः	१	७१	पूगः	१	१२४	फर्फरीकम्	४	२०
पीथः	२	७	पूजिलः	१	५६	फल्गुः	१	१८
पीयुः	१	३६	पूरुषः	४	७४	फल्गुनः	३	५६
पीयूषम्	४	७६	पूषा	१	१५९	फलिनः	२	४९
पीलुः	१	३७	पृथक्	१	१३७	फेनः	३	३
प्लीहा	१	१५९	पृथुः	१	२८	**ब**		
पीवरः	३	१	पृथुकः	५	५३	बञ्चथः	३	११३
पीवरी	४	११५	पृथवी	१	१५०	बटिः	४	११८
पीवा	४	११५	पृथिवी	१	१५०	वणिक्	२	७०
पुङ्खः	२	१३	पृथ्वी	१	१५०	बधत्रम्	३	१०५
पुण्डरीकम्	४	२०	पृदाकुः	३	८०	बधित्रम्	४	१७३
पुच्छम्	५	१५	पृष्ठम्	२	१२	बदरम्	३	१३१
पुत्रः	४	१६५	पृषत्	२	८४	बधकः	२	३६
पुमान्	४	१७८	पृषतः	३	१११	बधिरः	१	५१
पुरणः	२	८१	पृश्निः	४	५२	बभ्रुः	१	८३

For Private And Personal Use Only

शब्दाः	पा०	सू०	शब्दाः	पा०	सू०	शब्दाः	पा०	सू०
बन्धुः	१	१०	बृहत्	२	८४	भातुः	१	७२
बन्धुरः	१	४१	बृहद्भानुः	३	३२	भानुः	३	३२
बन्धूकः	४	४१	भ			भामः	१	१४०
बन्ध्या	४	११२	भगालम्	३	७६	भ्राता	२	९५
बन्धूरः	१	४१	भडिलः	१	५४	भ्राष्ट्रम्	४	१६०
बभ्रुः	१	२२	भण्डिलः	१	५४	भालुः	१	५
बर्करः	३	१३१	भद्राकः	४	१५	भालूकः	४	४१
ब्रध्नः	३	५	भद्रम्	२	२८	भावित्रम्	४	१७१
बर्बरः	३	१३१	भदन्तः	३	१३०	भावी	४	८
बर्वरः	२	१२१	भयानकः	३	८२	भासन्तः	३	१२८
ब्रह्म	४	१४६	भर्गः	४	२१६	भिस्सिका	३	१४७
बर्हिः	२	१०९	भरटः	४	१०४	भिदकः	२	३७
बर्हिणः	२	४९	भरण्डः	१	१२९	भिद्रम्	२	१३
बल्लभः	३	१२५	भरतः	३	११०	भिदिः	४	१४३
बलिः	४	११८	भरथः	३	११४	भिदिरम्	१	५१
वलिः	४	१२४	भ्रमरः	३	१३२	भिदुः	१	२३
बलीकम्	४	२५	भ्रमिः	४	१२१	भिषक्	१	१३८
बलिहः	४	११८	भरिमा	४	१४८	भीमः	१	१४८
बहुः	१	२९	भरुः	१	७	भीरुकः	२	३१
बाष्पः	३	२८	भल्लुकः	४	४१	भीष्मः	१	१४८
बाहुः	१	२७	भल्लूकः	४	४१	भुजिः	४	१४२
बिन्दुः	१	१०	भवन्तः	३	१२८	भुजिष्यः	४	१७९
बिम्बम्	४	९५	भवन्तिः	३	५०	भुज्युः	३	२१
बुध्नः	३	५	भवान्	१	६३	भुरिक	२	७२
बुधानः	२	९०	भविलः	१	५४	भुवः	४	२१७
बृन्दः	४	९८	भषकः	२	३२	भुवनम्	२	८०
बृष्णिः	४	४९	भसत्	१	१३०	भुवन्युः	३	५१
बृषभः	३	१२१	भस्त्रा	४	१६८	भुविः	२	११२
बृषलः	१	१०६	भस्म	४	१४५	भूकम्	३	४१

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
भूमिः	४	४५	मत्स्यः	४	१०४	मन्युः	३	२०
भ्रूः	२	६८	मत्सरः	३	७३	ममायतालः	५	५०
भूर्णिः	४	५२	मथुरा	१	३८	मयटः	४	८१
भूरिः	४	६५	मद्गुः	१	७	मयुः	१	७
भृगुः	४	२८	मद्गुरः	१	४१	मयूखः	५	२५
भृङ्गः	१	१२५	मद्यित्नुः	३	२९	मयूरः	१	६७
भृङ्गारः	३	१३६	मद्रः	२	१३	मर्कः	३	४३
भृज्जनम्	२	८०	मदारः	३	१३४	मरूकः	४	३९
भ्रमिः	४	१२१	मदिरा	१	५१	मर्कटः	४	८१
भेकः	३	४३	मद्दा	४	११३	मरिचिः	४	७०
भेरः	२	२८	मध्यम्	४	११२	मर्जूः	१	८१
भेरिः	४	६६	मधुः	१	१८	मर्त्तः	३	८६
भेलः	२	२८	मधुः	२	११६	मरुतः	३	११०
भेषजम्	१	१३८	मधूकः	४	४१	मरुत्	१	९४
म			मनाका	४	१४	मर्दलः	१	१०६
मच्चिका	४	१५४	मन्ता	२	९४	मरिमा	४	१४९
मकुरः	१	४०	मन्तुः	१	७३	मर्मरीकः	४	२०
मघवा	१	१५९	मन्थाः	४	११	मल्लम्	१	११०
मङ्गलम्	५	७०	मन्दाकम्	४	१३	मलयः	४	९९
मज्जा	१	१५९	मन्दनम्	२	८१	मलिनः	२	४९
मञ्जुः	१	३७	मन्द्रः	२	१३	मल्लिका	२	३२
मञ्जूषा	४	७७	मन्दरः	३	१३१	मल्लूरः	४	९१
मठरः	५	३९	मन्दारः	३	१३४	मस्तकम्	३	१४८
मण्डः	१	११४	मन्दारुः	३	१३४	मस्तुः	१	६९
मण्डयन्तः	३	१२८	मन्दिरम्	१	५१	मसिः	४	११८
मण्डलः	१	१०४	मन्दुरा	१	३८	मसिनम्	२	४९
मणिः	४	११८	मन्दसानः	२	८७	मसुरा	१	४३
मण्डूकः	४	४२	मनुः	१	१०	मसूरा	५	३
मत्स्यः	४	२	मनुः	२	११५	महः	४	१८९

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
महत्	२	८४	मीवः	१	१५४	मृडीकः	४	२४
महानसम्	४	१८९	मीवरः	३	१	मृणालम्	१	११८
महिनम्	२	५६	मुकुरः	१	४०	मृतम्	३	८८
महिलः	१	५४	मुखम्	५	२०	मृत्युः	३	२१
महसम्	३	११७	मुचिरः	१	५१	मृदङ्गः	१	१२१
महिषः	१	४५	मुद्गः	१	१२८	मृद्गरः	५	४१
माः	४	१८९	मुद्गलः	१	१२८	मृदुः	१	२८
माता	२	९५	मुद्रा	२	१३	मेचकः	५	३७
मात्रा	४	१६८	मुदिरः	१	५१	मेरुः	४	१०१
मातरिश्वा	१	१५९	मुनिः	४	१२३	मौनम्	४	१२३
माया	४	१०९	मुमुचानः	२	९३	**य**		
मायुः	१	१	मुरलः	१	१०६	यक्षः	१	१४०
मार्जारः	३	१३७	मुष्कः	३	४१	यक्ष्मा	४	१५१
मार्जालीयः	१	११६	मुषलः	१	१०६	यकृत्	४	५८
माला	२	२८	मुस्तम्	२	१३	यजतः	३	११०
मालती	३	११०	मुसलः	१	१०६	यजत्रम्	३	१०५
मालती	४	५९	मुहिरः	१	५१	यजिः	४	११८
म्लानिः	४	५१	मुहुः	२	१२०	यजुः	२	११७
मांसम्	३	६४	मुहूर्त्तम्	३	९८	यज्युः	३	२०
माहिनम्	२	५६	मुहेरः	१	६१	यतिः	४	११८
मितद्रुः	१	३४	मूकः	३	४१	यद्	१	१३२
मित्रम्	४	१६४	मूत्रम्	४	१६३	यन्त्रम्	४	१६७
मित्रयुः	१	३७	मूर्खः	५	२२	यमुना	३	६१
मिथिला	१	५७	मूर्द्धा	१	१५९	ययीः	३	१५९
मिथुनम्	३	५५	मूलम्	४	१०८	ययुः	१	२१
मिश्रम्	२	१३	मूलेरः	१	६१	यवागूः	३	८१
मिहिरः	१	५१	मूषिकः	२	४२	यवनः	२	७४
मीनः	३	३	मृगयुः	१	३७	यवासः	४	२
मीरः	२	२५	मृडङ्कणः	४	२४			

For Private And Personal Use Only

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
यक्षः	४	१९१	रज्जुः	१	१५	राजिः	४	२५
यष्टिः	४	१८०	रजतम्	३	१११	रात्रिः	४	६७
यज्ञः	१	१५४	रजनम्	२	७९	रासभः	३	१२५
याजिः	४	१२५	रजनिः	२	१०२	रामठम्	१	१०१
याता	२	९७	रजनी	२	७९	राशिः	४	१३२
यात्रा	४	१६८	रण्डा	१	११४	रास्ना	३	१५
यातुः	१	७२	रतूः	१	९२	राहुः	१	२
यामः	१	१४०	रत्नम्	३	१४	रिक्थम्	२	७
यामिः	४	४३	रत्निः	४	२	रिप्रम्	५	५५
यावसः	३	११९	रथः	२	२	रिपुः	१	२६
युग्मम्	१	१४६	रभसः	३	११७	रिष्वः	१	१५२
युधानः	२	९०	रमकः	२	३३	रुक्षः	३	६६
युग्मः	१	१४५	रमण्यम्	३	१०१	रुक्मम्	१	१४६
युयुधानः	२	९३	रमतिः	४	६२	रुचकम्	२	३७
युवा	१	१५६	रवणः	२	७४	रुचिः	४	१२०
युष्मद्	१	१३९	रवथः	३	११३	रुचिकम्	४	१८६
यूका	३	४७	रविः	४	१३९	रुचिरम्	१	५१
यूथः	२	१२	रशना	२	७५	रुचिष्यम्	४	१६९
यूपः	३	२७	रश्मिः	४	४६	रुद्रः	२	२२
योगः	४	२१६	रक्षम्	३	१२	रुधिरम्	१	५१
योनिः	४	५१	रसना	२	७५	रुम्रः	२	१४
योषित्	१	९७	रहः	४	२१४	रुरुः	४	१०३
योषा	३	६२	रंहः	४	२१४	रुवथः	३	११५
र			राः	२	६६	रुक्षा	४	११४
रक्षः	४	१८९	राका	३	४०	रूपम्	३	२८
रघुः	१	२९	राक्षा	३	६२	रेक्णः	४	१९९
रङ्कुः	३	४०	राजा	१	१५६	रेणुः	३	३८
रजः	४	२१७	राजातनः	२	७८	रेतः	४	२०२
रजकः	२	३२	राजन्यः	३	१००	रेपः	४	१९०

शब्दाः	पादः	पृष्ठम्	शब्दा	पादः	पृष्ठम्	शब्दाः	पादः	पृष्ठम्
रेफः	५	५४	लवाणकः	३	८३	वचक्नुः	३	८१
रोचना	२	७८	लविः	४	१३९	वज्रः	२	२८
रोचिः	२	१११	लशुनम्	३	५७	वज्रधरः	२	२२
रोदः	४	१८९	लष्वः	१	१५३	वटुः	१	८
रोदसी	४	१८९	लाक्षा	३	६२	वण्डः	१	११४
रोधः	४	१८९	लाङ्गलम्	१	१०८	वतण्डः	१	१२९
रोम	४	१५१	लाङ्गूलम्	४	९०	वत्सम्	३	६२
रोहन्तः	३	१२७	लिक्षा	३	६६	वत्सः	३	६२
रोहन्ती	३	१२७	लिगुः	१	३६	वत्सरः	३	७१
रोहिः	४	११९	लिप्तम्	५	५५	वदन्तिः	३	५०
रोहिणः	२	५५	लिपिः	४	१२०	वदान्यः	३	१०४
रोहित्	१	९७	लिविः	४	१२०	वन्द्रः	२	१३
रोहितः	३	९४	लुषभः	३	१२४	वन्रः	२	२८
रौहिषम्	१	४७	लूनिः	४	१०५	वनिः	४	१४०
ल			लोतः	३	८६	वनिष्णुः	४	२
लक्षणम्	३	७	लोत्रम्	४	१७३	वप्रः	२	२७
लक्ष्मणम्	३	७	लोम	४	१५१	वप्रिः	४	६६
लक्ष्मीः	३	१६०	लोष्ठः	३	९२	वपुः	२	११७
लघट्	१	१३५	लोहितम्	३	९४	वयः	४	१८९
लघुः	१	२९	व			वपुनम्	३	६१
लङ्का	३	४०	वक्त्रम्	४	१६७	वयोधाः	४	१२९
लङ्कः	२	३७	वक्रः	२	१३	व्यलीकम्	४	२५
लटकः	२	३२	वकुलः	१	४१	वर्चः	४	१८९
लट्वा	१	१५१	वक्षः	३	६२	वरटः	४	८१
लप्तिका	३	१४७	वक्षः	४	२२०	वठरः	५	३९
लभसः	३	११७	वक्षाः	४	२२१	वर्णः	३	१०
लमकः	२	३३	वग्नुः	३	२३	वरणः	२	७४
लवङ्गः	१	१२०	वङ्क्रिः	४	६६	वर्णसिः	४	१०७
						वर्णिः	४	१२४

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
वर्णुः	३	३८	वस्तिः	४	१८०	वार्त्ताकम्	३	७९
वरुणः	३	५३	वस्तुः	१	७०	वार्त्ताकः	४	१५
वरेण्यः	३	९८	वस्नः	३	६	वार्त्ताकुः	३	७९
व्रततिः	४	५९	वसन्तः	३	१२८	वारि	४	१२५
वरत्रा	३	१०७	वसिः	४	१४०	वावदूकः	४	४१
वरुलम्	४	१७२	वसुः	१	१०	वाश्रः	२	१३
वर्त्तनिः	२	१०६	वस्त्रः	२	१३	वाशिः	४	११८
वर्त्तिः	४	११९	वसुरोचिः	२	१११	वाशिः	४	१२५
वर्त्तिः	४	१४१	वहतिः	४	६०	वाशुरा	१	३८
वर्त्तिका	३	१४६	वहित्रम्	४	१७३	वासः	४	२१८
वरूथः	२	६	वहतुः	१	७७	वासरः	३	१३२
वर्द्धम्	२	२७	वहन्तः	३	१२८	वासिः	४	१२५
वर्पः	४	२०१	वह्निः	४	५१	वासुः	१	१
वर्फः	४	२०१	वह्यम्	४	११२	वास्तु	१	७०
वरण्डः	१	१२९	वाक्	२	५७	वास्तूकः	४	४१
वर्वरीकः	४	१९	वागुरा	१	४१	वाहसः	३	११९
वर्विः	४	५३	वातः	३	८६	वाहीकः	४	२५
वर्षम्	३	६२	वातप्रमीः	४	१	विः	४	१३४
वरसानः	२	८६	वातिः	५	६	विक्रयिकः	२	४४
वल्कः	३	४२	वादिः	४	१२५	विकुस्रः	२	१५
वलाका	४	१४	वादित्रम्	४	१७१	विचर्च्चाः	४	२३२
वलूकः	४	४०	वापिः	४	१२५	विजयन्तः	३	१२८
वल्गुः	१	१९	वामः	१	१४०	विटपः	३	१४५
वल्मीकम्	४	२५	वायसः	३	१२०	विडङ्गः	१	१२१
वलयम्	४	९९	वायसः	४	१८९	विडालः	१	११८
वल्लूरम्	४	९०	वायुः	१	१	वितद्रुः	४	१०२
वस्तम्	३	८९	व्याघ्रः	५	६३	वितस्तिः	४	१८२
वस्लम्	४	१५९	वारङ्गः	१	१२२	विथुः	१	३९
वसतिः	४	६०	व्राजिः	४	१२५	विदथः	३	११५

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
विधुः	१	२३	वृशः	४	१०४	शक्रः	२	१३
विधुरः	१	३८	वृश्चिकः	२	४०	शकलम्	१	११२
विपणिः	४	११८	वृषपः	४	१००	शकुलः	१	४१
विपिनम्	२	५२	वृषा	१	१५६	शक्वा	४	११३
विप्रः	२	२८	वेणिः	४	४८	शक्वरी	४	११३
विल्वम्	४	९५	वेणुः	३	३८	शङ्कुः	१	३६
विशिपः	३	१४५	वेतनम्	३	१५०	शङ्खः	१	१०२
विशालः	१	११८	वेत्रम्	४	१६७	शण्ठः	४	१०४
विश्वम्	१	१५१	वेतसः	३	११८	शण्डिलः	१	५४
विश्वप्सन्	१	१५९	वेदिः	४	११९	शण्ढः	१	९९
विश्वभोजाः	४	२३८	वेधाः	४	२२५	शतद्रुः	१	३५
विश्ववेदाः	४	२३८	वेनः	३	६	शतिः	४	१२२
विषा	४	३६	वेन्ना	३	८	शत्रिः	४	६७
विष्टपः	३	१४५	वेमा	४	१५०	शत्रुः	४	१०३
विष्टरश्रवाः	४	२२७	वेशन्तः	३	१२६	शतेरः	१	६०
विष्णुः	३	३९	वेष्टम्	४	१६०	शद्रिः	४	६५
विहा	४	३६	वेष्पः	३	२३	शपथः	३	११३
वीकः	३	४७	वेहत्	२	८५	शब्दः	४	९७
वीचिः	४	७२	वैजयन्तः	३	१२८	शबलः	१	१०५
वीणा	३	१५	व्योम	४	१५१	शमठः	१	१००
वीध्रम्	२	२६	**श**			शमथः	३	११३
वीरः	२	१३	शकटः	४	८१	शम्बः	४	९४
वृकः	३	४१	शक्तिधरः	२	२२	शम्बुकः	४	४१
वृक्षः	३	६६	शकृत्	४	५८	शम्बूकः	४	४१
वृजनम्	२	८१	शकुनः	३	४९	शमलम्	१	११२
वृजिनम्	२	४७	शकुनिः	३	४९	श्मश्रुः	५	२८
वृत्रः	२	१३	शकुन्तः	३	४९	शयण्डः	१	१२९
वृद्धश्रवाः	४	२२७	शकुन्तिः	३	४९	शयथः	३	११३
वृधसानः	२	८७	शक्मा	४	१४७	शयानकः	३	८२

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
शयुः	१	७	शष्पः	३	२८	शिरीषः	४	२०
शयुनः	३	६१	शस्त्रम्	४	१६४	श्लिकुः	१	३२
शरिः	४	१२८	शंस्ता	२	९४	शिल्पम्	३	२८
शरुः	१	१०	शाकम्	३	४३	शिक्वम्	२	१३
शर्करा	४	३	शादः	४	९७	शिवः	१	१५२
शरण्यम्	३	१०१	श्यामः	१	१४६	शिखिदामः	२	९२
शरणिः	३	१०२	श्यामाकः	४	१५	शिविरम्	१	५३
शरत्	१	१३०	शारिका	४	१२८	शिशिरः	१	५३
शरभः	३	१२२	शारिः	४	१२८	शिशुः	१	२०
शर्म	४	१४५	शार्ङ्गः	१	१२७	शीकरः	३	१३१
शरिमा	४	१४८	शार्दूलः	४	९०	शीधुः	४	३८
शरीरम्	४	३०	शालभञ्जिका	२	३२	श्रीः	२	५७
शर्वः	१	१५५	शालिः	४	१३०	शीरः	२	१३
श्रवणा	२	७८	शालुः	१	५	शीर्विः	४	५४
श्रवाय्यः	३	९६	शालूकम्	४	४२	शीलम्	४	३८
शर्वरी	२	१२१	शालूरः	४	९०	शीवा	४	११४
शर्शरीकः	४	१९	श्वा	१	१५९	शुकः	३	४२
शल्कम्	३	४३	शास्ता	२	९४	शुचिः	३	१५५
शल्कः	४	१०८	शास्तिः	४	१८०	शुक्रः	२	२८
श्लक्ष्णम्	३	१९	शिक्यम्	५	१६	शुक्रम्	२	२८
शलाका	४	१४	शिखा	५	२४	शुचिः	४	१२०
शलभः	३	१२२	शिग्रुः	५	१०२	शुनकः	२	३२
शल्यम्	४	१०७	शिङ्घाणकः	३	८३	शुन्ध्युः	३	२०
शलिः	४	१२८	शिङ्घाणम्	३	८३	शुभ्रम्	२	१३
शवः	४	१९३	शितिः	४	१२२	शुभ्रिः	४	६५
शवयीचिः	४	७१	शिथिलः	१	५३	शुल्वम्	४	९५
शवरः	३	१३१	शिनिः	४	५१	शुष्कः	३	४१
शवसानः	२	८६	शिरः	४	१९४	शुष्णः	३	१२
श्वशुरः	१	४४	शिरिः	४	१४३	शुष्मम्	१	१४४

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
शुषिरम्	१	५१	**स**			स्यन्दनः	२	७८
शुषिलः	१	५६	सक्तुः	१	६९	स्यमिकः	३	४६
शूद्रः	२	१९	सक्थि	३	१५४	स्यमीकः	३	४६
शूरः	२	२५	स्कन्धः	४	२०७	सरः	४	१८९
शूर्पम्	२	२६	संकसुकः	२	१९	सरकम्	५	३५
शूलधरः	२	२२	सखा	४	११७	सजूः	१	८०
शृङ्गः	१	१२६	संग्रहणी	५	६७	सरट्	१	१३४
शृङ्गारः	१	१२६	स्तनयित्नुः	३	२९	सरटः	४	८१
शृधूः	१	९१	स्तबकः	४	९६	सरटः	४	१०५
शेपः	४	२०१	स्तम्बः	४	९६	सरण्डः	१	१२९
शेपालः	४	३८	सत्रम्	४	१६७	सरणिः	२	१०२
शेफः	४	२०१	स्तरिमा	४	१४८	सरण्युः	३	८१
श्येतः	२	९३	स्तरीः	३	१५८	सरित्	१	९७
श्येनः	२	४६	स्थपतिः	४	५९	सर्पिः	२	१०८
श्रेणिः	४	५१	स्थविः	४	५६	सर्मः	१	१४०
श्लेष्मा	४	१४५	स्थविरः	१	५३	सरिमा	४	१४८
शेवः	१	१५२	सदः	४	१८९	सरयुः	३	२२
शेवा	४	१५४	सधिः	२	२१३	सरयूः	३	२२
शेवालः	४	३८	सन्ध्या	४	११२	सरलः	१	१०६
शैवलः	४	३८	सनिः	४	१४०	सर्वः	१	१५३
शोचिः	२	१०८	सम	१	१५७	सर्ववेदाः	४	२२७
शोथः	२	४	संपातिः	५	५	सर्षपः	३	१४१
श्रोणः	२	६	समीचः	४	९२	सलिलम्	१	५४
श्रोणिः	४	५१	समीची	४	९२	संवत्सरः	३	७२
श्रोत्रम्	४	१६८	समिथः	२	११	स्वधा	४	१७५
शौटीरः	४	३०	सम्प्रहाणिः	४	१२५	सवनः	२	७४
ष			समया	४	१७५	स्वप्नः	३	१०
षण्डः	१	११४	समरः	३	१३१	सव्यम्	४	११०
षिड्गः	१	१२४	संयद्वरः	३	१	सव्येष्ठा	२	१०१

For Private And Personal Use Only

शब्दाः	पा०	सू०	शब्दाः	पा०	सू०	शब्दाः	पा०	सू०
स्वरुः	१	१०	सार्थः	२	५	सुधर्मा	४	१५२
स्वर्भानुः	३	३२	सारथिः	४	८९	सुषा	३	६६
स्वसा	२	९६	स्वाती	४	१३१	सुपयाः	४	२२३
स्वस्ति	४	१८१	स्वादुः	१	१	सुप्रतीकः	४	२५
संवसथः	३	११६	सास्ना	३	१५	सुश्रयाः	४	२२३
संवत्	२	८५	सिक्थम्	२	७	सुमेरुः	४	१०१
संस्तवानः	२	८९	सितम्	३	८९	सुरः	२	२४
सस्यम्	४	१०९	स्तिभिः	४	१२२	स्रुक्	२	६२
सहः	४	१८९	स्थिरः	१	५३	सुरेणुः	३	३८
सहसानः	२	८७	सिन्दूरम्	१	६८	सुरतः	५	१४
सहारः	३	१३९	सिन्धुः	१	११	स्रुवः	२	६१
सहुरिः	२	७३	सिध्रः	२	१३	सुवक्षाः	४	२२७
सहोरः	१	६५	सिनः	३	२	सुविदत्रम्	३	१०८
साकम्	३	४३	स्फिरः	१	५३	सुवनम्	२	८०
स्थाणुः	३	३७	सिमः	१	१४४	सुशर्मा	४	१५२
स्थाम	४	१४५	सिरा	२	१३	सुष्ठु	१	२५
स्थालम्	१	११६	सिंहः	५	६२	सुस्रोतः	४	२२३
सादिः	४	१२५	सीता	३	९०	सूक्ष्मम्	४	१७७
साधन्तः	३	१२८	स्त्री	४	१६६	सूचः	४	९३
साध्वसम्	३	११७	स्तीर्विः	४	५४	सूचिः	४	१३९
साधुः	१	१	सीमा	४	१५१	सूची	४	९३
सानु	१	३	सौमिकः	२	४३	स्तूपः	३	२५
स्नायुः	१	१	सीरः	२	२५	सूत्रम्	४	१६३
स्नावा	४	११३	सुजवाः	४	२२३	स्थूणा	३	१५
सानसिः	४	१०७	सुतपाः	४	२२७	स्थूरः	५	४
स्फारम्	२	१३	सुतेजाः	४	२२७	सूनुः	३	३५
साम	४	१५३	सुत्रामा	४	१४५	सूना	३	१३
सारङ्गः	१	१२२	सुवेप्यम्	३	९९	सूपः	३	२६
सारणिः	२	१०२	सुषेप्यम्	३	९९	सूमः	१	१४५

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्	शब्दाः	पादः	सूत्रम्
स्यूनः	३	९	**ह**			हालुः	१	१
स्यूमः	१	१४४	हहुः	३	३०	हासाः	४	२२१
स्रूः	२	५७	हयः	२	२	हिङ्गुः	१	३६
सूरः	२	२४	हन्ता	२	९४	हिण्डीरः	४	३०
सूरतः	५	१४	हनुः	१	१०	हिमम्	१	१४७
सूरिः	४	६४	हनूषः	४	७२	हिरण्यम्	५	४४
सृकः	३	४१	हरिः	४	११९	हिरण्यरेताः	४	२२७
सृणिः	४	१०४	हरिणः	२	४६	हिंसीरः	५	१८
सृणिः	४	४९	हरेणुः	२	१	ह्रीका	३	४८
सृणीका	४	२३	हरित्	१	९७	ह्रीकुः	३	८५
सृत्वा	४	११४	हरितः	३	९३	ह्लीका	३	४८
सृदाकुः	३	७८	हरिद्रुः	१	३४	ह्लीकुः	३	८५
सृदरः	५	४१	हरिमा	४	१४८	हृदयम्	४	१००
सृप्रः	२	१३	हर्यतः	३	११०	हृषीकम्	४	१७
स्पृहयाय्यः	३	९६	हर्षयित्नुः	३	२९	हृषुः	१	२३
सेतुः	१	६९	हर्षुलः	१	९६	हेतुः	१	७३
स्तेनः	२	४६	ह्रस्वः	१	१५२	हेम	४	१४५
सेना	३	१०	हलिः	४	११८	हेमन्तः	३	१२९
स्नेहा	१	१५९	हविः	२	१०८	हेलिः	४	११८
स्नेहुः	१	१०	हंसः	३	६२	होता	२	९५
सोमः	१	१४०	हंसि	४	१५४	होत्रम्	४	१६८
स्तोमः	१	१४०	हस्तः	३	८६	होमः	१	१४०
सोमः	४	१५१	हस्रः	२	१३	होमा	४	१५१
स्योना	३	९	हान्तम्	४	१६०	होमी	२	८४
स्रोतः	४	२०२	हानिः	४	५१	होढः	४	१०५
			हारिः	४	१२५			

इति

For Private And Personal Use Only

शुद्धिपत्रम् ॥

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
७	७	श्रूयते	शृणाति
३२	२३	भैषजमेव	भेषमेव
४०	३	हाथः	हथः
३४	८	तद्म्नम्	तदाम्नम्
३५	९	संम्मत्या	सम्मत्या
४९	७	स्त्येनः।श्येनः।	श्येनः।स्त्येनः।
५२	२३	व्युत्यन्नपक्षे	व्युत्पन्नपक्षे
६४	२१	लक्षणा	लक्ष्मणा
६९	१७	रञ्जकः	रङ्कः
७२	११	युवती	युवतिः
१०९	१२	ममते	मवते
१४४	२३	४७	१४७
१४६	५०	९	९०
१४६	८०	१०१	१०८
११८	३२	४	१
१५०	८	६०	१६०
१५०	३१	२६	९६
१५५	८२	६४	६९
१५९	६९	मरिचिः	मरीचिः
१६१	१५	युवाः	युवा
१६१	५८	२५	१२५

इति

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www. kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal Use Only